* ओ३म् *

प्रभु-मिलन की राह

पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज

यह कथा पूज्य स्वामी जी महाराज ने एप्रिल के अन्त और मई १९६८ के प्रारंभ मे पंजाबी बाग (दिल्ली) आर्य समाज मन्दिर मे की थी

गोविन्दराम हासानन्द
४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

पहला दिन

ओ त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधाते सुम्नमीमहे ॥

प्रधान महोदय, मेरी प्यारी माताओ और सज्जनो ! मैं अफ्रीका मे था । नैरोबी मे एक मास कथा करने के बाद हवाई जहाज से लन्दन जा रहा था। मेरे साथ एक सज्जन बैठे थे । जहाज उडा जाता था । दो आदमी पास-पास बैठे हो[illegible] स्वाभाविक रूप मे आपस मे बातें करने लगते हैं । हम भी बाते[illegible] लगे ।

उन्होने पूछा, "आप भी लन[illegible] जा रहे है ?"

मैंने कहा, "जी, मुझे लन्दन ह[illegible]है ।"

वह बोले, "क्या आप वहाँ व्यापार करते हैं ?"

मैंने कहा, "नही, मैं व्यापार नही करता ।"

वह बोले, "तब सैर के लिए जा रहे होगे "

मैंने कहा, "जी नही, मैं सैर के लिए नही जा रहा ।"

वह बोले, "तो फिर क्या आप वहाँ नौकरी करते हैं ?"

मैंने कहा, "जी नही, मैं नौकरी भी नही करता ।"

वह आश्चर्यचकित होकर बोले, 'बडी विचित्र बात है ! आप कुछ भी नही करते तो फिर लन्दन क्यो जा रहे हैं ?"

मैंने कहा, "यूरोप वालो की एक चीज खो गई है, उसके बिना उनका धन-धान्य, उनका विज्ञान, उनकी उन्नति, उनके उद्योग, उनका व्यापार, उनका राज-पाट, उनका तकनीकी ज्ञान, उनके आविष्कार, मान-प्रतिष्ठा सब व्यर्थ होती जाती हैं । मैं उस चीज का पता बताने जा रहा हूँ ।"

अब तो वह और भी आश्चर्यचकित हुए । बोले, "वह कौन-सी चीज है ?"

मैंने कहा, 'देखिये, धन-धान्य, ज्ञान-विज्ञान, उद्योग-व्यापार सब

जरूरी हैं। इनके बिना मनुष्य का काम चलता नहीं। किन्तु एक चीज है जो न हो तो सबके होने पर भी काम नहीं चलता। मनुष्य की दशा उस सवार जैसी हो जाती है जो एक स्वस्थ, सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट घोड़े पर बैठा हो, उस घोड़े पर सोने की जीन कसी हो, उसमें हीरे-मोती जड़े हों, सवार ने भी बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण पहन रखे हों, और उसे पता न हो कि उसे जाना कहाँ है। अपने लक्ष्य की ओर जाने के बजाय वह घने, निर्जन भयानक जंगलों में घुसा जाता हो, दुर्गम पहाड़ियों में, जनशून्य घाटियों में भटकता फिरता हो और समझ न पाता हो कि उसे जाना कहाँ है? कैसे जाना है?"

वह बोले, "आप ठीक कहते हैं, आज यूरोप में, अमेरिका में और कितने ही दूसरे देशों में धन-धान्य का बाहुल्य होने पर भी एक विचित्र प्रकार की अशान्ति है। ऐसा जान पड़ता है कि यह संसार एक अथाह सागर है, हम जहाज में बैठे हैं किन्तु यही पता नहीं कि जहाज को पहुँचना कहाँ है? किन्तु वह कौन-सी चीज है जिसे हम भूल गए हैं?"

मैंने उस सज्जन को एक कहानी सुनाई; आपको भी सुनाता हूँ। एक आदमी गाँव का चौधरी था। उसके पास उन्नीस ऊँट थे। वह मरने लगा तो उसने वसीयत की कि उन ऊँटों में से आधे मेरे बेटे को दे दिये जाएँ। उनका चौथा भाग मेरे नौकर को दिया जाए और उनका पाँचवाँ भाग मेरी नौकरानी को। वसीयत लिखी गई और उधर चौधरी जी ने सदा के लिए आँखें मूँद लीं।

चौधरी के मरने के कुछ दिन बाद गाँव के बड़े-बूढ़े इकट्ठे हुए कि वसीयत के अनुसार बँटवारा हो। किन्तु बँटवारा हो कैसे, यह किसी की समझ में नहीं आया। ऊँट थे उन्नीस; उनका आधा होता है साढ़े नौ। इसका अर्थ है कि ऊँट को काटकर दो भागों में बाँट दिया जाए। किन्तु तब वह ऊँट रहेगा कहाँ? और फिर यदि एक ऊँट इस प्रकार समाप्त भी कर दिया जाए तो शेष रहते हैं अठारह। इनका चौथा भाग होता है साढ़े चार। इसका अर्थ है एक ऊँट को फिर काटना होगा। इसको भी समाप्त करो तो फिर उन्नीस का पाँचवाँ भाग

क्या होगा ? नौकरानी को पाँचवे भाग मे क्या मिलेगा ? पचो ने बहुत सिर खपाया पर किसी परिणाम पर पहुँच नही सके ।

जब किसी परिणाम पर नही पहुँचे तो अन्त मे निर्णय हुआ कि दूर के एक गाँव मे एक स्याना रहता है, वह जाना-माना समझदार है, उसे बुलाया जाए। उस स्याने आदमी के पास बुलावा भेजा गया। वह ऊँट पर चढकर आ गया। उसने आते ही पूछा, 'ऐसी क्या समस्या आ गई है आपके सामने ?"

गाँव के एक बडे-बूढे ने कहा, "हमारे गाँव के चौधरीजी का देहान्त हो गया है। उन्होने वसीयत की थी कि मेरे आधे ऊँट मेरे लडके को दे दिये जाएँ, चौथा भाग मेरे नौकर को और पाँचवाँ भाग मेरी नौकरानी को। हम दिमाग लडाकर थक गए किन्तु किसी निर्णय पर नही पहुँच सके। इसमे आपकी सहायता चाहिए।"

यह स्याना आदमी थोडी देर सोचता रहा, फिर बोला, "यह तो बहुत आसान बात है। चौधरी के ऊँटो मे मेरा ऊँट मिला दो। तब उन्नीस के बजाय बीस ऊँट हो जाएँगे। अब वसीयत के अनुसार बाँट दो।"

बँटवारा शुरू हुआ। बीस ऊँटो के आधे अर्थात् दस, बेटे को दे दिये गए। क्यो जी, पजाबी बाग मे बीस का आधा दस ही होता है न ? यहाँ बडे-बडे गणित जानने वाले रहते है। सम्भवत उनका गणित कुछ और कहता हो।

किसी श्रोता ने कहा, "पजाबी बाग मे भी बीस का आधा दस ही होता है।"

तब स्वामीजी ने हँसते हुए कहा, "तब तो ठीक है। मैं हिसाब-किताब अधिक जानता नही हूँ। सोचा, मुझसे कुछ भूल न हुई हो। तो बीस का आधा हुआ दस। दस ऊँट बेटे को मिल गए। फिर बीस का चौथा भाग अर्थात् पांच ऊँट नौकर को मिल गए। और अन्त मे बीस का पाँचवाँ भाग अर्थात् चार ऊँट नौकरानी को मिल

गए। अब हिसाब लगाइये कि कुल कितने ऊँट हुए ? दस जमा पाँच जमा चार; कुल मिलाकर उन्नीस ऊँट हुए। प्रत्येक को चौधरी की वसीयत के अनुसार उसका भाग मिल गया। एक ऊँट शेष रह गया। दूसरे गाँव से बँटवारा कराने आए स्याने ने कहा, "यह ऊँट मेरा है। लाओ, मैं अपने गाँव को वापस जाऊँ।" और वह अपना ऊँट लेकर वापस चला गया।

मैंने अपने पास बैठे उस यूरोपियन सज्जन को कहा, "ठीक यही हाल हमारा भी है। हमारे पास भी उन्नीस ऊँट हैं। पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, सब मिलाकर पन्द्रह हुए। तब मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार मिला देने से उन्नीस बनते हैं। ये उन्नीस ऊँट हमारे पास हैं। किन्तु जब तक इस आत्मा के ऊँट को न मिलाएँ तब तक समस्या सुलझती नहीं। तब तक दुविधा बनी रहती है, बेचैनी बनी रहती है, अशान्ति बनी रहती है।"

वह यूरोपियन सज्जन खासे समझदार थे। इस कहानी का सच्चा अर्थ उन्होंने समझा। बोले, "किन्तु यह बीसवाँ ऊँट—आत्मा—मिलता कैसे है ?"

मैंने उत्तर दिया, "यह आत्मा मिलता है सत्संग, स्वाध्याय, संयम, सेवा और साधना से।" फिर उन्हें यह भी बताया कि सत्संग क्या है; स्वाध्याय, संयम, सेवा और साधना क्या है।

सब-कुछ सुनकर वह बोले, "मिस्टर स्वामी, ये सब तो अस्वाभाविक बातें हैं।"

इस मिस्टर स्वामी सम्बोधन से चौंकिये मत ! यूरोप वाले स्वामीजी कहना जानते नहीं। इसीलिए 'स्वामीजी' की बजाय 'मिस्टर स्वामी' ही कहते हैं।

इस सज्जन ने भी मिस्टर स्वामी को बताया, "इस दुनिया में लोग स्वाभाविक बातों को ही समझते और कहते हैं। अस्वाभाविक बातों को लोग न समझ पाते हैं और न कर ही पाते हैं। उदाहरण के रूप में एक आदमी खाना खाता है। वह इसलिए खाता है कि उसे भूख

लगती है। वह सोता इसलिए है कि उसे नीद लगती है। पानी इसलिए पीता है कि उसे प्यास लगती है। और यह जो आप सत्सग, स्वाध्याय आदि की बात कर रहे हैं, वह अस्वाभाविक है। इसलिए निरर्थक है; इसलिए इससे कुछ होने वाला नही।"

मैंने इनकी बात सुनी तो थोडी देर के लिए चकरा गया। दिमाग भिन्ना उठा। सोचा, यह आदमी ठीक ही तो कहता है। किन्तु तभी वास्तविकता को समझा और कहा, "देखिये मि० कारवेल, भूख क्या सबको लगती है?"

वह बोले, "आदमी स्वस्थ हो तो जरूर लगती है।"

मैंने पूछा, "और प्यास?"

वह बोले, "यदि शरीर मे कोई रोग-दोष न हो तो प्यास लगना स्वाभाविक है।

मैंने पूछा, "और नीद भी क्या सबको आती है?"

वह बोले, "आदमी स्वस्थ हो, उसे कोई रोग न हो तो उसे नीद आना स्वाभाविक और आवश्यक है।"

मैंने कहा, "और सुनिये मि० कारवेल, जिस प्रकार शरीर के रोगी होने पर भूख, प्यास और नीद समाप्त हो जाती है, अच्छे-से-अच्छे भोजन को भी खाने को इच्छा नही होती, नर्म-से-नर्म बिस्तर पर भी नीद नही आती, उसी प्रकार मन के रोगी होने पर सत्संग, स्वाध्याय, सयम, सेवा और साधना की भी इच्छा नही रहती। यह स्वाभाविक नही, अस्वाभाविक स्थिति है। स्वास्थ्य की नही, रोग की दशा है। यूरोप वालों का मन रोगी हो गया है। मैं उसे स्वस्थ करने के लिए जा रहा हूँ। सभी यूरोप वालों को मैं मिल नही सकता; किन्तु जिस किसी से मिलूँगा, जो मेरे पास आएगा और जिसके पास मैं जाऊँगा, उसके मन को अच्छा करने का प्रयत्न करूँगा।"

अब यह बात उनकी समझ मे आई। धीमे से बोले, "यह तो सच कहते हैं आप, यूरोप वालों का मन सचमुच बीमार है।"

इस बीमारी के कैसे-कैसे भयानक रूप वहाँ दिखाई देते है! कई बीमार तो यहाँ भी आ रहे हैं। आपने उन्हे देखा होगा? नौजवान

लड़के और नवयुवती लड़कियाँ, कई-कई रंगों और ढंगों का पहनावा पहने, प्राय: मैले-कुचैले, अस्त-व्यस्त बाल, चिन्ताकुल चेहरे—ये केवल हमारे ही देश में नहीं, दुनिया के हर देश में पहुँच रहे हैं। प्राय: इन्हें 'हिप्पी' कहकर सम्बोधित किया जाता है। कई लोग दूसरे नामों से भी पुकारते हैं। क्या हो गया है इन्हें? क्यों वे उस अमेरिका को छोड़कर आ रहे हैं जहाँ धन-धान्य की नदियाँ बहती हैं, जहाँ ज्ञान और विज्ञान ने, उद्योग और कृषि ने, राजनीति और प्रशासन ने इस प्रकार उन्नति की है कि देखने वाले चकित रह जाते हैं। अमेरिका दूसरे देशों को कई खरब रुपये प्रतिवर्ष सहायता के रूप में देता है और ये अमेरिकन नंगे सिर, नंगे पाँव, फटे चिथड़े पहने, भिखमंगों-जैसा रूप बनाए दुनियाभर में घूमते फिरते हैं। क्या हो गया है इन्हें? क्या इनके देश में धन-धान्य नहीं? उद्योग और कृषि नहीं? ज्ञान और विज्ञान नहीं? पक्की चौड़ी सड़कें, मीलों लम्बी सुरंगें, सौ-सौ मंजिली इमारतें, अजेय सैन्य शक्ति—ऐटम बम, हाइड्रोजन बम और पता नहीं कैसे-कैसे? सब-कुछ तो इनके पास है। इनके रॉकेटों में बैठे हुए अन्तरिक्ष यात्री पन्द्रह-पन्द्रह हजार मील प्रति घंटा की गति से पृथ्वी के चारों ओर आकाश में चक्कर लगाते हैं; चाँद पर पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हैं।[1] इससे भी आगे जाने के स्वप्न देखते हैं। इनके एक संकेतमात्र से सर्वनाश जाग सकता है, एक संकेत से लाखों की गरीबी दूर हो सकती है। सब-कुछ तो है इनके पास। धरती की दूरियाँ इन्होंने इतनी कम कर दी हैं कि अब नाममात्र रह गई हैं। हजारों मील की दूरी पर बैठकर आप एक-दूसरे से बातें कर सकते हैं। अपने सोने के कमरे में लेटकर उन घटनाओं को देख सकते हैं जो सैकड़ों मील की दूरी पर घट रही हैं। इतना कुछ है इनके पास। इसके बावजूद इनके नौजवान लड़के और नवयुवती लड़कियाँ और दूसरे लोग :

> बनाकर फकीरों का हम भेस ग़ालिब
> तमाशाए अहले करम देखते हैं।

१. अब तो पहुँच भी गए हैं। —अनुवादक

फकीरो की तस्वीरें बने हुए, दर-दर की ठोकरे खाते फिरते है। ये क्यो ऐसा करते हैं? इसलिए कि वह असली चीज, जिसके लिए मानव-मात्र के भीतर बैठा ग्रात्मा बेचैन होता है, इनके पास नहीं है। वह चीज है शान्ति। वह अकथनीय आनन्द जो आत्मदर्शन से मिलता है, वह न धन और सम्पत्ति मे है, न उद्योग और कृषि में, न चौडी सडकों मे, न ऊँची इमारतो मे, न ऐटम बम मे और न हाइड्रोजन बमो मे। सासारिक उन्नति मे वह आनन्द इन्हे मिलता नही और ये बोखलाए जाते हैं। और केवल ये ही क्यो, सारे यूरोप और अमरीका का और उन सभी लोगो का यही हाल हुआ जाता है जो आत्मा को भूल गए हैं। इनके मन बीमार हैं, इसलिए अच्छी चीज इन्हे अच्छी नही लगती है।

एक सज्जन थे। उन्हे बडे जोर का बुखार चढा—१०५ डिग्री। पत्नी ने कहा—आपके लिए दूध लाऊँ? बोले—नही, दूध पीने की मेरी कतई इच्छा नही है। पत्नी ने कहा—साबूदाना बना दूँ? बोले—न, मुझे भूख ही नहीं है। पत्नी ने कहा—किन्तु कुछ तो खाना चाहिए। डाक्टर ने कहा था कि थोडा-सा भोजन लेना जरूरी है। वह बोले—ऐसी बात है तो पकौडे बना दो। खूब मिर्च-मसाला और खटाई डाल-कर पकौडे खाने को बहुत जी चाहता है।

यह है बीमार का हाल। अच्छी चीजे इसे अच्छी नही लगती। बुरी चीजो को खाने को जी करता है। और फिर बुरी चीजो को खाने से बीमारी कम होने की अपेक्षा और बढ जाती है।—यूरोप मे, अमेरिका मे, और उन सभी देशों तथा लोगो मे जहाँ ये बीमार मौजूद हैं, शान्ति की प्यास उनके दिलों मे है, क्योंकि यह प्यास स्वाभाविक है। किन्तु ये बीमार है, इसलिए उन बातो की ओर इनकी रुचि नही होती। इनके बजाय पकौडो की तरफ होती है। मैंने सुना है कि ये हिप्पी' लोग कई तरह की दवाइयो का प्रयोग करते हैं—भाँग, चरस, गाँजा, अफीम। सम्भवत कुछ लोग नही भी करते होंगे। अधिकतर के बारे में तो मैंने यही सुना है। क्यो ऐसी नशीली चीजो का ये प्रयोग करते हैं? इसलिए कि सभवत ऐसा करने से शान्ति मिल जाए। और

केवल यही क्यों, यूरोप और अमेरिका के स्कूलों तथा कालेजों में कितने ही नौजवान लड़के और लड़कियाँ इन नशीली चीजों के अभ्यस्त हो चुके हैं। और अब तो एक नई इल्लत जाग रही है—यूरोप के कई देशों के लड़के बज़िद हैं कि उन्हें लड़कियों के होस्टलों में किसी भी समय जाना मनाही न हो। लड़कियाँ बज़िद हैं कि उन्हें जब भी चाहें लड़कों के होस्टलों में जाने की छूट मिलनी चाहिये। स्पष्ट है कि सब लड़के या सब लड़कियाँ ऐसी बातें नहीं कहतीं। किन्तु जो कहते हैं वे क्यों कहते हैं? इसलिए कि वे दूसरों से ज्यादा बीमार हैं। वे चिल्लाते हैं कि हमें एक-दूसरे से अलग रखने का प्रयत्न हमारी स्वतन्त्रता पर रोक है, हम इसे सहन नहीं करेंगे। पूरे विश्वास के साथ वे कहते हैं—स्त्री और पुरुष बराबर हैं। इन्हें एक-दूसरे से अलग रखना इस बराबरी को समाप्त करना है। किन्तु ये सब तो बीमारी के लक्षण हैं। यह आज़ादी और बराबरी दोनों का मखौल उड़ाना है और इसका कारण यह है कि इनके मन बीमार हैं। मैंने सुना है कि यूरोप और अमेरिका में भी एक नई बीमारी जाग उठी है। लोग शान्ति प्राप्त करने के लिए शराब पीते हैं, पीते ही जाते हैं और इन्हें नशा नहीं होता। वह नीम-बेहोशी भी नहीं होती जो प्रारंभ में शराब पीने वालों को होती है। इस नशे के लिए कई वर्ष ये शराब पीते रहे। वह इनके शरीर में घर कर गई। अब कितनी भी पियें, नशा ही नहीं होता। अरे होगा कैसे? सुनो ऐ भाँग-चरस-अफीम-गाँजा-शराब और इसी तरह के दूसरे ज़हर पीने वालो! ये नशे क्षणिक हैं। नशा हो जाए तो दुर्गत, नशा उतर जाए तो भी दुर्गत। नशा वह जो एक बार चढ़े तो फिर उतरे नहीं; जो एक बार चढ़े तो फिर दिन-रात चढ़ा रहे। यह नशा है ईश्वर के नाम का। किन्तु जिनका मन बीमार है, वे इस अमृत को चाहते नहीं। उनके मन में उसके लिए चाह ही पैदा नहीं होती। तुलसीदासजी ने संभवतः इसीलिए कहा था :

ईश्वर नाम अमोल है, दामन बिना विकाय।
तुलसी अचरज देखिये कोई गाहक न आय॥

विद्यमान है कि आज के वैज्ञानिक भी उसे देखकर चकित होते हैं। विज्ञान की वर्तमान उन्नति के युग में सैकड़ों वर्षों की खोज के बाद जो बातें वैज्ञानिकों ने मालूम की हैं, वे सब-की-सब वेद में विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त ऐसी बातें भी हैं जिन्हें वैज्ञानिक अभी तक जान नहीं सके। अभी उनकी खोज होनी बाकी है। वेद यह नहीं कहता कि यह दुनिया एकदम स्वयमेव बन गई, वह कहता है—ईश्वर की शक्ति से पहले 'ऋत्' पैदा हुआ। वह नियम पैदा हुआ जो कभी बदलता नहीं। तब सत्य की उत्पत्ति हुई। अर्थात् यह दुनिया जो सत्य है। तब प्रलय की रात पैदा हुई, अर्थात् यह सृष्टि समाप्त हो गई। और फिर परमाणुओं का समुद्र जाग उठा। इसका अभिप्राय यह है कि यह सृष्टि केवल एक बार नहीं बनी। पहले भी बनती रही है। बनती है और सत्य पैदा होता है। समाप्त होती है, प्रलय की रात आती है तो सब-कुछ समाप्त हो जाता है। परमाणुओं का समुद्र जाग उठता है। यह बात ऋग्वेद के दसवें मण्डल के सूक्त संख्या १६० में लिखी है। ऐसी ही बात उससे आगे फिर कही गई है:

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ॥

अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा वैसे ही बनाए गए जैसे पहले बनाए जाते रहे थे।

यह कोई नया खेल नहीं है। सदा की बात है। सदा इसी प्रकार होता रहता है। हाँ, हर रात के बाद सृष्टि बनती जरूर है। सृष्टि के अस्तित्व में आने से पूर्व :

तम आसीत्तमसा गूळहमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।

अर्थात् अँधेरा होता है—गहरा अँधेरा। प्रकृति अपनी वास्तविक स्थिति में एक अनन्त सागर की तरह सोई रहती है। इसके तीनों गुण सम अवस्था में रहते हैं। इस अनन्त प्रकृति में ईश्वर की शक्ति से, ईश्वरीय तेज से, गति—स्पन्दन पैदा होता है। इस स्पन्दन के कारण परमाणु इकट्ठे होते हैं। एक बहुत बड़ा अण्डाकार गोला-जैसा बनता है। ईश्वर के तेज से ही अण्डा तपे हुए सोने की तरह दमकने लगता

है। ईश्वर की शक्ति से ही यह तीव्र गति से घूमता है। घूमते समय फटता है और अनन्त सूर्य, अनन्त पृथिवियाँ, अनन्त तारे इससे अलग होते हैं, जैसे एक कोयले से चिंगारियाँ अलग होती हैं। इस प्रकार हर बार एक नए ब्रह्माण्ड की सृष्टि होती है। जिस ब्रह्माण्ड में हम रहते है, इसमें आधुनिक वैज्ञानिकों की गणना के अनुसार डेढ़ अरब सूर्य-मण्डल हैं। हमारा सूर्य-मण्डल इनमें एक छोटा-सा सूर्य-मण्डल है। इससे बहुत बड़े-बड़े सूर्य-मण्डल हमारे ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं। हमारी पृथिवी से तेरह लाख गुणा बड़ा हमारा सूर्य है। हमारे सूर्य से तेरह लाख गुणा बड़ा एक अन्य सूर्य है जिसे बृहस्पति कहते हैं। बृहस्पति तारे से वह भिन्न है। वह तारा नहीं, सूर्य है। इस बृहस्पति नाम के सूर्य से तेरह लाख गुणा एक और सूर्य ब्रह्माण्ड में विद्यमान है जिसे 'ज्येष्ठा' कहते हैं। ऐसे कितने ब्रह्माण्ड इस विश्व में हैं, यह अभी किसी को मालूम नहीं। किन्तु विचित्र बात यह है कि आज का विज्ञान जो कुछ कहता है, जानता है, वह सब वेद में विद्यमान है। उससे बहुत अधिक भी विद्यमान है। इसीलिए एक अमेरिकन महिला श्रीमती व्हीलर विल्कॉक्स ने लिखा है, "जिस देश में वेद प्रकट हुए, उसके लोग उन सभी बातों को जानते थे, जिन्हें आज का विज्ञान जानता है। उन्हें बिजली का पता था, वायु में उड़ने वाले जहाजों का पता था। हर उस बात का पता था, जिसका आज हम अभिमान करते हैं।"

यह श्रीमती व्हीलर विल्कॉक्स आर्यसमाज की सदस्या नहीं हैं, अपितु एक ईसाई महिला हैं। किन्तु जो बात उसने देखी, उसे कई दूसरे लोगों की तरह पक्षपात के कारण छिपाने का प्रयत्न नहीं किया, स्पष्ट और सीधे शब्दों में लोगों के सामने रख दिया।

और यह एक अपरिवर्तनीय सत्य है कि वेद ही ऐसी प्रामाणिक आध्यात्मिक पुस्तक है जो विज्ञान की खोजों के साथ मेल खाती है। वह एक ऐसी प्रामाणिक पुस्तक है, जो भौतिकवाद की पूरी कहानी सुनाने के साथ-साथ उस आत्मा का उपदेश देती है, 'बीसवाँ ऊँट' है और जिसके बिना भौतिकवाद के 'उन्नीस ऊँट' व्यर्थ हो जाते हैं।

एक आदमी के पास एक सुख-सुविधापूर्ण मकान है जो बिजली की मशीनो के कारण सर्दियो मे गर्म और गर्मियो मे ठडा रहता है। ऐसी ही मोटरकार है और ऐसा ही दफ्तर भी। जिस क्लब में वह जाता है, वहाँ भी यही सुविधा है। सुख-सुविधापूर्ण वातानुकूलित घर से, वातानुकूलित मोटरकार में बैठकर वह वातानुकूलित दफ्तर मे जाता है, वहाँ काम करता है। शाम को फिर उस मोटर मे बैठता है और वातानुकूलित क्लब मे पहुँचता है, वहाँ कुछ समय गुजारता है। रात को अपने सुख-सुविधापूर्ण घर मे वापस आता है। इतने आराम के साधन होने पर भी उसके मन मे चैन नही। बेचैनी के कारण उसे रात को नीद नही आती। डाक्टर नीद आने की गोलियाँ देता है। उन्हे खाकर सोता है। किन्तु दूसरे दिन बेचैनी और बढ जाती है। शरीर मे दुर्बलता आने लगती है। जीवन नीरस मालूम पडता है। उसे ऐसा अनुभव होता है कि किसी चीज का अभाव है, कोई कडी खो गई है। इस कडी की अनुपस्थिति मे सारा सुख अशान्ति मे बदल जाता है। और यह कडी—

गगन अटारी पर नहीं, न धरती के माँहीं।
सब जग जाको चाहत वो चैन कहीं पर नाँहीं ॥

अमेरिका इतना धनी देश है, विज्ञान के क्षेत्र मे इतना आगे बढा हुआ है। वहाँ की हालत यह है कि अस्पतालो मे जितने रोगी पडे हैं, उनमे आधे पागलपन के रोगी हैं। एक सूचना के अनुसार अमेरिका मे प्रत्येक दसवाँ व्यक्ति यदि पूरा नही तो थोडा पागल जरूर है। सब-कुछ होने पर भी एक विचित्र प्रकार की बेचैनी लोगो को पागल किये देती है। हमारे देश के कई लोग चाहते हैं कि हमारा देश भी अमेरिका जैसा हो जाए। सम्भवत वे पागल होना चाहते है।

पिछले दिनो मैं अमृतसर मे कथा कर रहा था तो एक देवी मेरे पास आई। वह पागलखाने की सुपरिंटेण्डेंट थी। मुझसे बोली, "स्वामीजी, आइये आपको पागलखाने ले चलूँ।"

मैंने हँसते हुए कहा, "किन्तु बेटी, मैं तो अभी होश मे हूँ।"

इस होश और वेहोशी की बात भी सुनिये ! लाहौर में प्रोफेसर दीवानचन्दजी ने, जो बाद में डी० ए० वी० कालेज कानपुर के प्रिंसिपल बने, मुझसे कहा, "पागलखाने चलोगे ?"

मैंने आश्चर्य से पूछा, "मुझे क्या हुआ है ?"

वह बोले, "अरे भाई, पागलखाना देखने चलोगे ?"

मैंने सन्तोष की साँस लेकर कहा, "तो यह बात है ! चलिये ।"

और हम जब पागलखाने में पहुँचे तो एक वृक्ष के नीचे कुछ पागल बैठे बातें कर रहे थे । इनमें से कुछ हमारी ओर देखने लगे । एक पागल ने ऊँची आवाज में कहा, "अरे, उधर क्या देखते हो ? बेचारे नए पागल हैं । इलाज के लिए आए हैं ।"

इन पागलों ने हमको ही पागल समझा । पागल के लिए बाकी सारी दुनिया पागल है ।

और मैं अमृतसर के इस पागलखाने में पहुँचा तो सुपरिंटेण्डेंट ने कुछ सुधरे हुए पागलों को जमा करके मुझसे कहा, "इन्हें कुछ उपदेश दीजिये ।"

मैं हैरान कि पागलों से क्या कहूँ ? किन्तु तभी याद आया कि मैं तो सदा पागलों को ही उपदेश देता हूँ । जिनके दिल में प्रभु के ध्यान का पागलपन है, जो बुल्हे शाह की तरह भगवान् के नाम की माला जपना चाहते हैं और कहते हैं :

"पा-गल असली पागल हो जा ।"

पहन ले गले में माला । असली 'गल'[१] को—बात को—समझ । जाप कर मालिक के नाम का—याद कर उसे ; उसके लिए पागल हो जा ! अन्यथा जिनको अपनी बुद्धि का अभिमान है, वे मेरी बात सुनने कहाँ आते हैं ?

यह सोचकर मैं इन पागलों से बोला, "मेरे पागल भाइयो ! मैं तुम्हारी ही तरह हूँ । प्रभु के प्यार में पागल होकर घर-बार छोड़ दिया । धन-दौलत को त्याग दिया । जगह-जगह घूमता-फिरता हूँ ।

१. पंजाबी में 'गल' बात को कहते हैं ।—अनुवादक

तुम ही पागल नही, मैं भी पागल हूँ।"

और पागलो ने इस तरह तालियाँ बजाई जैसे निहाल हो गए हो। उन्होने समझा कि एक और पागल हमारे पास आ गया।

अन्ततोगत्वा पागलपन भी तो मस्ती का एक आलम है। स्वामी रामतीर्थजी कालेज मे पढाते थे। अच्छी-भली नौकरी थी, अच्छी-खासी आय थी। मौज में आए तो एक दिन नौकरी छोडकर घर मे आ गए। मित्रो-सम्बन्धियो ने कहा, "यह क्या किया आपने तीर्थराम जी ? घर मे पत्नी है, नन्हा-सा बच्चा है। आप नौकरी छोड आए हैं। इनका भरण-पोषण कैसे होगा ?" सब लोग कहते थे कि तीर्थराम पागल हो गया है।

तीर्थरामजी ने हँसते हुए कहा, "ठीक ही तो कहते है सब लोग! किन्तु पागल होने में बुराई क्या है ? इन्ही बिगडे दिमागो मे अमृत के भरे लच्छे हैं। हमें पागल ही रहने दीजिये, हम पागल ही भले।"

बाद मे जब उन्होने सन्यास लिया तो 'तीर्थराम' से उनका नाम 'रामतीर्थ' हुआ।

और मेरे अपने पागलपन की बात! घर बार, बच्चे-बच्चियाँ, धन दौलत, मोटर-तांगे सबको छोडकर मैं सन्यासी हुआ तो हरिद्वार से होकर गगोत्तरी पहुँचा। हरिद्वार मे रहते थे एक सज्जन—सरदार हुकमसिहजी, इमारती लकडी के व्यापारी। हर बार जब मैं हरिद्वार जाता या हरिद्वार से होकर निकलता तो उनसे जरूर मिलता। किन्तु सन्यास लेने के बाद हरिद्वार होकर जाने पर उनसे नही मिला। उन्होंने मुझे गगोत्तरी को पत्र लिखा कि 'यह तुमने क्या किया ? पहले मुझे मिले बिना हरिद्वार से गुजरते नही थे, अब की बार क्यो नही मिले ? मैं तुमसे एक बहुत आवश्यक बात पूछना चाहता था। अब पत्र के द्वारा पूछ रहा हूँ। तुम मुझे बताओ कि तुम्हारे बेटे बहुत अच्छे हैं, बेटियाँ अच्छी हैं, पत्नी भी भली है। कारोबार भी अच्छी तरह चलता है। धन-दौलत की तुम्हे कमी नहा थी। प्रभु-भक्ति का प्रचार तुम

घर में रहकर भी कर सकते थे। फिर तुमने यह संन्यास क्यों लिया?"

मैंने उनका पत्र पढ़कर उत्तर दिया, "मेरे प्यारे सरदारजी !

मजा जो पाया फकीरी में, न देखा कभी अमीरी में।"

बस, इतना ही लिखा उन्हें। इससे वह क्या समझे, मुझे मालूम नहीं। किन्तु अमीरी और फकीरी दो हालतें होती हैं। अन्तर केवल यह है कि फकीर ज्यादा मस्त है, ज्यादा मौज में रहता है।

> वाह-वाह ! मौज फकीराँ दी !
> कभी तो चाहें 'चना-चवेना',
> कभी लपटाँ लैन्दे खीराँ दी।
> कभी तो पहनें शाल-दोशाला,
> कभी गुदड़ी पटियाँ-लीराँ दी।
> कभी तो सोएँ राजमहल में,
> और कभी गली अहीराँ दी।
> वाह-वाह ! मौज फकीराँ दी !!

और फिर अमीर और फकीर में बहुत अन्तर है नहीं। अमीर भौतिकवाद में, सांसारिक झमेलों में फँसा है, प्रत्येक प्रकार का आराम होने पर भी दुःखी है। फकीर इस भौतिकवाद के दौर से निकलकर अध्यात्म की ओर चल पड़ा है। अमीर के केवल एक पर है, चाहने पर भी वह आनन्द और शान्ति के आकाश में उड़ नहीं सकता। फकीर के पास दोनों पर हैं। दोनों परों से वह उड़ता है, आगे बढ़ता है।

अमीर इस जन्म की ओर देखता है। उसकी आवश्यकताएँ पूरी करने में लगा रहता है।

यह शरीर माँगता है आम, अमरूद, केला, नाशपाती, लीची, खरबूजा, तरबूज, दूध, खोया, पेड़ा, खीर, लड्डू, चाय, गोलगप्पे, चटनी, अचार, गाजर का हलवा, पीठी की पूरियाँ, आलू के पराँठे और पता नहीं, क्या-क्या।

मैं इन चीजों की निन्दा नहीं करता। शरीर अगर पचाए तो उसे ये सब दो। किन्तु यह भी तो देखो कि शरीर के भीतर जो रहता है,

उसे क्या चाहिये। यह भी तो देखो कि उसे भी भूख लगती है, उसे भी भोजन चाहिये। किन्तु यह सब-कुछ देखे कौन? लोग तो कहते हैं कि भीतर कुछ है ही नही। जो कुछ है, यह शरीर-ही-शरीर है।

मैं बताऊँ यह अन्दरवाला कौन है? क्या है?

सुनो! जब तक यह अन्दरवाला है, तब तक इस शरीर की सत्ता है। तब तक इसे भूख लगती है, प्यास लगती है, सर्दी और गर्मी का अनुभव होता है। तब तक समाज में, देश मे और संसार में इसकी स्थिति है। तब तक यह न्यायाधीश, मन्त्री और प्रधानमंत्री है; सेठ और साहूकार है; व्यापारी और अधिकारी है। तब तक लोग इस शरीर की रक्षा करते हैं; इसका मान करते है और इसे प्यार करते हैं; इसके सामने सिर झुकाते हैं। और जब यह अन्दरवाला निकल जाता है, तब इस शरीर का एक कौड़ी-भर मूल्य नही रह जाता।

पडित जवाहरलालजी के अन्दर जब तक यह अन्दरवाला विद्यमान था, तब तक क्या किसी की हिम्मत थी कि उनकी ओर आँख उठाकर भी बुरी नजर से देख सकता? किसमें हिम्मत थी कि उन्हें एक सूई भी चुभो सके? उनके शरीर पर एक छोटी लकड़ी भी रख सके? किन्तु वह 'अन्दर वाला' चला गया तो हमने देखा कि इस यमुना के तट पर उनका वह सुन्दर शरीर आग की लपटों में जला दिया गया। जिस शरीर की ओर कोई बुरी दृष्टि से देखने का साहस नहीं कर सकता था, उसको आग लगा दी गई। जिस शरीर पर कोई एक छोटी-सी लकड़ी रखना भी सहन नही कर सकता था, उसी के ऊपर कई मन लकड़ियाँ डाल दी गईं। जिस शरीर की ओर करोड़ों लोग प्यारभरी आँखो से देखते थे, जिसे देखने के लिए वे दीवाने हो जाते थे, उसी को जलाकर राख कर दिया।

क्यों? इसलिए कि उसमें वह अन्दरवाला रहा नही।

मैं तिब्बत गया तो कही कोई श्मशान-भूमि दिखाई नहीं दी। मैंने अपने पथ-प्रदर्शक कीच सबा से पूछा, "कीच सबा, यहाँ लोगों का

अन्तिम संस्कार कैसे होता है ?"

वह बोला, "आगे चलिये, मैं बताऊँगा।"

हम आगे गए तो एक ऊँचा टीला देखा। उसके ऊपर एक कमरा बना हुआ था। मैंने पूछा, "यह क्या है ?"

कीच खंबा ने बताया, "यही वह स्थान है, जहाँ इस क्षेत्र में रहने वालों का अन्तिम संस्कार होता है।"

मैं उसकी बात समझा नहीं तो उसने बताया, "लोग इस टीले पर शव को ले आते हैं। उस कमरे में तीन-चार लामा रहते हैं। उनके पास बड़ी-बड़ी तलवारें हैं। उन तलवारों से वे शव के टुकड़े-टुकड़े करते हैं। उन टुकड़ों को टीले पर फेंक देते हैं। तब शंख बजाते हैं। शंख की ध्वनि सुनकर बड़े-बड़े पक्षी आते हैं और टुकड़ों को नोच-नोचकर खा जाते हैं।

मैंने सुना तो घबराकर कहा, "हे मेरे भगवान् ! मुझे तो तिब्बत में मत मारना, दिल्ली में मारना जिससे ऐसी दुर्गति न हो।"

किन्तु यह सद्गति या दुर्गति का प्रश्न है नहीं। अन्दरवाला चला जाए तो शरीर किसी काम का नहीं। इसे काट दो, दबा दो, जला दो, या पानी में बहा दो, सब इसके लिए बराबर है ; क्योंकि जिसके कारण इसका महत्त्व है, वह तो जा चुका। अब यह किसी का पिता, भाई, बेटा, पति, पत्नी, बहन, सम्बन्धी, मित्र, नेता या मंत्री या प्रधान-मंत्री नहीं, अब यह मिट्टी है। इसे कैसे ही मिट्टी में मिला दो, इसे कोई फर्क नहीं पड़ता।

और इस अन्दरवाले को जानने की बात जब मेरे-जैसे लोग कहते हैं तो सुननेवाले सोचते हैं, 'इस अन्दरवाले को जानने का लाभ क्या है ?' शरीर को सब जानते-मानते हैं किन्तु जिसके कारण शरीर का महत्त्व और मान है उसे हमने भुला दिया। वेद शरीर की निन्दा नहीं करता, किसी को यह नहीं कहता है कि उसका पोषण मत करो। किन्तु उसके साथ ही कहता है, इस अन्दरवाले को जानो ! इसको समझो ! इसको जाने और समझे बिना मृत्यु से छुटकारा नहीं मिलता।

मनुष्य बार-बार जन्मता है और बार-बार मरता है

वेदाहमेत पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।

यह वेद को जाननेवाले का दावा है—'मैं जानता हूँ उस महान् पुरुष को जो आदित्य की तरह—उस महासूर्य की तरह जिसके चारो ओर अरबो सूर्य घूमते है—चमकता है । जो अन्धकार से परे है । उसे जानने के बाद ही मनुष्य मृत्यु से पार पाता है । उसके लिए जन्म और मरण समाप्त हो जाता है । दूसरा कोई मार्ग है नही । यही एक मार्ग है ।'

और मृत्यु का अर्थ क्या है ? केवल आत्मा का शरीर से अलग हो जाना ही मृत्यु नही। प्रत्येक विपत्ति, दु ख, कष्ट, क्लेश, बीमारी, गरीबी, भूख, दर्द, अपमान, वियोग और इसी प्रकार की दूसरी बाते मृत्यु है। जब तक मनुष्य अन्धकार से, अज्ञान से ऊपर उठकर ईश्वर को न जान ले, तब तक इस मृत्यु से छुटकारा कही मिलता ही नही ।

वस्ल का उसके दिले-जार तमन्नाई है ।
न मुलाकात है जिससे न शनासाई है ।।

अरे भाई, तुम तो कहते हो कि वह निराकार है। उसका कोई रूप-आकार है ही नही। वह आँख से दिखाई नही देता, कान से सुनाई नही देता, हाथ से छुआ और नाक से सूंघा नही जाता, फिर उसको जानें किस तरह ?

वेद का जो मत्र मैंने अभी पढा, उससे पहले ही नवे मत्र मे इस प्रश्न का उत्तर विद्यमान है। वेद किसी बात को छिपाता नही। हर बात को स्पष्ट करके बताता है। वह यदि बताता है कि दुनिया कैसे बनी, तो यह भी बताता है कि क्यो बनी ? विज्ञान बताता है कि माता के गर्भ म बच्चा कैसे बनता है ? कैसे बडा होता है। कैसे जीवन को प्राप्त करता है ? वेद यह सब-कुछ बताता है। इसके साथ ही यह भी कि यह सब-कुछ क्यों होता है ?

सोचकर देखिये—मैं जाऊं बाजार मे, दो छोटी लकडियां खरीद

लाऊँ, दो बड़ी लकड़ियाँ, चार पाए भी। कोई मुझसे पूछे, 'इनका क्या करोगे?' मैं कहूँ, 'इनसे पलँग बनाऊँगा।' वह पूछे, 'पलँग क्यों बनाओगे?' और मैं कहूँ कि पलँग पलँग के लिए बनाऊँगा तो वह आदमी मुझे क्या कहेगा? आश्चर्य से वह पूछेगा, 'पलँग तो बनाओगे तुम किन्तु उसे करोगे क्या?' इसका सीधा उत्तर है, 'पलँग बनाऊँगा, इसलिए कि उस पर लेट सकूँ, सो सकूँ।' इस उत्तर से उस आदमी को सन्तोष हो जाएगा।

यही हाल इस मानव-शरीर का भी है। समझ लिया भाई कि यह बनता कैसे है। किन्तु क्यों बनता है? इसका उद्देश्य क्या है? इस बात का उत्तर जब तक न मिले, तब तक सन्तोष होने का नहीं।

आप यहाँ पंजाबी बाग की इस कथा में आए हैं। मैं पूछूँ, "क्यों आए हैं?" आप उत्तर दें कि 'बस, आ गए हैं' तो बात बनती नहीं। उत्तर सुननेवाला कहेगा कि या तो आप किसी बात को छिपा रहे हैं या फिर आपके दिमाग में कोई खराबी है। सीधा-सा उत्तर यह है कि हम यह विज्ञापन पढ़कर या यह सूचना सुनकर यहाँ आए हैं कि यहाँ आनन्द स्वामी की कथा होगी। कथा सुनने के उद्देश्य से आए हैं।

प्रत्येक काम का कोई-न-कोई उद्देश्य होता है। मैं आपसे पूछूँ, 'आप दफ्तर या दुकान में क्यों जाते हैं?'

आप कहें, 'धन कमाने के लिए।' तो यह उत्तर बिलकुल ठीक है।

मैं पूछूँ, 'धन किसलिए कमाते हैं?'

आप कहें, 'खाना खाने के लिए।' तो यह उत्तर भी ठीक है।

मैं पूछूँ, 'खाना किसलिए खाते हैं?'

आप कहें, 'जीने के लिए।' तो यह उत्तर भी ठीक है।

किन्तु मैं पूछूँ, 'जीते किसके लिए हैं?'

और आप कहें, 'हमें पता नहीं।' तो यह बात बनेगी कैसे? मनुष्य क्या केवल धन कमाने, खाना खाने और जीने के लिए ही जीता है? यह सब-कुछ तो पशु भी करते हैं।

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।

खाना-पीना, अपने-आपको सकट से बचाना, बच्चे पैदा करना, उनका पालन-पोषण करना, यह सब तो मनुष्यो और पशुओ मे एक-ममान है। क्या कभी आपने चीटियो को ध्यान से देखा है ? कितने यत्न से धन कमाती हैं ! एक-एक दाना इकट्ठा करती हैं। उसे प्राप्त करने के लिए कितनी-कितनी दूर जाती हैं। मार्ग मे कही पानी की लकीर भी आ जाए तो उससे बचकर चलती हैं। निश्चय ही वे सोती भी हैं। उनके बच्चे भी होते हैं। प्रयत्न के बिना ये बच्चे पलते नही। फिर वे मकान भी बनाती हैं—धरती के भीतर लम्बी-लम्बी सुरग ! उन्हे सुरक्षित रखने का यत्न भी करती हैं। और सभी प्राणी ये काम करते हैं। न करें तो सृष्टि का क्रम रुक जाए। ये कुत्ते, बिल्ले, कौए, तोते, चिडिया, मैना, चील, बाज, ये तितलियाँ, ये पतगे, ये लाखो प्रकार के कीडे-मकोडे, साँप-बिच्छू, सब यही कुछ तो करते हैं। यदि मानव भी केवल यही कुछ करने को आया है तो फिर इसमें और पशु में अन्तर क्या है ?

किन्तु क्या मनुष्य और पशु, मनुष्य और कीडे मे वास्तव मे कोई अन्तर नही है ? मनुष्य को यदि 'सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी' कहा गया है तो क्यो ? उसे दुनिया के दूसरे जीवनधारियो से श्रेष्ठ कहा गया तो क्यो ? किसलिए ?

और मनुष्य का 'सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी' होना ऐसी बात है जिसके बारे मे डारविन का सिद्धान्त और भारतीय ज्ञान दोनो की धारणा एक-सी है। डारविन कहता है कि पशु धीरे-धीरे उन्नति करता हुआ मानव बना। यह पशु की सबसे उन्नतिशील, सबसे श्रेष्ठ स्थिति है। महाभारत कहता है

गुह्यं ब्रह्म तदिद ब्रवीमि, न हि मानुषाच्छ्रेष्ठतर हि किंचित्।

अर्थात् तुम्हे एक गुप्त बात बताता हूँ। इस दुनिया मे मनुष्य से श्रेष्ठ, मनुष्य से बडा दूसरा कोई भी प्राणी नही है।

मनुष्य के 'सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी' होने के सम्बन्ध मे दोनो की सम्मति एक है, यद्यपि सृष्टि के सम्बन्ध मे दोनो के सिद्धान्त एक-

दूसरे से भिन्न हैं। सबसे ऊपर चोटी पर मनुष्य है। सृष्टि में सबसे ज्येष्ठ, सबसे श्रेष्ठ, सबसे ऊपर यह है। किन्तु यदि मानव सबसे श्रेष्ठ और ऊपर है तो किस कारण ?

कम्युनिस्ट कहते हैं कि मानव में केवल दो गुण हैं—भूख और काम-वासना।

अरे भाई ! ये दोनों गुण तो पशु में भी हैं। यदि ये ही गुण मानव में भी हैं तो मनुष्य 'सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना' कैसे हुआ ? अमेरिका में आजकल एक नया आन्दोलन चल रहा है। उसे कहते हैं : स्वेच्छा-चारिता। पत्र-पत्रिकाओं में इसका प्रचार होता है। प्लेटफॉर्मों पर प्रचार होता है। प्रचार-पुस्तिकाएँ छापी जाती हैं। घोषणा की जा रही है कि मानव को वैसी ही वासना-पूर्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिये जैसी कुत्तों, बिल्लियों, घोड़ों, गधों, मुर्गों, कबूतरों और दूसरे प्राणियों को है। कमाल है यह आन्दोलन ! अभी तो अमेरिका और यूरोप में सिर उठा रहा है। क्या पता कल यहाँ भी आ पहुँचे ! किन्तु यह मनुष्यत्व का आन्दोलन तो है नहीं ! पशुत्व का आन्दोलन है। यदि मनुष्य को कुत्ते, बिल्ले, घोड़े, गधे और अन्य पशुओं की तरह रहना है तो उसे निश्चित रूप से कोई अधिकार नहीं कि वह अपने-आपको 'सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना' कहे। यदि मानव को पशुत्व के इस मार्ग पर ही चलना है, तो उसे सुख कभी मिलेंगे नहीं, शान्ति कभी मिलेगी नहीं। पशुओं की तरह वह पैदा होगा, खाएगा, पियेगा, जियेगा और मर जाएगा और फिर पैदा होगा—अपने कर्मों का फल भोगने के लिए। दुःखों, कष्टों, विपत्तियों और अशान्ति का यह चक्र कभी समाप्त नहीं होगा। इस चक्र से—दुःखों, कष्टों, चिन्ता और अशान्ति से यदि बचना है तो इसके सिवा कोई मार्ग नहीं कि शरीर की ओर ध्यान देते हुए भी उसको देखो जो शरीर के अन्दर है। वेद कहता है :

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद् युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥

अर्थात् अरे ! तुम नहीं जानते उसको जिसने यह सब-कुछ उत्पन्न

किया। वह सबसे अलग और परे है। किन्तु वह तुम्हारे अन्दर भी है। धुएँ और धुन्ध के कारण तुम उसे देख नही पाते। जो लोग बाते बहुत करते हैं, जो केवल इन्द्रियो के, शरीर के और प्राणो के पालन में लगे रहते है, वे दूसरो की कही बाते तो बहुत सुनाते हैं किन्तु उसे देख नही सकते।

यह विचित्र बात है! वेद कहता है जिसने यह सब-कुछ बनाया, जिसने इस ससार को, ब्रह्माण्डो, इस अनन्त विश्व को उत्पन्न किया, वह तुम्हारे अन्दर बैठा है, किन्तु तुम उसे जानते नही। कमाल है यह ! घर का स्वामी घर में बैठा है और हम उसे देख नही पाते। क्यो देख नही पाते मेरे भाई? इसलिए कि अज्ञान का अँधेरा, अज्ञान की धुन्ध तुम्हे घेरे हुए है। धुन्ध से हवाई जहाजो की कितनी दुर्घटनाएँ होती हैं! अन्य दुर्घटनाएँ भी होती हैं। रेलगाडियाँ टकरा जाती हैं, मोटरें टकरा जाती हैं। आदमी से आदमी टकरा जाता है। कितने ही महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो से भरे हवाई जहाज चकनाचूर हो जाते है। और समुद्री जहाज तो धुन्ध मे छिपी चट्टानो से टकराकर टुकडे टुकडे हो जाते हैं।

मैं एक बार हिमाचल प्रदेश के मण्डी नगर मे था। प्रात उठा तो सब ओर धुन्ध-ही-धुन्ध! बाहर घूमने निकला तो हाथ को हाथ दिखाई न दे। अनुमान से चलता गया। चलते-चलते एक जगह पाँव पानी मे जा पडा। मैंने समझा, रात वर्षा हुई, ब्यास नदी का पानी सडक तक आ गया है। जल्दी से पीछे हटा तो एक सज्जन आ रहे थे उनसे टक्कर हो गई। वह बोले, 'यह क्या बात है?' मैंने कहा 'जो आपकी बात है, वही मेरी है। न आपको दिखाई दिया, न मुझे।'

यह हाल होता है, धुन्ध और अँधेरे मे। आँखें होने पर भी दिखाई नही दिया। रणवीर[1] न मुझे बताया कि वह हवाई जहाज म दिल्ली से काहिरा जा रहा था तो रास्ते मे हवाई जहाज को कुवत मे उतरना था। किन्तु जहाज कुवैत क ऊपर पहुँचा तो वहाँ आधी-ही-आंधी!

१. आनन्द स्वामी जी के पुत्र का नाम।

लाल-काली धूल का बादल-का-बादल, जैसे अरब का सारा रेगिस्तान उड़कर आकाश में पहुँच गया हो। जहाज़ के नीचे कहीं कुवैत का हवाई अड्डा था, किन्तु कहाँ था, यह दिखाई नहीं देता था। पायलट बार-बार उस हवाई अड्डे के ऊपर पहुँचता, बार-बार आगे निकल जाता। हवाई जहाज से कुछ गज की दूरी पर क्या है, यह दिखाई नहीं देता था। तब धरती कैसे दिखाई देती? कितने ही चक्कर हवाई जहाज ने लगाए। पैट्रोल समाप्त होने लगा। पायलट घबराया। घबराहट में ही वह जहाज को नीचे लाया। किन्तु जितनी तेजी से नीचे लाया, उतनी ही तेजी से ऊपर ले गया; क्योंकि सामने एक मकान था। जहाज ऊपर न उड़ जाता तो उस मकान से टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो जाता। यह हालत हुई तो हवाई जहाज में बैठे सब लोग घबराने लगे। उन्होंने समझा कि अन्त-समय आ गया। उन्हें घबराता देखकर रणबीर ने हँसते हुए कहा, 'देखो, घबराओ मत, यह हवाई जहाज नीचे उतरेगा अवश्य, किसी को कुछ नहीं होगा।' उसके साथियों ने आश्चर्य से पूछा, 'तुम यह बात कैसे कहते हो?' रणबीर बोला, 'इसलिए कहता हूँ कि मुझे अभी मरना नहीं है। बहुत-से काम मुझे करने हैं। उन्हें किये बिना मैं मर नहीं सकता। और मैं न मरूँ तो तुम भी मर नहीं सकते। यह जहाज आराम से उतर जाएगा।' और सचमुच हुआ भी यही। गर्द-गुबार में कुछ कमी हुई। हवाई अड्डे-वालों ने कुछ निर्देश दिया। जहाज नीचे उतर गया। किन्तु उतरा इसलिए कि आँधी का अँधेरा अपेक्षाकृत कम हो गया। यदि कम न होता तो वह हवाई अड्डा कभी दिखाई न देता जो नीचे निश्चित रूप से विद्यमान था। अरे! यह ईश्वर भी तुम्हारे भीतर निश्चित रूप से विद्यमान है। अज्ञान की धुन्ध ने—गर्द-गुबार ने और अँधेरे ने उसे ओझल कर रखा है। तुम्हारी दृष्टि से यदि इस गर्द-गुबार को हटा दिया जाए तो वह अवश्य दिखाई देगा।

और फिर उन लोगों को भी उसका पता नहीं मिलता जो 'जल्पी' हैं। 'जल्पी' का अभिप्राय है निरर्थक बातें करनेवाले, वाद-विवाद

करनेवाले, झगडे करनेवाले। हमारे देश को विधान-सभाओ को देखिये, पार्लियामेंट को देखिये—क्या होता है इनमे ? जान पडता है कि इनमे 'जल्पी' लोग कुछ अधिक घुस गए हैं। निरुद्देश्य, निरर्थक बाते करते चले जाते हैं। छोटी-छोटी बातो पर झगडते हैं। देश की इन सम्माननीय सस्थाओ को इन जल्पी लोगो ने मछली-मार्केट बना दिया है। एक चिन्ता रहती है इन जल्पी लोगो को—हमारे वेतन बढ जाएँ। या फिर यह जोड-तोड करते रहते हैं। वेतन लेते है हमसे, सोचते हैं अपने लिए। यह ठीक है कि सभी लोग ऐसे नही हैं। इनमें अच्छे लोग भी हैं। किन्तु जो लज्जाजनक स्थिति आजकल उत्पन्न हो रही है, इससे मालूम होता है कि ऐसे लोगो की सख्या बढती जा रही है।

'जल्पी' किसे कहते हैं, इस सम्बन्ध मे एक कहानी सुनिये !

एक देवीजी थी। एक सज्जन से उनका विवाह हो गया। अब विवाह हुआ तो रहने को मकान भी चाहिये। एक सेठजी के मकान मे एक फ्लैट खाली था। वह किराए पर ले लिया। दोनो पति-पत्नी आराम से रहने लगे। पाँच-छ महीने बीत गए तो एक दिन पति-पत्नी मे झगडा हो गया। पति पत्नी मे झगडे तो होते ही रहते है। ऐसे पति-पत्नी बहुत कम होगे जिनमे झगडा न होता हो।

जोडियाँ जग थोडियाँ, नरड बहुतेरे।

झगडा करना तो सम्भवत पति-पत्नी का धर्म बन जाता है। दुल्हन का विवाह होता है, डोली विदा होने लगती है। सब लोग रोने हैं। दुल्हन भी रोती है। केवल दूल्हा चुपचाप खडा रहता है। ऐसे ही एक दूल्हा से मैंने पूछा, 'ये सब लोग रो रहे है भाई ! तुम क्यो नही रोते ?' वह बोला 'ये तो केवल आज का दिन रोते हैं। मुझे जीवनभर रोना है। मैं इस समय क्यो रोऊँ ?' (कथा सुननेवाले हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए। स्वामीजी भी देर तक हँसते रहे।) फिर बोले, 'इन पति-पत्नी मे झगडा हुआ तो फ्लैट के मालिक सेठजी बहुत चकित हुए कि इन दोनो को क्या हुआ ? उनके फ्लैट में पहुँचकर उन्होने पति-पत्नी से पूछा, 'क्यो बाबूजी ! क्या बात हो गई ? किस बात

का झगड़ा ले बैठे हो ?'

पति बोला, 'क्या बताऊँ सेठजी, न जाने यह कैसे मेरे पल्ले पड़ गई है! मैं कहता हूँ कि हम अपने बेटे को वकील बनाएँगे। यह कहती है कि नहीं, डाक्टर बनाएँगे। अब आप ही बताइये सेठजी, डाक्टर का जीवन भी कोई जीवन है? न दिन को आराम, न रात को चैन। जब भी कोई बुलाने आए, तभी चलो उसके साथ। नहीं सेठजी, मैं तो अपने बेटे को वकील बनाऊँगा। किसी हालत में डाक्टर नहीं बनने दूँगा। वकील बनाऊँगा उसे वकील!'

सेठजी ने कहा, 'यह तो साधारण बात है। इसमें झगड़े की आवश्यकता ही क्या है? वकील के जीवन में वास्तव में आराम तो होता है।' और वह पत्नी की ओर देखकर बोले, 'क्यों बेटी! तू क्या कहती है?'

पत्नी बोली, 'मेरा तो भाग्य फूट गया सेठजी! ये मेरी बात समझते ही नहीं। पूर्व की कहती हूँ तो पश्चिम की बोलते हैं। अब आप ही सोचिये, डाक्टरी के काम में आखिर बुराई क्या है? लोगों की सेवा भी होती है, घर में धन भी आता है। मैं तो अपने बेटे को डाक्टर ही बनाऊँगी। वकील बनाने की बात मुझे कतई स्वीकार नहीं। किसी हालत में भी मैं इसे नहीं मान सकती।'

सेठजी बोले, 'बेटी, इतनी नाराज क्यों होती हो? तुम्हारी एक राय है, तुम्हारे पति की दूसरी। दोनों आपस में शान्ति से बात करो। हानि-लाभ सोचो, और फिर अपने बेटे से पूछ लो कि वह क्या चाहता है? उसकी पसन्द-नापसन्द का ध्यान रखना भी आवश्यक है। बुलाओ अपने बेटे को, मैं उससे पूछता हूँ कि वह क्या बनना चाहता है?'

अब दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। दोनों चुप साध गए।

सेठजी बोले, 'अरे भाई, लड़के को बुलाओ न! अभी निर्णय हुआ जाता है।'

और तब पति ने धीमे से कहा, 'लड़का तो अभी पैदा ही नहीं हुआ।'

(सभी श्रोता जोर से हँसने लगे। कितनी ही देर तक ये कहकहे जारी रहे। स्वामीजी भी हँसते रहे।)

फिर बोले, 'अरे जा रे जा। लडका हुआ नही और झगडा हो रहा है कि उसे क्या पढाएं।' ऐसे लोगो को 'जल्पी' कहते है। ऐसे लोगो को ईश्वर नही मिलता।

और तीसरे 'असुतृप'—जो लोग इन्द्रियो की पूजा करते हैं, इन्द्रियो के विषयो को पूरा करने मे ही लगे रहते हैं। उनको भी इस शरीर के अन्दर बैठे हुए मनमोहन प्रीतम के दर्शन नही मिलते। कानो को अच्छी-अच्छी राग-रागनियो की आवश्यकता है। आँख को सुन्दर दृश्यो की आवश्यकता है। नाक को जौनपुर का इत्र चाहिये। और यह 'चटोरी'—हर समय नया स्वाद चाहने वाली जीभ, इसे क्या चाहिये, यह तो पूछिये ही मत!

अरे, यह धरती वही है, आकाश वही है, सूरज और चन्द्रमा भी वही है, वायु और बादल भी वही है। फिर क्या हो गया उस दुनिया को? पहले भी युद्ध होते थे किन्तु शान्ति ज्यादा थी। अब झगडे-ही-झगडे, अशान्ति ही-अशान्ति! क्या हो गया है? केवल एक बात—पुराने लोग 'इन्द्र' की पूजा करते थे, आज के लोग 'इन्द्रियों' की पूजा करने लगे हैं।

मैंने 'असुतृप' का पजाबी में अनुवाद किया है—'पेटू।'

पेट के सिवा इन लोगो को कुछ सूझता नही। शरीर के सिवा कुछ दिखाई ही नही देता। इसीको सजाने-सँवारने-पालने मे लगे रहते हैं।

जो और बेटा जी!
तू ही पुत्र, तू ही धी॥

अरे, कितने टीन तेल इसके ऊपर मल डाला, कितना घी इसको खिलाया, और कितना मक्खन, कितनी डबलरोटियाँ, कितने चावल, और फिर कुल्लू, कोटगढ और कश्मीर के सेब, अगूर और नाशपातियाँ, आलूबुखारे, तरबूज, खरबूजे, दर्जनो तरह के फल, दर्जनो तरह की

सब्जियाँ, कितनी ही दालें, कितनी ही तरह के अचार, चटनियाँ और मुरब्बे, पापड़ और पकौड़े, और फिर मिठाइयाँ—इमरती, जलेबी, कलाकन्द, बर्फी, लड्डू, पेड़े, गुलाबजामुन, रसगुल्ले, कोई अन्त है इस शरीर-पूजा का ? पैदा होने से अन्तिम घड़ी तक पूजते रहो, और इतने पर भी अन्त-समय यह नहीं रह जाता।

मैं यह नहीं कहता कि शरीर की ओर से असावधान हो जाओ। ऐसी बात मैं कहूँगा कैसे ? मेरा भी तो शरीर है ! इसको खिलाता हूँ, पिलाता हूँ, नहलाता हूँ, धोता हूँ, कपड़े भी पहनाता हूँ। इसे सर्दी लगे तो इसके ऊपर कम्बल ओढ़ाता हूँ। इसे गर्मी लगे तो इसे हवा करता हूँ। मैं नहीं कहता कि शरीर की परवाह मत करो, या इसका पोषण मत करो। किन्तु उसकी भी तो चिन्ता करो भाई, जो इसके अन्दर बैठा है, जिसके कारण यह जीवित है, जिसके कारण इसका मूल्य और महत्त्व है। अन्दरवाले को भी खिलाओ और बाहरवाले को भी।

किन्तु आजकल पीने-पिलाने का अर्थ कुछ और समझा जाता है।

पीने को मैं भी पीता हूँ। पूछिये कपिल मुनिजी से, जिनके पास मैं ठहरा हूँ। अभी-अभी दूध पीकर आया हूँ। किन्तु इस नये युग में दूध पीने को, लस्सी पीने को, शर्बत पीने को या पानी पीने को पीना नहीं कहा जाता। केवल शराब पीने को पीना कहा जाता है।

मैं जब कहता हूँ कि शरीर को पिलाओ, तो इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इसे शराब पिलाओ। शराब का अर्थ मालूम है आपको ? शर अर्थात् शरारत का, आब यानी पानी—शरारत का पानी। यह पानी अन्दर जाता है और अक्ल बाहर चली जाती है। मैं अफ्रीका गया। नैरोबी पहुँचा तो पता लगा कि जो भारतीय यहाँ रहते हैं उन्होंने रुपया तो खूब कमाया है किन्तु वे शराब भी खूब पीने लगे हैं। मैं कथा कर रहा था तो लोगों से कहा कि शराब न पियें। पीना हो तो शराब वह पीयें जो मीरा ने बचपन में गिरधर नागर के नाम की पी थी; जो मूल शंकर ने भगवान् शिव के नाम की पी थी और जो चढ़ने के बाद कभी उतरती नहीं।

शराब चढ़कर उतरने वाली
पिलाई तो क्या पिलाई साकी !
जो चढ़के इक बार फिर न उतरे
वो मय पिला दे तो हम भी जानें ।

ऐसी शराब पियो भाई !

सुरा त्वमसि शुष्मिणी ।

हे भगवान् ! तेरे नाम की शराब बहुत नशीली है, बडी मादक है। इसीलिये मीरा ने कहा था :

ग्रौर सखी मद पी-पी माती
मैं बिन पिये ही माती।
प्रेम-भक्ति को मै मधु पीवा
छकी फिरूँ दिन-राती ।

ग्रौर क्या कहा मीरा ने :

चन्दा जाएगा, सूरज जाएगा
जाएगी धरती ग्राकाशी ।
जल-पवन दोनों ही जाएँगे,
ग्रटल रहेगा ग्रविनाशी ।

ऐसी शराब पियो मेरे भाई, जिसका नशा एक बार चढ़ जाए तो फिर कभी उतरता नही। इस तरह मैंने उस कथा मे कहा तो एक नौजवान मेरे पास ग्राया , बोला, 'ऐसी भी शराब है कोई जो चढ़ने के बाद उतरे नही ?'

मैंने कहा, 'हाँ, मैं बेचता हूँ वह शराब । बिना मोल के बेचता हूँ, भगवान् के प्यार की शराब ।'

उस समय वह नौजवान कुछ बोला नही, दूसरे दिन प्रातः ही मेरे पास ग्राया। प० जमनादासजी के घर पर मैं जहाँ ठहरा हुग्रा था, ग्राकर बोला, 'रात के समय कथा में बहुत-से शे'र और दोहे सुनाकर ग्राप शराब के विरुद्ध प्रचार कर रहे थे । मुझे ग्रावश्यक काम था, इसीलिए ग्रापसे पूरी तरह बात नही कर सका। अब मैं शराब पीकर ग्राया

हूँ, अब आपसे बात करूँगा।'

मैंने समझा, अब यह मेरी गर्दन पकड़ेगा। शराबी का कुछ पता नहीं कि किस समय वह क्या कर डाले। किन्तु फिर भी मैंने कहा, 'बताइये, क्या कहना चाहते हैं आप?'

वह बोला, 'आप दोहे और शे'र सुना रहे थे। मैंने भी एक शे'र बनाया है। आपको सुनाने आया हूँ।'

मैंने कहा, 'सुनाइये।'

वह बोला, 'मैंने समझा था कि आप मॉडर्न संन्यासी हैं, मॉडर्न युग की बात कहेंगे। आपने कही नहीं, इसलिए मुझसे मॉडर्न युग की बात सुनिये :

किसकी रही है, और किसकी रह जाएगी।
सारे मर जाएँगे, व्हिस्की रह जाएगी॥

(सब लोग हँस उठे। स्वामीजी ने हँसते हुए कहा—)

'यह है मति मारी जाने की बात! मॉडर्न युग की नहीं। मूर्खता की बात है यह। मैं नहीं कहता कि शरीर की ओर से असावधान हो जाओ। यह मोटर है जो भगवान् ने दी है। इसके कल-पुर्जों को बिगड़ने न दो। इसे सँभालकर रखो। यह मोटर बिगड़ गई तो पड़ाव पर पहुँचोगे नहीं। इसके द्वारा आपको भगवान् के दरबार में पहुँचना है। इसी के द्वारा उस प्रभु प्रीतम के दर्शन करने हैं। यदि यह मोटर हो गई खराब, अगर यह टूट-फूट गई तो फिर दूसरी मोटर की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। और फिर साधारण मोटर तो मिल भी जाती है कुछ प्रतीक्षा के बाद, किन्तु यह मोटर सुगमता से नहीं मिलती। पता नहीं कितने दफ्तर हैं, सम्भवत: चौरासी लाख दफ्तर। इन सबमें भटकने के बाद मानव-देहरूपी यह मोटर मिलती है। इसलिए इसका ध्यान रखो भाई! किन्तु ध्यान रखो तो किसलिए? इसलिए नहीं कि इसकी पूजा करनी है, इसलिए नहीं कि इसको केवल सजाते-सँवारते-पालते रहो।

क्यों जी! आपके पास मोटर हो। आपको मोटर में बैठकर जाना हो दिल्ली से कश्मीर। गर्मी का मौसम हो। दिल्ली में लू चल रही

हो। नीचे धरती तपती हो, ऊपर आकाश। आप मोटर मे बैठ जाएँ कि इसमे बैठकर उस कश्मीर मे पहुँचेगे जहाँ शीतल वायु है, शीतल पानी, शीतल नदियाँ, शीतल झरने, घने जगल, ऊँची चोटियाँ, लहलहाते खेत, झूमते हुए फूल। वहाँ पहुँचने के लिए आप मोटर में बैठें और फिर मोटर को ही सजाने-सँवारने, माँजने और चमकाने मे लगे रहे तो कश्मीर पहुँचेगे कैसे ? मोटर को ठीक हालत में रखना आवश्यक है। इसे पैट्रोल दीजिये, मोबिल-ऑयल दीजिए, ब्रेक-ऑयल दीजिये, इसकी बैट्री को ठीक रखिये, इसके टायर अच्छे रखिये, किन्तु यह भी तो याद रखिये कि यह मोटर आपका गन्तव्य नही है, पडाव नही है। यह पडाव तक पहुँचने का एक साधन-मात्र है।

ऋषिकेश से आगे आप बद्रीनाथ जाना चाहते हैं। सडक मिल गई आपको। बहुत सुन्दर सडक है यह। टूटी है तो उसकी मरम्मत होनी चाहिये। नहीं टूटी है तो उसकी सुरक्षा होनी चाहिये। किन्तु यदि आप सडक से ही लिपटकर बैठ जाएँ, इसीपर झाड़ू देते रहे, इसी पर फूल उगाते रहे, इसी को सजाते-सँवारते रहे तो फिर बद्रीनाथ कब पहुँचगे भाई ? यह सडक उस मन्दिर तक जाने का एक साधन है केवल। यह स्वय मन्दिर नही है। सडक का ध्यान रखो अवश्य, सडक टूट गई तो मन्दिर तक पहुँचना असभव हो जाएगा। किन्तु इस बात को मत भूलिये कि सडक केवल सडक है, पडाव नही।

और अब साढे नौ बज गए इसलिए शेष कल।

दूसरा दिन

श्रद्धेय प्रधान महोदय, प्यारी माताओ और सज्जनो ! कल मैं उस बेचैनी की बात कह रहा था जो आज पश्चिम और पूर्व दोनों ओर विद्यमान है। सारी दुनिया में है। और इसलिए है कि दुनियावालों की एक चीज खो गई है। किसी की साइकिल खो जाए तो वह बेचैन हो जाता है; किसी की मोटर खो जाए तो वह अधिक बेचैन हो जाता है; और किसी की पत्नी खो जाए, बेटा खो जाए, बेटी खो जाए तो फिर पूछिये मत कि उसका क्या हाल होता है। इस तरह बेचैन होता है वह कि दिन को चैन नहीं, रात को नींद नहीं। उठ-उठकर दौड़ता है। जगह-जगह पूछता है। जीवन मृत्यु से भी गया-बीता जान पड़ता है; और मौत है कि आती नहीं। दिल का यह हाल होता है :

बाग में लगता नहीं, सहरा से घबराता है जी।
अब कहाँ ले जा के बैठें, ऐसे दीवाने को हम ।।

किन्तु साइकिल, मोटर, पत्नी, बेटी-बेटे से भी लाखों गुणा कीमती एक चीज खो गई तो…। थोड़ा-सा गलत कहता हूँ। यह चीज खोई नहीं। इसका ज्ञान खो गया है कि यह चीज कहाँ है और कैसे है? एक सज्जन थे, दफ्तर से आए तो याद आया कि कल एक आवश्यक मुकद्दमा है। कचहरी जाना है। उस मुकद्दमे से सम्बन्धित जो कागज-पत्र थे, उन्हें फाइल से निकाला और अपने कोट की भीतरवाली जेब में रख दिया कि कल कहीं साथ ले-जाना न भूल जाऊँ, इसलिए उन्होंने ऐसा किया। खाना खाया और सो गए। प्रातः उठे, नहाए-धोए, कचहरी जाने को तैयार हुए तो उन कागजों की याद आई। अपनी अलमारी में देखा उन्होंने, कई फाइलों में देखा, मेज के खाने

ढूंढे, सारा घर छान मारा किन्तु कागज कहीं नहीं मिले तो क्रोध उतारने के लिए अपनी पत्नी पर बरस पड़े; बोले, "कैसे असभ्य बच्चे हैं तुम्हारे! यहां मैंने कागज रखे थे, पता नहीं उन्होंने कहाँ उठाकर फेंक दिये?"

ऐसा प्राय: होता है। बच्चे कोई अच्छा काम करें तो पति महोदय कहते हैं, 'ये मेरे बच्चे हैं, देखो कितने समझदार हैं!' और जब यही बच्चे जब कोई बुरी बात करें तो चिल्लाकर कहते हैं, 'ये कैसे बच्चे हैं तुम्हारे? इन्हे जरा भी समझ नहीं, असभ्य कहो के!' ऐसे ही एक पति ने अपने बच्चे की समझदारी की प्रशंसा करते हुए कहा, 'देखो कितना समझदार है! मेरी अक्ल ली है इसने।'

पत्नी भी नहले पर दहला थी। बोली, 'तुम्हारी ही ली होगी, मेरी तो अभी मेरे पास है।'

संभवत: ऐसे ही यह पति महाशय भी थे। पत्नी ने इनका गर्जना और चिल्लाना सुना तो बोली, 'बच्चों पर बरस रहे हैं आप। मुझे याद पड़ता है कि कल जब दफ्तर से आए थे तो कुछ कागजों को निकालकर आपने अपने कोट की जेब में रखा था। कहीं उन्हीं कागजों को तो आप नहीं ढूंढ रहे हैं?'

पति महाशय को याद आया। कोट की जेब में देखा तो वहाँ कागज मिल गए। वह बोले, 'अरे, मैं तो भूल ही गया था। ये कागज तो मैंने ही यहाँ रखे थे।'

यही हाल इस खोई हुई चीज का है। यह चीज कहीं खोई नहीं है। इसका ज्ञान खो गया है। वह चीज हर समय, हर क्षण हमारे अन्दर विद्यमान है।

जिन्हें मैं ढूंढता था आसमानों में जमीनों में।
वो निकले मेरे जुल्मतखाना-ए-दिल के मकीनों में॥

वह चीज कहीं गई नहीं, हमारे अन्दर विद्यमान है। किन्तु दिखाई देती है भीतर की आँख से, बाहर की इस आँख से नहीं।

जाहिर की आँख से न तमाशा करे कोई।
हो देखना तो दीदा-ए-दिल वा करे कोई॥

वह किसी सातवें या चौदहवें आकाश पर नहीं कि इकबाल-जैसे शाइर कह सकें :

बिठा के अर्श पे रक्खा है तूने ऐ जाहिद!
खुदा वो क्या है जो बन्दों से एतराज करे?

नहीं, वह किसी आकाश में या पाताल में नहीं है। हर जगह है और इस शरीर के अन्दर है। उसी की बात कहते हुए वेद भगवान् ने कहा :

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्,
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

मैं जानता हूँ उस महान् पुरुष को, उस देवताओं के देवता, महादेव, परमदेव, परमेश्वर को, जो अनन्त प्रकाश से जगमगाता है, जैसे अरबों सूर्यों को प्रकाश देनेवाला महासूर्य चमकता हो; जो अज्ञान के अन्धकार से परे है, उसको जानकर ही कष्टों, क्लेशों, दुःखों, विपत्तियों का अन्त होता है। बीमारी, गरीबी, अपमान, पराजय, वियोग और प्रत्येक बुरी बात का अन्त होता है। इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग है नहीं। बस, यही एकमात्र मार्ग है।

विज्ञान के इस युग में दुनिया यदि दुःखी है तो क्यों? विज्ञान ने मानव को सुख-सुविधा पहुँचाने में कोई कसर उठा नहीं रखी। एक समय था जब लोग पत्थरों को रगड़कर आग निकालते थे। आज आप बटन दबाइये तो बड़े-बड़े कमरे और बड़े-बड़े हाल जगमगा उठते हैं। एक समय था जब भारत के मुगल बादशाह शीतल जल पीने के लिए काबुल और कश्मीर से बर्फ मंगाते थे। आगरा तक पहुँचते-पहुँचते बर्फ का निन्यानवे प्रतिशत भाग पिघलकर समाप्त हो जाता था। यह इतनी महँगी होती थी कि बादशाहों और बेगमों के सिवा कोई बर्फ

का ठंडा पानी नहीं पी सकता था। आज आपके घर में झाड़ू देनेवाला भंगी भी बर्फ से ठंडा किया हुआ पानी पीता है। एक समय था, जब लोग सौ मील की दूरी पर भी जाते तो इस तरह, जैसे इस दुनिया से विदा हो रहे हों। परिवारवाले और सगे-सम्बन्धी रोते हुए इस तरह यात्री को विदा करते कि जाने वह अब कभी लौटकर आएगा या नहीं। आज आप रेलगाडी में बैठिये, सौ नहीं, हजार-डेढ़-हजार मील की दूरी पर भी चले जाइये, आपको कोई चिन्ता नहीं होती। आपके सम्बन्धियों और प्रेमियों को चिन्ता नहीं होगी। एक समय था जब एक देश से दूसरे देश जाना, ऐसा समझा जाता था जैसे एक दुनिया से दूसरी दुनिया में जाना। पिछले दिनों मैं ३६ हजार मील यात्रा करके आया। कितने ही देशों में गया। सब जगह घूमकर इस प्रकार वापस आ गया जैसे यह एक साधारण-सी बात हो। यह सब-कुछ विज्ञान के द्वारा संभव हुआ। विज्ञान ने वास्तव में मानव की सुख-सुविधा के ऐसे साधन पैदा किये हैं जिनके लिए वैज्ञानिकों को बधाई मिलनी चाहिये।

किन्तु इन सब बातों के बावजूद विज्ञान सब-कुछ तो है नहीं। विज्ञान यह तो बता सकता है कि यह दुनिया कैसे बनी? पर यह कदापि नहीं बता सकता कि क्यों बनी? वेद बताता है कि यह दुनिया क्यों बनाई गई और इसका उद्देश्य क्या है? अभी-अभी मैंने यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय का एक मंत्र आपको सुनाया जो घोषणा करता है कि इस ईश्वर को जाने बिना मनुष्य को कभी शान्ति नहीं मिल सकती, सुख नहीं मिल सकता। किन्तु प्रश्न यह है कि उसको जानें कैसे? देखें कैसे?

यह पंजाबी बाग का आर्यसमाज है। आप पता पूछकर यहाँ पहुँचते हैं। इसको चारदीवारी के उस छोटे-से कमरे को देखकर पहचानते हैं कि यही आर्यसमाज मन्दिर है। आप इसे देख सकते हैं। यह दिखाई देता है। किन्तु वह परम पुरुष तो दिखाई ही नहीं देता। उसका रंग नहीं, रूप नहीं, मूरत नहीं, सूरत नहीं। वह सबकी सुनता

है किन्तु उसके कान नहीं। सबको देखता है किन्तु उसकी आँखें नहीं। सर्वत्र विद्यमान है किन्तु उसके पाँव नहीं। सब-कुछ करता है किन्तु उसके हाथ नहीं। सबको पुकारता है किन्तु उसका मुँह नहीं। ऐसे विचित्र व्यक्तित्ववाले उस परमपुरुष को कोई जाने और देखे कैसे ?

कल मैंने आपको यजुर्वेद के सत्रहवें अध्याय का इकतीसवाँ मंत्र सुनाया था कि वह जिसने इस सारी दुनिया को बनाया, जो सबसे भिन्न होकर भी सबके अन्दर है, उसे कौन देख नहीं पाता ? सबसे पहले वह जिसकी आँखों पर अज्ञान के अन्धकार का धुन्ध और कोहरे का पर्दा है। फिर वह जो 'जल्पी' है, निरर्थक बातें, व्यर्थ के झगड़े करता है। तब वह जो 'असुतृप' है, केवल अपने शरीर के पोषण में लगा रहता है, इन्द्रियों का दास बन गया है ; और अन्त में वह जो वेद और दूसरे शास्त्रों के सम्बन्ध में मौखिक जमा-खर्च तो बहुत करता है, किन्तु क्रियात्मक रूप में कुछ नहीं करता। ये चार प्रकार के लोग उस परमपुरुष को, इसके बावजूद नहीं जान पाते कि वह सबके अन्दर है।

फिर कौन पाता है उसे ? किस तरह पाता है ? यजुर्वेद के जिस इकतीसवें अध्याय में वह मंत्र आया, जिसका मैंने ऊपर उल्लेख किया, उसे 'पुरुषसूक्त' भी कहते हैं। महर्षि दयानन्दजी ने 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' में इस 'पुरुषसूक्त' की बहुत सुन्दर व्याख्या की है। इसी पुरुषसूक्त में एक मंत्र आता है जिसमें बताया गया है कि इस 'पुरुष', इस 'परमपुरुष' को, इस परमेश्वर को कौन पाता और किस प्रकार पाता है। मंत्र है :

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऽ ऋषयश्च ये॥

इसका सीधा-सा अर्थ है—उस परम पुरुष परमेश्वर को जो सदा से, बहुत पहले से भजन करने, भक्ति करने, पूजा करने, आदर करने के योग्य है, और जिसकी उपासना से यह सारा ब्रह्माण्ड भरपूर है, उसी देव को साधना करने वाले और ऋषि लोग पूजते हैं।

किन्तु इस सक्षिप्त से अर्थ से इस मत्र में कही गई असल बात मालूम नही होती। इसमे तीन शब्द आते हैं—देवा, साध्या और ऋषय । इन तीन शब्दो के महत्त्व को मैं आपके सामने रखूँगा।

'देवु' का अर्थ है देवता। 'देवता' का एक अर्थ है देनेवाला, किन्तु केवल इतना ही इस शब्द का पूरा अर्थ नही है। महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' के पहले समुल्लास में इस शब्द का अर्थ बताते हुए जो कुछ कहा है, उसे जरा अधिक स्पष्टता से सुनिये

'दिव' धातु से 'देव' शब्द सिद्ध होता या बनता है। इस धातु का एक अर्थ है 'क्रीडा' अर्थात् खेल। दूसरा अर्थ है 'विजिगीषा।' 'विजिगीषा' का अर्थ है जीत दिलाने की इच्छा। तीसरा अर्थ है—व्यवहार। अर्थात् सतत आचरण। चौथा अर्थ है 'द्युति' अर्थात् चमक, प्रकाश, तेज। पाँचवाँ अर्थ है 'मोद' अर्थात् आनन्द, सुख, शान्ति। छठा अर्थ है 'मद' अर्थात् अहकार का नाश करनेवाला। सातवाँ अर्थ है 'स्वप्न' अर्थात् निद्रा, सुषुप्ति। आठवाँ अर्थ है 'कान्ति' अर्थात् जिसकी इच्छा करनी चाहिये। नवाँ अर्थ है 'गति' अर्थात् चाल, ज्ञान।

ये हैं इस छोटे से 'धातु' के अर्थ जिससे 'देव' शब्द बनता है। इसलिए महर्षि दयानन्द कहते हैं

'जो शुद्ध जगत् को क्रीडा कराने के लिए, धार्मिक सत्पुरुषो को विजय दिलाने के लिए निरन्तर क्रियाशील है और दूसरो को क्रियाशील होने के साधन उपलब्ध करता है, जो स्वय प्रकाश है, प्रकाशस्वरूप है और दूसरो को प्रकाश देनेवाला है, जो सदा स्तुति करने के योग्य है, जो स्वय आनन्दस्वरूप है, अनन्त आनन्द से भरपूर है और दूसरो को आनन्द देनेवाला है, अहकारी के अहकार को नाश करनेवाला है, प्रत्येक दिन के बाद रात्रि, हर जागरण के बाद सुषुप्ति, हर सृष्टि के बाद प्रलय को पैदा करके सबको सुला देता है। जो अकेला ही इस योग्य है कि उसकी कामना कीजिये, जो अनन्त ज्ञान से भरपूर है, दूसरो को ज्ञान देनेवाला है, मार्ग दिखानेवाला है, उस

परमेश्वर का नाम ही 'देव' है। और जो अपने स्वरूप में आनन्द से आप ही खेल करे, या जो किसी की सहायता के बिना खेल की तरह सारे जगत् को बनाता और सब खेलों का आधार है और जो सबको जीतनेवाला है और स्वयं कभी जीता नहीं जाता, जो न्याय और आनन्द से भरपूर होकर इस दुनिया के सभी व्यवहारों को चलाता है, जो इन सारी चलनेवाली और अचल चीजों को प्रकाश देता है, प्रकट करता है, जो सबकी प्रशंसा के योग्य है, जिसमें निन्दा करने-योग्य कोई बात नहीं है, जो आनन्द-ही-आनन्द से भरपूर है, जिसके लिए कोई दुःख, कष्ट नहीं और जो दूसरों को सुख व आनन्द देता है, जो सदा प्रसन्न है, जिसे कोई चिन्ता नहीं, और जो दूसरों के दुःखों को दूर करता है, जो महा-प्रलय के समय सब आत्माओं को इस दशा में सुला देता है जिसका किसी को पता नहीं लगता, जिसकी सभी 'सत्यकाम'—कल्याण की कामना करनेवाले, और भद्र पुरुष सदा कामना करते हैं, और जो सबमें विद्यमान है, सर्वत्र विद्यमान है, और जो इस योग्य है कि उसे जाना जाए, उस परमेश्वर का नाम 'देव' है।'

यह है इस छोटे-से शब्द 'देव' का थोड़ा-सा अर्थ। पूरा अर्थ करना हो तो संभवत: एक पूरी पुस्तक लिखी जाएगी। 'देव' का एक अर्थ ज्ञानी भी है। 'शतपथ ब्राह्मण' लिखता है कि दो प्रकार के लोग इस संसार में हैं—एक देव, दूसरे मनुष्य। जो सत्य की ओर जाता है—सच बोलता है, सच को मानता और सच्चा कर्म करता है, वह 'देव' है। जो झूठ बोलता, झूठ मानता, झूठा कर्म करता है, वह मनुष्य है। सत्य को प्राप्त करने से—सत्य कहने, सत्य मानने, सत्य करने से सुख प्राप्त होता है, शान्ति होती है। ऐसा करनेवाला ऊपर उठता है। झूठ की ओर जाने, झूठ बोलने, झूठ मानने, झूठ करने से दुःख प्राप्त होना है, बेचैनी होती है। ऐसा करनेवाला नीचे गिरता है। यह सब-कुछ 'शतपथ ब्राह्मण' में लिखा है। 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में महर्षि दयानन्दजी महाराज ने तेंतीस देवताओं का भी उल्लेख किया

है , दैवी सम्पदा और आसुरी मम्पदा का भी। दैवी सम्पदावाली या देवताओ के सम्बन्ध मे महर्षि दयानन्द ने लिखा है—'जो डरत नही, सत्य के मार्ग पर चलते हैं, जो काम, क्रोध लोभ, मोह और अहकार से परे है, उनसे ऊपर उठकर कर्म करते हैं जो शत्रु का भी भला चाहते है, जो प्रतिदिन यज्ञ करते और पुण्य कर्म करके ब्रह्म का दर्शन पाते हैं, वे देवता हैं। और जो छल-कपट, असत्य अन्याय, अत्याचार से काम लेते हैं, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहकार के वस मे होकर काम करते हैं, वे आसुरी मम्पदावाले या राक्षस हैं।'

और 'यजुर्वेद' के 'पुरुष सूक्त' मे आने वाले जिस मन्त्र का मैंने उल्लेख किया, वह कहता है कि उस प्राचीन पूज्य परमपुरुष परमेश्वर को वे लोग प्राप्त करते हैं जो देव हैं, जिन्होने 'दैवी सम्पदा'—देवताओ के गुणो को प्राप्त कर लिया है। और यह जो अष्टाग योग है न भाई! उसमे इसी दैवी सम्पदा को प्राप्त करने का मार्ग बताया गया है। अष्टाग योग —'यम' और 'नियम' का कोई पालन करे तो वह स्वय ही देवता बन जाता है। ये दस 'यम' और 'नियम' हैं

१ अहिंसा—किसी को दु ख न देना।

२ सत्य—सदा सत्य से काम लेना , सचाई को मानना, सचाई से काम करना।

३ अस्तेय—चोरी न करना। लोभ के वश होकर किसी ऐसी वस्तु को नही लेना, जो तुम्हारी न हो।

४ ब्रह्मचर्य—कामनाओ के वस होकर नही, किन्तु ब्रह्म के लिए ब्रह्म मे आचरण करना।

५ अपरिग्रह—अधिक जोडने की प्रवृत्ति को रोकना। अपनी आवश्यकताओ को कम रखना और शरीर की आवश्यकता-भर के लिए भोजन वसन स्वीकार करना।

६ शौच—स्वच्छता भीतर और बाहर—मन और शरीर को निर्मल रखना। सभी प्रकार के मलो से बचना।

७ सन्तोष—सन्तुष्ट रहना। दु ख हो या सुख, रोग हो या

स्वास्थ्य, अमीरी हो या गरीबी, सबको भगवान् की कृपा समझकर स्वीकार करना। 'जैसे राखे तैसे रहना।'

८. तप—प्रत्येक स्थिति को, प्रत्येक दुःख-क्लेश को हँसते हुए इस विश्वास के साथ सहन करना कि यह मेरे कल्याण के लिए है।

९. स्वाध्याय—अच्छे ग्रन्थों को पढ़ना, अच्छे लोगों का संग करना, आत्मालोचन करना कि मुझमें कोई दुर्गुण-दोष तो नहीं आ गया है? ज्यों ही अपनी किसी बुराई का पता लगे, उसे दूर करना।

१०. ईश्वर-प्रणिधान—यह सब-कुछ करते हुए अपने को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर देना।

ये दस काम मनुष्य करे तो वह देवता बन जाता है।

किन्तु यदि देवता की इतनी महानता और महत्त्व है तो वेद में बार-बार मनुष्य के महत्त्व पर जोर क्यों दिया गया है? इसलिए कि मनुष्य ही ऊपर उठकर देवता बनता है। मानव को यह स्वतन्त्रता है कि वह अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करे। अच्छा करे या बुरा, यह उसकी अपनी इच्छा पर निर्भर है। मनुष्यों में कुकर्मी भी हैं, पापी भी। इन्हें देखकर कुछ लोग घृणा करते हैं। किन्तु विचार करके देखें तो जान पड़ेगा कि ये पाप करनेवाले मनुष्य भी मानव के उस महत्त्व को प्रकट करते हैं जो किसी दूसरे प्राणी में नहीं है। दूसरे सभी जीवनधारी ऐसे शरीरों में हैं, जहाँ वे केवल अपने पूर्व किये हुए कर्मों का फल भोगते हैं। इनमें बुरे शरीर भी हैं और अच्छे भी। इनमें पशु भी हैं और देवता भी। दोनों में से कर्म करने की स्वतन्त्रता किसी को नहीं है। केवल मानव को ही यह स्वतंत्रता है कि वह अपने कर्मों का फल भोगने के साथ-साथ अपनी इच्छा से जो भी कर्म करना चाहे, कर सकता है; पाप भी और पुण्य भी; भलाई के मार्ग पर भी बढ़ सकता है और बुराई के मार्ग पर भी। यह है मानव-शरीर का महत्त्व। इसके द्वारा मानव पशु भी बन सकता है; घोर नरक में भी

जा सकता है ; पतन की पराकाष्ठा तक भी पहुँच सकता है और देवता भी बन सकता है ; ऊँची-ऊँची जगह भी पहुँच सकता है।

और सुनो भाई! यह जो भोग-योनियाँ हैं, जिनमे आत्मा अपने बुरे कर्मों का फल भोगता है या जब मनुष्य के शरीर मे बुरे कर्मों के फल के कारण दु ख होता है, बीमारी, गरीबी, पराजय, अपमान और इसी प्रकार की दूसरी स्थितियो से गुजरना पडता है, यह भी भगवान् की कृपा है। साधारणतया लोग यदि किसी ऐसे आदमी को देखें जिसके पास धन-सम्पत्ति है, अच्छी पत्नी है, अच्छा परिवार और कारोबार है, जिसका स्वास्थ्य अच्छा है और जिसे हर प्रकार की सफलता प्राप्त है तो कहते है कि इस पर भगवान् की कृपा है। और यदि वे किसी ऐसे आदमी को देखें जो दु खी है, रोगी है, अगहीन है, निर्धन है, जिसका परिवार अच्छा नही, जिसके पास रहने की जगह नही, खाने को अन्न नही, और जिसे दूसरे कष्ट भी हैं तो कहते है कि इस पर भगवान् का कोप है। मैं ऐसी बात नही मानता। मैं समझता हूँ दु.ख या सुख, अमीरी या गरीबी, स्वास्थ्य और रोग, मान-अपमान, प्रत्येक अवस्था मे भगवान् की कृपा ही रहती है। वह कभी किसी पर क्रोध नही करता। कभी किसी को कोई हानि नही पहुँचाता। किसी को दु ख-कष्ट देने की इच्छा कभी उसके भीतर जागती ही नही। आपने कभी सुनार को देखा है कि किस प्रकार वह सोने को बार-बार धधकती आग मे जलाता है, बुझाता है, ठडा करता है और फिर तपाता है? क्या वह सुनार उस सोने पर कुपित है? क्या वह उस पर क्रोध करता है? क्या वह उसे जलाकर समाप्त कर देना चाहता है? नही। मेरे भाई! वह बार-बार ऐसा करता है तो इसलिए कि सोने को कुन्दन बना दे। उसका मूल्य बढा दे, उसकी चमक बढा दे। बार-बार वह उसे तपाता है तो सोने का कल्याण करने के लिए। इसलिए कि उसमें जितनी भी मैल हो, खोट हो, वह दूर हो जाए।

ऐसे ही ईश्वर भी मनुष्य को बार-बार निर्धनता, दु.ख, रोग, विपत्ति, कष्ट-क्लेश, पराजय, अपमान और दूसरी भट्ठियो म डालता

है जिससे आत्मा पर जो मैल आ गई है, वह दूर हो जाए, वह फिर से कुन्दन की भांति चमक उठे। उसका कल्याण हो और उसको वह सुख और आनन्द मिलने लगे जो निश्चित रूप से उसे मिल सकता है। इसीलिए अथर्ववेद में ईश्वर को:

सुन्दरं सुन्दराणाम्, भीषणं भीषणानाम्।

कहा गया है। अर्थात् वह सौन्दर्यवालों से भी सुन्दर है। उससे अधिक सुन्दर, मनोहारी, मधुर कुछ भी नहीं। और वह भयंकर-से-भयंकर भी है। इतना भयंकर कि भय भी भयभीत हो जाए। ये दोनों उसके रूप हैं। किन्तु वह किसी भी रूप में काम करे, उसकी कृपा निरन्तर बनी रहती है, कभी सुन्दर रूप में तो कभी भयंकर रूप में।

एक रोगी है। उसके पेट में फोड़ा है। डाक्टर उसे ऑपरेशन की मेज पर ले-जाकर लिटाता है। उसकी चिकित्सा कैसे होगी, यह डाक्टर ही जानता है। एक उपाय यह है कि खाने-पीने की कोई दवाई देकर या इंजेक्शन लगाकर उस गले-सड़े फोड़े की चिकित्सा करे या शल्य-चिकित्सा द्वारा चीर-फाड़कर उस गले-सड़े फोड़े को बाहर निकाल दे। दोनों विधियों में से किस दशा में कौन-सी विधि अपनाई जाए, इसका निर्णय तो डाक्टर ही कर सकता है। किन्तु वह एक विधि अपनाए या दूसरी, वह जो कुछ भी करता है रोगी के भले के लिए ही करता है। यदि वह दवाई या इंजेक्शन के द्वारा रोगी को अच्छा करने का प्रयत्न करता है, तो भी रोगी के भले के लिए करता है। प्रत्येक दशा में उसकी कृपा तो रहती ही है।

इसलिए मैं कहता हूँ कि दुःख-कष्ट-क्लेश, रोग-निर्धनता-पराजय को देखकर घबराना नहीं चाहिये। निराश नहीं होना चाहिये। प्रत्येक स्थिति को धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिये। सन्तोष से काम लेना चाहिये। ऐसा करना 'देवतापन' है।

कुछ लोग होते हैं जो हर घड़ी शिकायत ही करते रहते हैं—'क्या है जी, हमारा जीवन भी कोई जीवन है? इससे तो मौत ही अच्छी!'

अच्छी बात है भाई ! मर जाओ, रोकता कौन है ? तुम्हारे मरने से ससार की यह निरन्तर बढती हुई जनसख्या बहुत कम तो हो नही जाएगी। दुनिया को बहुत घाटा भी नही पडेगा। जाओ मरो !

किन्तु कौन मरता है जी ! उस लकडहारे की बात तो आपने सुनी ही होगी। गर्मियो के दिन थे, दोपहर का समय। देर तक वह जगल मे लकडियाँ काटता रहा। जब एक भारी गट्ठर हो गया तो उसे उठाकर नगर की ओर चल पडा। सिर पर बोझ, गर्मियो की दोपहर की धूप और लकडियाँ काटने से थका हुआ शरीर, वह लकडियो के गट्ठर को एक ओर फेककर दु खी होकर बोला, "हाय रे ! इससे तो मौत ही आ जाए तो अच्छा है।"

मौत कही पास ही खडी थी। वह सामने आ गई और बोली, "तुमने याद किया मुझे ?"

लकडहारे ने पूछा, 'तुम कौन हो ?"

मौत ने उत्तर दिया, "मैं वही मौत हूँ जिसे तुम अभी-अभी बुला रहे थे। कहो, क्या काम है ?"

लकडहारे ने जल्दी से कहा, "और तो कुछ नही, जरा यह गट्ठर उठाकर मेरे सिर पर रख दो।"

नही जी ! मरना कोई नही चाहता।

महाभारत मे एक कथा आती है। है तो बेढगी-सी, किन्तु आप सुनिये !

महर्षि व्यास के नाना थे—निषादराज। वह बूढे हो गए, किन्तु मरना नही चाहते थे। मौत से उन्हें बहुत डर लगता था। एक दिन नारद मुनि उन्हे वीणा बजाते हुए मिल गए। निषादराज ने नारदजी से कहा, "नारदजी, मैं मौत से बहुत डरता हूँ। मरने को मेरा जी नही चाहता। आपका देवताओ के यहाँ बहुत आना-जाना है। मेरी सिफारिश कर दीजिये कि मुझे मारें नही। मेरी मौत न हो।"

नारदजी ने सारी बात समझी। मन-ही-मन मुस्कराते हुए बोले, "निषादराजजी, देवताओ के यहाँ मेरा उतना आना-जाना नही है,

जितना आपके दोहते व्यासजी का है। उनका सभी देवता सम्मान करते हैं। आप अपने दोहते को कहिये कि आपकी सिफारिश कर दें। उनकी सिफारिश कोई टालेगा नहीं। किन्तु एक बात है, व्यासजी अपने मन की बात कहने से पहले उनसे वचन ले लीजिये कि वे आपकी सहायता करें। यह बहुत आवश्यक है और यह भी आवश्यक है कि वे सिफारिश करने जाएँ तो आप भी उनके साथ जाइये। ऐसा न हो कि वे वैसे ही टाल दें।"

कुछ दिनों बाद व्यासजी अपने नाना को मिलने आए तो निषादराज बोले, "आओ व्यास, मैं तो कई दिनों से तुम्हारी राह देख रहा था।"

व्यासजी ने पूछा, "ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी मेरी ?"

निषादराज बोले, "अरे भई, आवश्यकता है तभी तो तुम्हारी राह देख रहा था! मुझे तुम्हारी सहायता चाहिये।"

व्यासजी ने पूछा, "किस काम मे सहायता चाहिये ?"

निषादराज बोले, "पहले वचन दो कि मेरी बात मानोगे, मेरी सहायता करोगे।"

व्यासजी बोले, "अवश्य करूँगा। आप बताइये, क्या बात है ?"

निषादराज बोले, "व्यास! मुझे मृत्यु से बहुत भय लगता है। मैं मरना नहीं चाहता। देवता तुम्हारी बात मानते हैं। तुम यमराज को कहो कि मुझे मारे नहीं।"

व्यासजी वचन दे चुके थे, इसलिए कहा, "जो पैदा हुआ है, उसकी मृत्यु तो अवश्यम्भावी है। किन्तु मैं वचन दे चुका हूँ। यमराज से आपकी सिफारिश अवश्य करूँगा।"

निषादराज बोले, "किन्तु मुझे भी साथ लेते चलो।"

व्यासजी ने कहा, "चलिये।"

और दोनों पहुँच गए यमराजजी के पास। व्यासजी ने यमराज से कहा—"यमदेव! ये मेरे नाना श्री निषादराज हैं। ये मृत्यु से बहुत डरते हैं और मरना नहीं चाहते। मैं आपसे प्रार्थना करने आया हूँ

कि आप इन्हे मारिये मत !"

यमराज बोले, "आप कहे तो मैं मानूंगा ही किन्तु कठिनाई यह है कि लोगो को मारने का काम मैंने मौत को सौंप रखा है। मैं उससे कहूँगा कि वह आपके नाना को न मारे।"

निषादराज ने कहा, "यमराज ! इतनी कृपा आप करते हैं तो हमे भी साथ ले चलिये। हमारे सामने ही उन्हे कह दीजिये। इस ससार मे करोडो लोग हैं। मौत उन्हे मारती रहे। बस, मुझे न मारो !"

यमराज बोले, "हाँ, चलिये। मैं अभी चलकर कह देता हूँ।"

और यमराज, महर्षि व्यास और निषादराज तीनो पहुँच गए मौत के पास।

यमराज ने कहा, "देखो, ये महर्षि व्यास हैं और ये हैं इनके नाना निषादराज। श्री निषादराज को मृत्यु से बहुत भय लगता है। ये मरना नही चाहते। व्यासजी ने इनकी सिफारिश की है। मैंने उनकी सिफारिश मान ली। अब निषादराज को मारना नही।"

मौत ने उत्तर दिया, "महाराज ! आप किसी पर कृपा करना चाहे तो मैं उसे मारूँगी कैसे ? किन्तु किसको कब मरना है इसका निर्णय तो काल देवता करता है। मेरा काम तो जहाँ वे आज्ञा दें वहाँ पहुँच जाना है। आप काल देवता से कहिये। उन्हे आज्ञा दीजिये। आप चाहें तो मैं भी आपके साथ चलती हूँ।"

लीजिये, अब एक बडा शिष्टमण्डल चल पडा। निषादराज, महर्षि व्यास, यमराज और मौत, चारो पहुँचे काल देवता के पास। व्यासजी ने काल देवता से प्रार्थना की, "काल देव ! ये मेरे नाना श्री निषादराज हैं। ये मौत से बहुत डरते हैं। मरना नही चाहते। यमराज ने इनपर कृपा कर दी, मौत ने भी। दोनो ने मेरी प्रार्थना मान ली कि मेरे नाना मरें नही। किन्तु कौन किस समय मरेगा, इसका निर्णय तो आप करते हैं। आप भी कृपा कीजिये कि मेरे नाना को कभी मृत्यु न हो।"

काल देवता ने कहा, "आप-जैसा महर्षि सिफारिश करे, स्वयं

यमराज उसे मान लें तो मैं न करनेवाला कौन हूँ ? किन्तु मरनेवालों की सूची तो विमाता के पास रहती है। वही देखकर मुझे बताती है कि किसका समय आ गया ? किस तरह उसे मरना है ? मैं उनसे चलकर इस सम्बन्ध में पूछता हूँ ?"

निषादराज बोले, "हम भी आपके साथ चलेंगे।"

काल देवता ने कहा, "चलिये।"

और यह पूरा जुलूस विमाता के पास पहुँचा। व्यासजी ने फिर अपनी बात कह सुनाई। बोले, "ये मेरे नाना श्री निषादराज हैं। मरना नहीं चाहते। मौत से भयभीत हैं। यमराज, मौत और काल देवता सबने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। अब आप भी कृपा करके मान जाइये। अपनी सूची में से मेरे नाना जी का नाम काट दीजिये।"

विमाता ने कहा, "महर्षि व्यास, मुझे पता था कि आपके नाना मौत से बहुत डरते हैं ; मरना नहीं चाहते। इसीलिए मैंने उनके मरने के सम्बन्ध में ऐसी शर्त लगा रखी थी जो सुगमता से कभी पूरी न हो सके। किन्तु मैं अब क्या करूँ ! यह देखिये क्या लिखा है—'निषादराज मौत से बहुत डरते हैं। इनकी मौत तब तक नहीं होनी चाहिये जब तक वे महर्षि व्यास, यमराज, मौत और काल देवता सबको साथ लेकर स्वयं मेरे पास न आएँ'।

और तभी निषादराज धड़ाम से गिर पड़े और मर गये। विमाता ने कहा, "मैंने बड़ी कठिन शर्त रखी थी। ये सब लोग साधारणतया कभी इकट्ठे नहीं होते किन्तु अब मैं क्या करूँ ? आपके नानाजी तो स्वयं ही सबको इकट्ठा करके मेरे पास ले आए।"

कोटि जतन कोई करे, कर ले लाख हजार।
जो जन्मा सो मरहि है, यही जगत व्योहार॥
कोटि जतन करना चहे, कर ले मेरे मीत !
जो जन्मा सो मरहि है, यही जगत की रीत॥
जन्मा-जन्मा सब कहें, यह नहि जानत कोय।
जो जन्मा सो जायगा, आखिर मरना होय॥

यह दुनिया का नियम है भाई ! इसे कभी कोई वदल नही सका। इसे कभी कोई वदल नही सकता। जो बना है, वह मिटेगा अवश्य। जो पैदा हुआ है, वह मरेगा। इस दुनिया में किसी भी दूसरी बात के बारे में भले ही सन्देह हो, मौत के बारे मे किसी सन्देह की सम्भावना है नही। यदि कोई बात निश्चित है तो मरना। आज मरना या कल मरना, मरना आवश्यक है। इस मरने से डरोगे तो यह रुकेगा नही। उससे डरने की आवश्यकता है नही। जो देवता हैं, जो मानव के शरीर मे आकर अपने सत्यकर्म, सत्यभाषण, सत्यविश्वास और सत्य-ज्ञान के द्वारा आध्यात्मिक मार्ग पर चलते है, उनके लिए मृत्यु भयानक नही रहती। वे जानते हैं कि मृत्यु भी उनके कल्याण के लिए है। यह केवल एक पद से दूसरे पद पर वदलना-मात्र है। हँसते हुए वे कहते है :

जिस मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।
मरने ही ते पाइये, पूरन परमानन्द॥

और यह मौत है क्या ?

मर्ग इक मांदगी का वाकअ़ है, यानी आगे चलेंगे दम लेकर।

यह तो एक पडाव-मात्र है केवल। इस यात्रा के वीच ऐसे कितने ही पडाव आते हैं। यात्रा जारी रहती है।

जिन्दगी क्या है ? अनासर का जहूर तरतीब।
मौत क्या है ? इन्हीं अजज़ा का परेशाँ होना॥

प्रकृति के ये परमाणु मिलते हैं, रूप धारण करते है ; विखरते हैं, रूप वदल जाता है। यही तो मौत है। इससे चिन्ता क्यों ? यह तो मृत्युलोक है भाई ! संघर्ष, चिन्ता, विपत्तियाँ, दु:ख—इन सबके बावजूद संघर्ष—यही तो जीवन है ! अहोभाग्य कि इसमें मौत भी आती है, इसका अन्त भी होता है !

अपनी हस्ती को ग़म-ए-दर्दो-मुसीबत समझो।
मौत की कैद लगा दी है, ग़नीमत समझो॥

वह मिर्जा गालिव थे न ! आपको इसी दिल्ली में रहते थे। उर्दू व

फारसी के बहुत अच्छे शाइर थे। बहुत सुन्दर चीजें उन्होंने लिखी हैं। किन्तु उनके कई शे'र ऐसे हैं, जैसे उस महान् कवि को दुःख, कष्ट और मौत के सिवा कुछ सूझता नहीं था। हर घड़ी दुःख, हर घड़ी शिकायत। एक जगह वह कहते हैं :

है सब्ज:जार हर दर्द दीवार ग़मकद: ।
जिसकी बहार यह हो, फिर उसकी खिजां न पूछ ।।

एक और जगह कहते हैं :

कोई उम्मीद बर नहीं आती, कोई सूरत नजर नहीं आती।
मौत का एक दिन मुअय्यन है, नींद क्यों रातभर नहीं आती।
आगे आती थी हाले दिल पे हँसी, अब किसी बात पर नहीं आती।
हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी, कुछ हमारी खबर नहीं आती।
मरते हैं आरज़ू में मरने की, मौत आती है पर नहीं आती।

अब यह क्या विपत्ति है कि आदमी भी हर घड़ी शिकायत ही करता रहे! यही कहता रहे कि

क़ैदे हयात-ो-बन्दे ग़म, अस्ल में दोनों एक हैं।
मौत से पहले आदमी, ग़म से नजात पाए क्यों?

अरे भाई! सुख और दुःख तो कर्मों से मिलता है। कर्म ठीक न हों तो मौत के बाद भी मुक्ति नहीं।

और फिर यह भी तो कहते हैं कहनेवाले,

फना का होश आना, जिन्दगी का दर्द-सर जाना।
अजल क्या है खुमारे बाद: हस्ती का उतर जाना ।।

किन्तु मैं ऐसा नहीं मानता। मैं नहीं कहता कि जीवन दुःख और विपत्ति है। यह भी नहीं कहता कि यह खुमार है। मेरा विश्वास है कि मानव-जीवन एक बहुत बड़ा वरदान है। किन्तु वरदान हो या कुछ और, यह प्रारंभ होता है तो समाप्त भी होता है। इसके समाप्त होने की चिन्ता व्यर्थ है। यह तो निश्चित और अटल बात है तो फिर इसके लिए दुःख क्यों? चिन्ता क्यों?

यह है देवता का एक गुण। जो देवता है उसे मौत से भय नहीं

लगता। किन्तु 'देवता' का अर्थ 'देने वाला' भी तो है। देवो दानात्। जो देता है, वह देवता है। सूर्य देवता है, प्रकाश देता है, गर्मी देता है। चन्द्रमा देवता है, रस देता है, शीतल प्रकाश देता है। जल देवता है। वायु भी देवता है। दोनो जीवन देते है। धरती देवता है। उससे अन्न मिलता है, फल-फूल-सब्जियाँ मिलती हैं। ओषधियाँ मिलती हैं। ये देवता कभी अप्रसन्न हो जायँ तो दुनिया के लिए विपत्ति आ जाय। यह वायु है न, लेवर-यूनियन वालो की तरह यदि यह कभी एक घटा के लिए भी हडताल कर दे तो दुनिया की सरकारो को परिवार नियोजन की योजना बनाने की आवश्यकता नही रहेगी। दुनिया ही समाप्त हो जाएगी। ये योजनाएँ और सरकारें भी। इनके अतिरिक्त दूसरे देवता भी हैं। माता देवता है, वह जन्म देती है। पिता देवता है, वह पालता है। आचार्य देवता है, वह ज्ञान देता है। अतिथि देवता है, वह मानव-धर्म के पालन का सुअवसर देता है।

स्पष्ट है कि मनुष्य सूर्य, चन्द्रमा, वायु या जल नही बन सकता, धरती नही बन सकता। यदि वह देवता बनना चाहे तो आवश्यक है कि इन देवताओ के गुण अपने भीतर लाने का प्रयत्न करे। सूर्य का गुण क्या है? समय पर आता है, समय पर जाता है। लगभग दो अरब वर्ष हो गए, एक दिन क्या, एकक्षण के लिए भी उसने हडताल नही की। कभी वह किसी मजदूर-सगठन का सदस्य नही बना। बन जाए और कहे कि मुझे भी साल मे दो मास की छुट्टी मिलनी चाहिये तो सोचिये कि इस दुनिया की क्या दशा होगी? इसलिए प्राचीन काल में ब्रह्मचारी जब गुरु के पास पहुँचता तो गुरु उसे सबसे पहला उपदेश यह देता था · "सूर्य की तरह कर्म के मार्ग पर चल। सूर्य की तरह चमक। सूर्य की तरह अस्वच्छता का नाश कर। सूर्य की तरह प्रकाश दे। सूर्य जैसे इस ससार के कारोबार का ताना बाना बुनता हुआ कर्मयोग के मार्ग पर चलता है, उसके पीछे-पीछे तू भी चल। सूर्य जिस प्रकार रोग और मल का नाश करके प्रत्येक वस्तु को शुद्ध बनाता है, वैसे ही तू भी पापियो और पथभ्रष्टो को ठीक मार्ग दिखा-

कर प्रभु का भक्त बना दे।"

कई लोग पूछते हैं कि सूर्य के पीछे कैसे चलें? सूर्य धरती से नौ करोड़ तीस लाख मील की दूरी पर है। धधकती हुई हीलियम गैस का लगातार जलता हुआ गोला। हर क्षण सकड़ों एटमबम और हाइड्रोजन बम वहाँ फटते हैं। हर क्षण कई लाख मील लम्बी लपटें वहाँ उभरती हैं। उसके पीछे चलने का अर्थ क्या है? यह कि सूर्य के जिस-जिस गुण को हम अपने में धारण कर सकते हैं, उन्हें धारण करने का प्रयत्न करें। सूर्य का एक गुण यह है कि वह सदा अपने वृत्त में घूमता है। उससे हटता नहीं। मनुष्य का भी एक वृत्त है—मानवता। उसके लिए आवश्यक है कि इस वृत्त से हटे नहीं। हटे तो उस समय जब वह मानवता से ऊपर उठकर देवत्व की ओर बढ़ सके; नीचे गिरने के लिए नहीं। इसलिए वेद ने मानव को कहा, 'भगवान् ने तुम्हें मानव-शरीर दिया तो नीचे की ओर जाने के लिए नहीं, अपितु ऊपर उठने के लिए।' सूर्य का दूसरा गुण है कि वह सागरों, नदियों, नालों, झीलों, कुओं सबसे पानी लेता है। अपनी तीखी किरणों से हर जगह के पानी को भाप बनाकर ऊपर उठाता है। किन्तु लेने के बाद उस पानी को अपने पास नहीं रखता। धरती को वापस दे देता है कि खेत लहलहा उठें, फूल मुस्करा उठें, सब्जियाँ जाग उठें, फलों से लदे वृक्ष झूमने लगें। हर ओर हरियाली छा जाए। हर ओर नया जीवन जाग उठे। नदियाँ फिर से भर जाएँ, तालाब फिर से ऊपर तक पानी से भर जाएँ, कुएँ-बावड़ियाँ फिर से छलकने लगें।

ऐ मनुष्य! तू यदि सूर्य के पीछे चलना चाहता है तो उसके इस गुण को अपना। धन कमा, ईमानदारी से कमा। अच्छे उपायों से कमा और खूब कमा। वेद कहीं यह नहीं कहता कि धन मत कमाओ। वेद में स्पष्ट प्रार्थना है:

येन धनेन प्रपणम्।

ऐसी कृपा करो प्रभु! कि मेरी धन-सम्पत्ति निरन्तर बढ़ती जाय।

उपनिषद् का कथन है :

अन्नं बहु कुर्वीत । तद् व्रतम् ।
अन्नं न निन्द्यात् । तद् व्रतम् ।।

खूब अन्न पैदा करो, धन पैदा करो। इस प्रण के साथ आगे बढो कि हमे बहुत धनवान् बनना है। अन्न के विशाल भण्डार पैदा करने हैं। अन्न और धन की निन्दा न करो। किन्तु सूर्य की भाँति—यदि धन का सचय करो तो सूर्य की तरह उसे वापस भी कर दो। उनको दे दो, जिन्हे उसकी आवश्यकता है। जो बीमार है, दु खी हैं, निर्धन हैं। तुम्हारे पास धन है तो उसके ऊपर साँप बनकर न बैठ जाओ। उसको देश के लिए, समाज के लिए, दूसरे मनुष्यों के लिए खर्च करो। इस तरह उसका उपयोग करो कि उनके मन के सूखे खेत लहलहा उठें। उनके जीवन की पतझड वसन्त मे बदल जाए।

सूर्य का तीसरा गुण यह है कि वह कभी निराश नही होता। बादल आते हैं, घनघोर घटाएँ उमडती हैं। उनकी काली चादरो के पीछे सूर्य छिप जाता है। किन्तु सूर्य उन सबके ऊपर निरपेक्ष भाव से चमकता रहता है। उसे पता है कि बादल सदा नही रहेंगे। ये घटाएँ कभी-न-कभी बरसेंगी। आकाश कभी-न-कभी स्वच्छ होगा। फिर सूर्य के प्रकाश से धरती जगमगा उठेगी। तुम भी ऐसा ही करो भाई! दुनिया मे सुख और दु ख तो आते ही रहते हैं; आते हैं और चले जाते हैं। शोक की घटाएँ भी उठती हैं। पराजय, वियोग, निर्धनता, रोग के बादल भी उमडते हैं। किन्तु उनका अन्त भी होता है। सूर्य की भाँति सदा आशा से जियो। निराशा को कभी समीप न आने दो। ये घटाएँ अन्त मे फटेंगी अवश्य। यह अन्धकार सदा नहीं रहेगा। आशा के साथ, विश्वास के साथ, सूर्य की तरह चमको।

सूर्य का चौथा गुण यह है कि वह हर गन्दगी के पास पहुँचता है। जहाँ कीचड है, जहाँ दलदल है, जहाँ दुर्गन्ध से सडता हुआ पानी है, जहाँ मैला है, प्रत्येक स्थान पर उसकी किरणें पहुँचती हैं। हर

गन्दगी को साफ करने का यत्न करती हैं, किन्तु वे स्वयं कभी मैली नहीं होतीं। तुम भी ऐसे करो मेरी माताओ! मेरे सज्जनो! बुराई से घृणा न करो। उसे दूर करने का यत्न करो, किन्तु स्वयं बुराई में फँस न जाओ।

ऐसे कितने ही गुण हैं सूर्य के अन्दर। सूर्य के पीछे चलने का अर्थ यह है कि इन गुणों को धारण करो। सूर्य की तरह देवता बनो।

और फिर उपनिषद् में वह कहानी आती है—देव, असुर और मनुष्य तीनों गए प्रजापति के पास। तीनों ने कहा, "हमारा कर्त्तव्य क्या है, इसके सम्बन्ध में उपदेश दीजिये।" प्रजापति ने तीनों को एक ही अक्षर 'द' कहा। देवताओं ने ठीक ही समझा कि 'द' अर्थ है देना, दान करना। असुरों ने भी ठीक ही समझा कि 'द' का अर्थ है कि उनका कर्त्तव्य है दया करना। और मनुष्यों ने भी ठीक ही समझा कि 'द' का अर्थ है अपनी इन्द्रियों का दमन करना, उन्हें अपने वश में रखना।

दान, दया, दमन—ये तीन बातें मनुष्य करे तो वह देवता बन जाता है।

किन्तु मनुष्य इन्द्रियों का दमन करे, उन्हें वश में रखे, इसका उद्देश्य क्या है? क्या यह कि इनको नष्ट कर दे? कुछ लोग ऐसा भी करते हैं। किन्तु इन्द्रियों को नष्ट करना, इन्द्रियों का दमन करना नहीं है। सूरदास जी की कहानी तो आपने सुनी है। वह भगवान् कृष्ण के भक्त थे। भक्ति-भरे गीत लिखते, जगह-जगह इन्हें गाते फिरते, अपने कृष्ण की भक्ति का प्रचार करते थे। एक गाँव में गए। गर्मी बहुत थी, प्यास लगी तो एक कुएँ पर पहुँच गए, जहाँ कुछ स्त्रियाँ पानी भर रही थीं। उन्होंने पानी माँगा तो एक देवी ने ताजा पानी का घड़ा उठाया और पानी पिलाने लगी। सूरदासजी ने पानी पिया, आँखें उठाकर उस देवी को देखा तो मन में मैल आ गया। उस देवी ने फिर से अपने घड़े को भरा और उठाकर अपने घर की ओर चल पड़ी। घड़े को घर के भीतर रखकर देखा तो

सूरदास दरवाजे पर खडे हैं।

देवी ने पूछा, "ग्रौर पानी पियोगे भक्तजी ?"

सूरदास बोले, "नही।"

देवी ने पूछा, "फिर क्या कुछ ग्रौर वस्तु चाहिये ग्रापको ?"

सूरदास बोले, "हां।"

देवी ने पूछा, "क्या ?"

सूरदास बोले, "एक तेज छुरी, थोडी-सी देर के लिए।"

देवी घर मे गई। सूरदास के मन मे देवासुर-सग्राम हो रहा था—पाप ग्रौर नेकी में युद्ध। देवी छुरी लेकर बाहर ग्राई तो सूरदासजी ने तेजी से छुरी को ग्रपने हाथ में लेकर पहले एक ग्रांख को पुतली वाहर निकाल दी, फिर दूसरी ग्रांख को। ग्रांखें फूट गई। चेहरा लहू-लुहान हो गया। सूरदासजी ने छुरी को ग्रागे करते हुए कहा, "इसे ले लो देवीजी! ग्रांखो मे पाप ग्रा गया था, इसलिए मैंने इनका ग्रन्त कर दिया।"

वडे साहस का काम था यह। ग्रपने हाथो से ग्रपने-ग्राप को ग्रन्धा कर लेना साधारण बात नही है। किन्तु साहसपूर्ण होने पर ठीक काम नही था यह। ग्रपराध मन ने किया, दण्ड ग्रांखो को मिला। यह तो न्याय नही है। इन ग्रांखो से हम माँ को देखते हैं, बेटी को देखते हैं। इनमे कभी पाप या पुण्य ग्राता नही। पाप या पुण्य ग्राता है मन मे। इस मन को दण्ड देने की ग्रपेक्षा निरपराध ग्रांखो को फोडना ठीक नही है। यह इन्द्रियो को नष्ट करना है, उनका दमन करना नही। ग्रांख तो केवल साधन-मात्र है। वह कभी बदलती नही। मन बदलता है। मन ही पाप की ग्रोर ले जाता है, ग्रौर मन ही पुण्य की ग्रोर। मन को बदल लो तो इसी ग्रांख से भले काम भी होते हैं। मन को बदलो नही ग्रौर ग्रांख या किसी दूसरे ग्रग को नष्ट कर दो तो यह इन्द्रिय का दमन करना नही है।

कई लोग ग्रपने हाथ सुखा लेते हैं। हाथ को ऊपर उठाते हैं, फिर ऊपर ही उठाए रखते हैं। धीरे-धीरे वह सूखने लगता है। लकडी की

तरह कठोर हो जाता है। बेकार हो जाता है। यह तो तप नहीं है मेरे भाई! भगवान् ने हाथ दिया तो इसलिए नहीं कि इसे सुखा दो, इसे बेकार बना दो। इस हाथ से तुम किसी निर्बल को सहायता तो कर सकते हो! किसी पीड़ित की रक्षा भी कर सकते हो। किसी अनाथ-असहाय की सहायता भी कर सकते हो। किसी रोगी की सेवा भी तो कर सकते हो! यह हाथ तो बड़े काम की वस्तु है। इस-से अच्छे काम न करके इसे बेकार बना दो तो तप कैसे हुआ? इन्द्रियों का दमन करना कैसे हुआ? भगवान् कृष्ण ने गीता में बिलकुल ठीक कहा है कि बाहर के तप और त्याग से मन में वैराग्य उत्पन्न नहीं होता। त्याग और वैराग्य दोनों में बहुत अन्तर है। त्याग है किसी चीज को छोड़ देना, चाहे बाद में उसकी इच्छा से मन पागल ही होता रहे। वैराग्य है मन को बदल देना, उस वस्तु के मोह को, उसकी इच्छा को ही छोड़ देना।

एक माता ने मुझे बताया, "मैं हरद्वार गई हुई थी स्वामीजी, वहाँ उड़द की दाल छोड़ आई हूँ।"

मैंने हँसते हुए कहा, "छोड़ना ही था तो झूठ छोड़ आती माँ! क्रोध छोड़ आतीं या कड़वा बोलना छोड़ आतीं, यह उड़द की दाल का छोड़ना क्या हुआ?"

और फिर यह छोड़ना क्या हुआ कि बाहर से छोड़ दो और मन में उड़द की दाल ही पकाते रहो कि कितनी अच्छी होती है उड़द की दाल! कितनी स्वादिष्ट होती है! खाकर कितना आनन्द आता है! यह तो छोड़ना नहीं है मेरे भाई! हरद्वार में छोड़ आए और हर घड़ी उसके स्वप्न देखते रहे, ऐसे छोड़ने को छोड़ना नहीं कहते, दे देना नहीं कहते। छोड़ना हो, देना हो तो मन से छोड़ना-देना। यह है देवता-पन। खूब कमाओ, खूब दान करो, यह देवतापन है।

एक सेठजी प्रतिदिन दान करते थे। प्रातःकाल रुपए, अठन्नियाँ, चवन्नियाँ, दुअन्नियाँ सबका ढेर लगाकर बैठ जाते, लेनेवाले को देखते नहीं थे। माँगनेवालों को देते जाते थे। एक कवि ने उन्हें देखा;

सोचा—यदि कोई दूसरी या तीसरी बार ले ले तो सेठ जी को पता कैसे लगेगा ? यह किसी के मुंह की ओर आँख उठाकर देखते ही नही। और कई लोग ऐसा करते भी तो हैं। गुरुद्वारो मे प्रसाद बाँटा जाता है न ! एक नटखट लडके ने हाथ आगे किया, प्रसाद ले लिया। मन म लालच था ! प्रसादवाले हाथ को पीछे करके दूसरा हाथ आगे कर दिया। प्रसाद बाँटनेवाले ने कहा, "दोनो हाथो से प्रसाद लो।" लडके ने जल्दी से पहले प्रसाद को पीछे रखा। प्रसाद खराब हो गया। सभवत उसे कुत्ता खा गया। तो ऐसा भी करते है कई लेनेवाले।

इसलिए उस कवि ने पूछा

> साखें कहाँ दीवान जी, ऐसो देनो देन,
> ज्यो-ज्यो कर ऊपर उठें त्यो त्यो नीचे नैन।

दीवान जी ने कवि का अभिप्राय समझा और आँख उठाए बिना बोले

> देने वाला और है और देता है दिन रैन।
> वह भरम मुझपर करें इस हित नीचे नैन ।।

अरे भाई ! देनेवाला तो और है। वह दे नहीं तो दानी दान कसे करे ? वह दिल खोलकर देता है, तुम भी दिल खोलकर दूसरो की सहायता करो और मत भूलो इस बात को कि यदि तुम किसी अच्छे काम के लिए किसी निर्धन और दु खी की सहायता के लिए, किसी अनाथ और विधवा को सहारा देने के लिए, किसी रोगी और अपग की चिकित्सा के लिए, किसी बालक को शिक्षा के लिए, किसी बेकार को जीविका-उपार्जन के लिए, जिससे लोगो का भला हो सके ऐसे कुएँ के लिए, मन्दिर के लिए, तालाब के लिए, धमशाला के लिए दान देते हो तो दान लेनेवाले पर कृपा नही करते। दान लेनेवाला तुम पर कृपा करता है कि तुम्हारी सम्पत्ति को नेक काम म लगाता है। इस तरह दान देना, अभिमान के बिना, दूसरे का भला करने के लिए, दूसरे का दु ख दूर करने के लिए, निर्बल को सहायता के लिए, तो यह देवतापन है।

'देवता' और 'असुर' में अन्तर क्या है ?

ईश्वर दोनों को देता है। 'देवता' ईश्वर की देन को दूसरों के सुख के लिए खर्च करता है। 'असुर' इसे केवल अपने लिए खर्च करता है। महीना हो गया समाप्त। वेतन आ गया। अब योजनाएँ बन रही हैं। इतने रुपए फालतू हैं। एक ट्रांजिस्टर खरीद लें, एक फ्रिज खरीद लें, एक कूलर ले लें, एक टैलीविजन ही घर में ले आएँ—सब-कुछ अपने लिए करें—यह देवता का कार्य नहीं है।

जो अपने प्राणों की रक्षा के लिए दूसरों के प्राण लेता है, वह असुर है।

जो दूसरे के प्राणों की रक्षा के लिए अपना प्राण देता है, वह देवता है।

एक जगह यज्ञ हो रहा था। यज्ञ पूर्ण हुआ तो यज्ञ करनेवालों ने देवताओं और असुरों दोनों को बुलाया कि खाना खाने के लिए आइये। देवताओं ने यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया। असुरों ने कहा, "हम इस निमंत्रण को स्वीकार नहीं करते।"

यज्ञ करनेवालों ने पूछा, "आप क्यों अप्रसन्न हैं ? यह यज्ञ का भोजन है और सबके लिए है।"

असुर बोले, "ऐसे निमंत्रणों में हमारा अपमान होता है। हम देवताओं से किसी भी बात में कम नहीं हैं। किन्तु आप लोग पहले देवताओं को खिलाते हैं। वे खा चुकें तो हमें बिठाते हैं। हमें यह अपमान स्वीकार नहीं। हम भोजन करने आ सकते हैं किन्तु इस शर्त पर कि पहले हम खाएँगे और बाद में देवता। आपको यह शर्त स्वीकार न हो तो देवताओं के साथ हमारा शास्त्रार्थ करा लीजिये। पता लग जाएगा कि कौन अधिक विद्वान् हैं !"

यज्ञ करनेवालों ने कहा, "शास्त्रार्थ की आवश्यकता नहीं। हमें आपकी शर्त स्वीकार है। किन्तु हमारी भी एक शर्त है। भोजन से पूर्व हम आपकी, और देवताओं की भी, दोनों की बाँहों के साथ लम्बी लकड़ियाँ बाँध देंगे।"

असुर बोले, "हमे यह शर्त स्वीकार है। चलो, भोजन परोसो।"

प्रत्येक असुर की दोनो बाँहो के साथ लकडियाँ बाँध दी गई। इस तरह कि वे कोहनी से बाँह मोडकर हाथ को मुँह तक ले-जा सकें, और तब सबके सामने थाल रख दिये गए। थालो मे पूरियाँ, हलवा, खीर, मालपूडे, लड्डू, अमृतियाँ, जलेबी तथा भाँति-भाँति की सब्जियाँ रख दी गई।

यज्ञ करनेवालो ने कहा, "अब भोजन प्रारभ कीजिये!" असुर खाने का प्रयत्न करने लगे तो वडी विचित्र दशा हुई। पूरी उठाकर मुँह मे डालने लगे तो मुँह तक पहुँचे ही नहीं। मुँह खोलकर उसे मुँह की ओर फेंकें तो कभी एक कन्धे के पीछे जाकर गिरे, कभी दूसरे के। हलवा उठाकर मुँह की ओर फेंकें तो कभी माथे पर जा लगे और कभी आँखो मे। यही हाल दूसरी चीजो का हुआ। भाँति-भाँति के पकवान सामने थे किन्तु मुँह मे कुछ जाता नही था। कितनी ही देर तक यही तमाशा होता रहा। जब काफी समय हो गया तो यज्ञ करने-वालो ने कहा, "असुर महानुभावो! अब उठिये। अब देवता भोजन करेंगे।" और बेचारे असुर भूखे ही उठ खडे हुए। किसी के पेट मे एक ग्रास-भर भोजन भी नही गया।

तब देवताओ की बारी आई। यज्ञ करनेवालो ने उनकी बाँहो के साथ भी लकडियाँ बाँध दी। तभी एक देवता ने कहा, 'देखिये बन्धुओ! आधे लोग एक पक्ति मे बैठें और आधे उनके सामने की पक्ति मे उनकी ओर मुँह करके बैठे।"

उन्होने वैसा ही किया। भोजन परोसा गया। प्रत्येक देवता ने पूरी, हलवा, मिठाई या सब्जी उठाई तो अपने मुँह मे डालने का प्रयत्न न करके अपने सामने बैठे हुए देवता के मुँह मे डाल दी। इधरवालो ने ऐसा किया और उधरवालो ने भी वैसा ही किया। दोनो पक्तियो मे बैठे देवताओ ने जी-भरकर भोजन किया।

यह है देवताओ की विधि! वे अपना नही, दूसरो का पेट भरते है। दूसरो का पेट भरने से इनका पेट भी भर जाता है। ऐसा करते हुए

भी देवता अभिमान नहीं करते। और जो केवल अपना पेट पालते हैं, केवल अपने लिए सोचते हैं, अपने लिए कमाते हैं और अभिमान करते हैं कि वे बहुत बड़ा काम कर रहे हैं, उनके सम्बन्ध में भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है कि वे 'असुर' हैं। जिनमें अहंकार है, जिनका क्रोध उनके वस में नहीं, जिनकी वाणी में कटुता है और जो अज्ञानी हैं, ऐसे लोगों को श्रीकृष्णजी ने 'असुर' कहा है।

यह जीभ है न! इसमें लकड़ी नहीं, लोहा नहीं, इतनी कोमल और इतनी लचकदार है यह। इससे कोई कड़वी बात कहें क्यों?

वानी ऐसी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरों को शीतल करे आप भी शीतल होय।।

मीठा बोलिये! खूब कमाकर अपनी कमाई को दूसरों की भलाई के लिए दान देकर खर्च कीजिये। किन्तु हमारे यहाँ तो दान को एक बुराई बना दिया गया है। पूज्य पं० मदनमोहन मालवीय ने एक बार यह जानने के लिए कमेटी नियुक्त की कि भारत में हिन्दू लोग कुल मिलाकर वर्ष-भर में कितना दान करते हैं? यह कमेटी पूरे भारत के बारे में तो पता लगा नहीं पाई, जितने भाग में इसने छान-बीन की, उससे पता लगा कि इस भाग के हिन्दू लगभग दो अरब रुपया प्रतिवर्ष दान देते हैं। यह कमेटी यदि पूरे भारत का और भारत से बाहर रहनेवाले हिन्दुओं का पता लेती तो सम्भवतः यह राशि तीन अरब रुपए तक पहुँच जाती। और यह चालीस वर्ष पहले की बात है जब गेहूँ चार रुपए मन बिकता था। लोगों के पास पैसा कम था, चीजें सस्ती थीं। अब गेहूँ संभवतः चालीस रुपए मन है। इसलिए तीन को दस से गुणा करना चाहिये अर्थात् आज इस देश में और दूसरे देशों में कुल मिलाकर लगभग तीस अरब रुपया हिन्दू प्रतिवर्ष दान करते हैं। सोचकर देखिये, यदि यह दान उचित रूप में खर्च हो सके तो कितना-कुछ इस देश में हो सकता है? देश में कितनी निर्माण-योजनाएँ चल सकती हैं? कितने विद्यालय, अस्पताल और कारखाने चल सकते हैं?

मैं थाईलैंड मे गया तो देखा कि दान का उचित रूप मे उपयोग करने के लिए क्या-कुछ किया जा सकता है ? थाईलैंड मे धनी हो या निर्धन, प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान अवश्य देता है। घरो मे देवियाँ प्रात ही उठ खडी होती है। घर को झाड-बुहारकर खाना बनाती हैं। तब घर की स्त्री या पुरुष, जो खाली हो, खाने का थोडा-सा भाग लेकर और कुछ पैसे लेकर उस सडक पर पहुँच जाता है, जहाँ से दान लेनेवाले भिक्षु निकलते है। ऐसी कई सडके है, जहाँ दान देनेवाले वहाँ जाकर घुटने टेककर बैठ जाते हैं और तब एक निश्चित समय पर भिक्षुको की टोलियाँ इन सडको से निकलती है। लोग इन्हे प्रणाम भी करते हैं, सिर झुकाकर इन्हे भोजन, वस्त्र, पैसे आदि भी देते है। भिक्षु दान मे मिली प्रत्येक वस्तु को लेकर अपने-अपने मन्दिर या विहार मे जाते हैं। स्थानीय भाषा मे इन्हे 'दत्त' कहा जाता है। वहाँ वडे भिक्षु के सामने सब चीजे रख दी जाती हैं। चावल एक ओर, सब्जियाँ आदि दूसरी ओर, फल तीसरे स्थान पर, कपडे अलग और नकदी अलग। तब इन सब वस्तुओ को उन लोगो की आवश्यकता के अनुसार बाँटा जाता है। सबसे पहले इस 'दत्त' या विहार के क्षेत्र मे रहनेवाले अनाथ विद्यार्थियो का भाग निकाला जाता है। तत्पश्चात् बूढे और अपग लोगो का, उसके बाद वेकार लोगो का, तब भिक्षु महिलाओ का जो भिक्षा माँगने नही जाती। शेष जो बचता है, उसे भिक्षा लानेवाले भिक्षुओ मे बाँट दिया जाता है। अर्थात् एक दान से कितनी समस्याएँ सुलझ जाती है।

हमारे देश मे दो वडे गुण थे—दया और दान। दोनो इस देश के भूषण थे। अब दूषण बन गए हैं।

स्वामी अच्युतानन्दजी गुजरात-काठियावाड की रियासत लिंबडी के एक सेठ की कहानी सुनाया करते थे कि किस तरह उन्होने दान का सर्वनाश किया। यह सेठजी लाखो के मालिक थे। उत्तराधिकारी कोई था नही। मरने लगे तो चिन्ता हुई कि सम्पत्ति का क्या

करें ? पलँग पर पड़े थे, उठ सकते नहीं थे। तभी एक खटमल ने इन्हें काटा। सेठजी को ध्यान आया कि अभी तो मैं जीवित हूँ। ये खटमल मेरा लहू पीकर मौज करते हैं। मेरे बाद बेचारे इन खटमलों का क्या होगा ? किसका लहू पियेंगे ? और सेठजी ने उसी समय वकील को बुलाकर अपनी सारी सम्पत्ति की वसीयत लिखवा दी। एक ट्रस्ट बना दिया जो इस मकान की रक्षा करे और उनकी मृत्यु के बाद प्रतिदिन किसी आदमी के सोने का प्रबन्ध करे जिसका लहू सेठजी के खटमल सुखपूर्वक पी सकें। इसलिए कि यह सोनेवाला कहीं इन खटमलों को मार न डाले, उन्होंने वसीयत में यह भी लिखवाया कि जो आदमी इनके पलँग पर सोए, उसके हाथ और पैर सोते समय बाँध दिये जाएँ; और इसलिए कि उस आदमी को पारिश्रमिक भी मिले, उन्होंने लिखवाया कि मेरे ट्रस्टी इस आदमी को जो भी चाहें दे सकते हैं।

अब सेठजी तो मर गए। ट्रस्ट स्थापित हो गया। ढिंढोरा पीटा गया कि सेठजी के पलँग पर सोने के लिए आदमी चाहिये। दो बार भोज और दस रुपए प्रतिदिन का पारिश्रमिक देने की घोषणा की। शर्त केवल यह बताई कि सोनेवाले के हाथ-पैर बाँध दिये जाएँगे जिससे वह खटमलों को मार न सके।

यह थी सेठजी की दया!

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्रान॥

किन्तु तुलसीदासजी क्या उस 'दया' की बात कह रहे थे, जिससे इन सेठजी ने काम लिया ? ढिंढोरा पीटा गया। कई बेकार लोगों ने सोचा, इससे अच्छी नौकरी क्या हो सकती है! मकान और भोजन के साथ महीने का तीन सौ रुपए वेतन। कई प्रार्थनापत्र ट्रस्टियों के पास आए। प्रार्थियों का साक्षात्कार हुआ। कुछ लोग चुने गए। सबसे पहला अवसर एक नवयुवक को मिला। वह रात को खाना खाकर सेठ के पलँग पर लेटा। मन में उसने सोचा, 'यह विचित्र

नौकरी है !' किन्तु लेटे हुए अभी थोडो ही देर हुई थी कि खटमल काटने लगे। हाथ-पैर बँधे थे। कुछ देर वह उलटा-सीधा होकर खुजलाता रहा, किन्तु ज्यो-ज्यो समय बीतने लगा, खटमल भी बढने लगे। अन्त मे तग आकर वह बँधे हाथ-पैरो से ही पलँग से नीचे कूद पडा, मकान से बाहर यह चिल्लाता हुआ भागा कि 'मुझे नही चाहिये यह नौकरी। धिक्कार है ऐसी नौकरी पर !'

दूसरे दिन ट्रस्टियो को पता लगा कि जिस युवक को सेठ के पलँग पर सुलाया गया था वह तो आधी रात को ही भाग गया। दूसरी रात उन्होने दूसरे आदमी को भेजा। वह एक घण्टे बाद ही चिल्लाता हुआ भाग गया। तीसरी रात तीसरे आदमी को भेजा, वह भी भाग गया। इसके बाद कोई जाने को तैयार नही हुआ। सब ट्रस्टी चिन्ता मे पडे कि अब क्या करे ? बहुत विचार के बाद वे इस परिणाम पर पहुँचे कि दस रुपए थोडे हैं। एक रात के पचास रुपये कर दो। परिणामस्वरूप नई घोषणा हुई कि सेठजी के खटमलो से भरे पलँग पर सोने के लिए आदमी चाहिए। सोनेवाले को भोजन के अतिरिक्त पचास रुपए दिये जाएँगे किन्तु शर्त यह है कि उसे पलँग के साथ बाँध दिया जाएगा ताकि वह उठकर भाग न सके। इस बार पहले की भाँति अधिक प्रार्थना-पत्र नही आए। बेकार लोग भी खटमलो से अपना खून चुसवाने के लिए तैयार नही थे। किन्तु एक मण्डी मे एक कसरती पहलवान था। भारी भरकम गठा हुआ सुडौल शरीर, अग-अग हृष्ट-पुष्ट था। उसने सोचा कि ये खटमल आखिर कितना खून पी लेगे ? पचास रुपए थोडे नही होते। मैं बीस-तीस रुपए का भी प्रतिदिन दूध-घी-मक्खन खाऊँगा तो इससे कई गुणा खून बन जाएगा। यह सोचकर हो गया वह तैयार। पहुँचा ट्रस्टवालो के पास। ट्रस्टवाले तो पहले ही प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होने उसके साथ तत्काल लिखा-पढी कर ली। उसे भरपेट खाना खिलाया। फिर सोने से पहले दूध भी पिलाया। रात हुई तो ट्रस्ट के कर्मचारियो ने उसे सेठ के पलँग पर लिटाकर, उसके साथ बाँध दिया कि वह उठकर भाग न जाए। पहलवान लेटा

तो आँखें मुँदने लगीं। पेट भरकर खाया था, इसलिए नींद आने लगी। किन्तु तभी निकली वह बच्चा सक्का की फौज—सेठजी के पाले हुए खटमल। एक-दो ने ही काटा तो पहलवान की नींद उचट गई। एक-दो का काटना उसने सहन किया। किन्तु जब सब ओर से आक्रमण होने लगा तो वह घबराया। खुजलाने की जरूरत हुई तो न हाथ हिलें न पैर, पीठ हिले न कमर। वह तो पलँग के साथ बँधा हुआ था। तब वह चिल्लाया, "अरे कोई मुझे खोलो, मुझे नहीं चाहिए ये पचास रुपए।"

उसकी चिल्लाहट सुनकर ट्रस्ट के नौकर दौड़े हुए आये; बोले, "क्या बात है?"

पहलवान ने कहा, "मुझे खोल दो भाई! मुझे पचास रुपयों की जरूरत नहीं, इस नौकरी की जरूरत नहीं।"

ट्रस्ट के नौकर बोले, "किन्तु तुमने एग्रीमेंट किया हुआ है। अस्टाम्प पर हस्ताक्षर किये हुए हैं।" इसपर पहलवान ने चीखते हुए कहा, जहन्नुम में गया एग्रीमेंट। तुम कानून-कायदे की बातें कर रहे हो और यहाँ मुझे ये खटमल खाए जा रहे हैं। तुम्हें खटमलों पर दया आती है, मुझपर नहीं आती। ईश्वर के लिए मुझे खोल दो! मैं मरा जाता हूँ।"

नौकर बोले, "अब मरो या जियो, हम तुम्हें खोल नहीं सकते।"

पहलवान था बलवान्। उसने जब यह देखा कि रोने-चिल्लाने से काम नहीं चलेगा तो एक बार जोर लगाकर इस तरह हिला कि पलँग उलट गया। पहलवान नीचे, पलँग ऊपर। अब भी वह पलँग के साथ बँधा हुआ था। एक बार उसने फिर जोर लगाया तो खड़ा हो गया। पलँग अब भी उसकी पीठ के साथ बँधा हुआ था। उसे घसीटता हुआ वह कमरे से बाहर निकला। फिर मकान से बाहर हो गया और चिल्लाता हुआ चलता गया। नौकरों को हिम्मत न हुई कि उसे रोक सकें और वह पलँग को पीठ पर लादे घिसटता-घिसटता वहाँ पहुँचा जहाँ लिबड़ी के राजा साहेब का महल था। वह महल के पास पहुँच-

कर जोर-जोर से चिल्लाया, "दुहाई है महाराज की, दुहाई है ! मुझको बचाइये, मैं मरा जाता हूँ।" राजा साहिब सोए पड़े थे। यह सुनकर जागे, खिडकी के नीचे देखा तो यह विचित्र आदमी नजर आया जो पीठ पलंग पर लादे था। उन्होंने पूछा, "क्या बात है?" पहलवान ने कहा, "कुछ लोगों ने मुझे बाँध दिया है। पलंग के खटमल मुझे खाए जाते हैं और मैं मर रहा हूँ, मुझे खोलते नही।"

राजा साहिब ने पहरेदारों को आज्ञा दी कि इस आदमी को खोल दो। कल प्रात: इसका मुकद्दमा हमारे सामने प्रस्तुत करो।

प्रात काल मुकद्दमा प्रस्तुत हुआ तो पहलवान ने सारी कहानी सुनाई। उन ट्रस्टियों के नाम सुनाए जिनकी आज्ञा से वह पलंग से बाँधा गया था।

ट्रस्टियो के नाम समन जारी हो गए। वे आए। महाराज साहिब ने पूछा, "ये क्या जुल्म कर रहे हो?" ट्रस्टियों ने कहा, "हमारा कोई कसूर नही। आपके राज्य के अमुक सेठ मरे तो उनका कोई उत्तराधिकारी नही था। अपनी सारी सम्पत्ति उन्होने 'खटमल रक्षाकोष' के लिए दान कर दी। वसीयत लिख दी कि उनके पलंग पर हर रात किसी आदमी को सुलाया जाए।"

यह है दान का दुरुपयोग! दया का दोषपूर्ण व्यवहार! गोरक्षा कोष नही, अनाथरक्षा-कोष नही, देशरक्षा-कोष नही, ये सेठजी खटमलरक्षा-कोष जारी कर गए। निश्चित रूप से यह दया नही है, दान भी नही, दोनों का बेडा गर्क करना है।

देवता बनने के लिए दयालु होना आवश्यक है। दान देना भी आवश्यक है। किन्तु ये दोनो काम सोच-समझकर, बुद्धिमत्तापूर्वक करने उचित हैं।

और 'देवता' शब्द जिस मूल धातु 'दिवु' से बनता है, उसका अर्थ खेल भी है। देवता बनना है तो जीवन को खेल समझकर खेलो। इसमें अच्छा समय भी आएगा और बुरा भी; सुख भी आएगा, दुःख भी; जीत भी होगी और हार भी। अच्छा समय हो, सुख हो, जीत

हो तो अभिमान न करो। अभिमान में ईश्वर को भूल न जाओ। बुरा समय आए, दुःख हो, हार हो तो आँसुओं के सागर में डूब न जाओ। इस बात को मत भूलो कि ईश्वर अब भी विद्यमान है। वह देखता है तुम्हें और वह शिव है, शंकर है। रहीम व करीम है। वह ममताभरी माँ है, तुम्हारा शत्रु नहीं।

देवता का एक गुण और भी है। वह झगड़ा नहीं करता। सुख और दुःख, मान तथा अपमान सबसे वह अप्रभावित रहता है, इनकी उपेक्षा करता है। जो लोग छोटी-छोटी बातों को लेकर झगड़े करते हैं, हर समय कोई-न-कोई झगड़ा मचाए रखते हैं, यदि वे कहें कि वे देवता बन रहे हैं तो निश्चित रूप से यह गलत है। पति कहता है, "मेरी पत्नी क्या है, अच्छी-भली डाइन है।" पत्नी कहती है, "मेरा पति क्या है, यह तो निरा राक्षस है।" अब झगड़ना है तो इसी प्रकार झगड़ते रहो। किन्तु इस प्रकार मन की शान्ति कभी मिलेगी नहीं, सुख कभी मिलेगा नहीं। देवतापन तो बहुत दूर की बात है।

ऐसे ही 'देवता' शब्द के कई दूसरे अर्थ भी हैं। उनका वर्णन अब नहीं करता।

किन्तु देवता कौन है? देवता के गुण क्या हैं? यह सब-कुछ मैंने कितने ही तरीकों से बताया तो क्यों? इसलिए कि वेद कहता है:

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवाअयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥

उस परम-पुरुष परमेश्वर को जो सदा से है, जिसका न आदि है और न अन्त, जो पूजा करने के योग्य है, जिसकी पूजा से यह सारा जगत् भरपूर है, उसे केवल देवता, साधक और ऋषि लोग प्राप्त करते हैं।

और उस परम-पुरुष परमेश्वर को पा लेना, उसे जान लेना ही मानव-जीवन का वास्तविक उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही यह मानव-शरीर मिला है।

कहने को रसना रची,
सुनने को ये कान।
धरने को यह चित्त है,
सुन लो सन्त सुजान !

यह जीभ कडवी बातें कहने, दूसरों की निन्दा करने, झूठ बोलने, गालियाँ देने और भाँति-भाँति के स्वाद चखने के लिए नही है भाई ! यह तो इसलिए है कि उस प्रभु-प्रीतम का नाम लो। ये कान केवल सिनेमा के गीत, दूसरों के झगडे, दूसरों की बुराइयाँ सुनने के लिए नही, इसलिए हैं कि उस प्रभु का नाम सुनो। और यह चित्त, यह मन इसलिए है कि इसमे प्रभु के ध्यान को धारण करो। उसको बसा लो अपने मन में ; फिर मिलेगा सुख, फिर मिलेगी शान्ति, फिर मिलेगा वह लक्ष्य जहाँ पहुँचने के लिए मानव-शरीर का यह रथ मिला है।

और यह रथ सदा तो चलता नही। आज, कल या कुछ समय बाद अन्त मे इसे रुकना है।

आज कि कल कि पाँच दिन, जंगल होगा वास।
ऊपर-ऊपर हल फिरें, ढोर चरेंगे घास।।

इससे काम लो मेरे भाई ! इसके अभिमान मे भूल मत जाओ कि इसका अन्त अवश्यम्भावी है। इसकी हालत उस आदमी-जैसी है, जिसके बाल मौत ने पकड रखे हैं। जहाँ भी वह चाहे, वही इसे रोक देगी। उससे एक इंच, एक मिलीमीटर भी यह आगे नही चलेगा।

कबीर क्या गरब्यो फिरे, काल गहे कर केस।
न जाने कहाँ मारसी, कै घर कै परदेस।।

और फिर,

पानी का यह बुलबुला, अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात।।

इसलिए भाई मेरे, कल की बात न करो। आज से ही प्रारम्भ करो। यह यत्न कि वह देवतापन मिल जाए, जिसको प्राप्त किये

विना प्रभु-प्रीतम के दर्शन नहीं होते और यह दर्शन मानव-शरीर में ही होते हैं जो वार-वार नहीं मिलता। इस शरीर से घृणा मत करो। न इसकी निन्दा करो। यह तो देवताओं की नगरी है। किन्तु जब-तक यह है तबतक इससे लाभ उठा लो। फिर जाने यह कब मिले—कितने लाख, कितने करोड़ बरसों के बाद।

दुर्लभ मानुष जन्म है,
देह न वारम्बार।
तरुवर ज्यों पत्ता झरे,
बहुरि न लागे डार॥

पत्ता लगा है वृक्ष की डाल पर, कौन जाने कब गिर जाएगा यह। और एक बार गिरा तो फिर लगेगा नहीं। किन्तु देखो जी! ये पत्ते तो गिरते ही रहते हैं। गिरने के लिए बने हैं। अब साढ़े नौ बज गए। इसलिए शेष कल।

तीसरा दिन

पूज्य श्री आनन्द स्वामीजी महाराज ने तीसरे दिन अपनी कथा को प्रारम्भ करते हुए कहा, "मेरी प्यारी माताओ और सज्जनो! पिछले कल मैंने 'पुरुष सूक्त' के उस मंत्र का वर्णन किया, जिसमें बताया गया है कि भगवान् का दर्शन किसको मिलता है। यह मन्त्र कहता है कि उस परम-पुरुष परमेश्वर को जो सदा से है, जो सबका पूज्य है, जिसका पूजा से यह जगत् भरपूर है, वे लोग पाते हैं जो देवता हैं, साध्य हैं और ऋषि हैं।

मैंने आपको बताया कि 'देवता' का अर्थ क्या है? अब सुनिये साध्य और साधना करनेवाले का अर्थ क्या है? साधना का सीधा-सा अर्थ है योग-साधना। साधना करनेवाले का अर्थ है योगी। योगी

लोग उस परमात्मा को पाते है। किन्तु कैसे पाते हैं? यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि, ये आठ योग के अग हैं।

१. ये पाँच 'यम' है—

(१) अहिंसा—किसी को दुःख न देना।
(२) सत्य—सदा सचाई के मार्ग को अपनाना।
(३) अस्तेय—जो अपना नही, जो अपने परिश्रम से कमाया नही, उसे दूसरो से नही लेना।
(४) ब्रह्मचर्य—अपनी इन्द्रियो को वश में रखना। संसार की अपेक्षा भगवान् की ओर जाने का यत्न करना।
(५) अपरिग्रह—वैराग्य की भावना से त्याग करना। आवश्यकता से अधिक जमा न करना।

२. ये पाँच 'नियम' है—

(१) शौच—बाहर और भीतर से अपने-आप को स्वच्छ रखना।
(२) सन्तोप—हर समय, हर दशा में जो कुछ भी है, उसे स्वीकार करके सन्तोप करना।
(३) तप—हर दशा को सहन करना। अपने व्रत को तोड़ना नही।
(४) स्वाध्याय—अच्छे ग्रन्थों को पढना, अच्छे लोगों का सत्संग करना, अपने-आपको पढना—आत्मनिरीक्षण करना।
(५) ईश्वर-प्रणिधान—अपने सभी कर्मों को ईश्वरार्पण कर देना।

३. पर्याप्त समय तक सुखपूर्वक एक ही आसन पर बैठे रहना, लेटे रहना, या खडे रहना 'आसन' है।

४. श्वास की गति को अपने वश में रखते हुए अपनी इच्छा के अनुसार उसे चलाना 'प्राणायाम' है।

५. आंख, नाक, कान, जिह्वा आदि इन्द्रियों को पशुत्व के मार्ग से हटाकर अध्यात्म के मार्ग पर चलाना 'प्रत्याहार' है।

६. यह निश्चय करना कि मैं अपने चित्त को अमुक वस्तु, स्थिति,

या सत्ता के ध्यान में लगाऊँगा, 'ध्यान' है।

७. इस वस्तु, स्थिति या सत्ता के अतिरिक्त शेष सभी प्रकार के अनुभवों का समाप्त हो जाना 'समाधि' है।

यह है 'अष्टांग योग'—आठ अंगोंवाला योग-मार्ग, जिसकी साधना करनेवाले को, जिसके अनुसार चलनेवाले को, साध्य, साधक या साधना करनेवाला कहते हैं। आठ अंगोंवाले इस योग-मार्ग की पूरी बात तो इस समय कहूँगा नहीं किन्तु ये आठ भट्ठियाँ हैं जिनमें आध्यात्मिकता की सुरा तैयार होती है। यह वह सुरा है जिसे गुरु नानकदेवजी ने 'नाम खुमारी' कहा है। एक बार इसका नशा किसी को हो जाए तो फिर उसे किसी दूसरे नशे की आवश्यकता नहीं रहती; और नशा एक बार चढ़ जाए तो फिर कभी उतरता नहीं। यह नशा पिया मीरांबाई ने और गली-गली गाती फिरी :

छाँड दई कुल की कान का करिहैं कोई।
सन्तन ढिग बैठि-बैठि लोक-लाज खोई॥
चुनरी के किये टूक ओढ़ लीन्हि लोई।
मोती मूँगे उतार बन-माला पोई॥
अँसुवन जल सींच-सींच प्रेम-बेलि बोई।
अब तो बेलि फैल गई होनी हो सो होई॥
दूध की मथनिया बड़े प्रेम से बिलोई।
माखन जब काढ़ि लियो छाछ पिये कोई॥
आई मैं भक्ति-काज जगत देख मोही।
दासी मीरा गिरधर प्रभु तारो अब मोही॥

यह नशा कबीर को चढ़ा और वह पुकारते फिरे :

अँखड़ियाँ तो झाईं पड़ी पंथ-पंथ निहार।
जीभड़ियाँ तो छाला पड़ा नाम पुकार-पुकार॥

यह नशा पिया रविदास ने और जगह-जगह उनकी वाणी गूँज उठी।

इस नशे के समुद्र उछाले इन पुण्यनाम पूज्य गुरुओं ने जिनकी

वाणी ने लाखो लोगो को एक नया जीवन दिया। इस खुमार के सम्बन्ध में श्री गुरुनानक देवजी महाराज ने कहा था

भग भसूडी सुरापान, उतर जाए परभात।
नाम खुमारी नानका चढी रहे दिन रात ॥

इस नाम-खुमारी का दूसरो को दान करने के लिए वह जगलो, पहाडो, नगरो, कस्बो और हजारो मीलो तक इस तरह घूमते फिरे जैसे कोई मस्ती मे आकर अपनी दौलत लुटाये देता हो, ज्यादा-से-ज्यादा लोगो मे इसे बाँटने के लिए बेचैन हो उठा हो।

यह नशा पी लिया शिवरात्रि की रात मे मूलशकर ने और सच्चे शिव के दर्शन करने के लिए मूलशकर ने घर के सुख-आराम को, माता-पिता के प्यार को लात मारकर नर्वदा नदी पर रहनेवाले योगियो के पास पहुँचकर इस खुमारी को और ज्यादा बढा लिया। तब शुद्ध चेतन नाम रखवाकर ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया और फिर सन्यासी वेष धारण कर स्वामी दयानन्द सरस्वती नाम लेकर, शेरो, चीतो और हाथियो से भरपूर जगलो मे, हिमाच्छादित चोटियो पर योगियो की खोज मे जा पहुँचे और नशा और भी गहरा हो गया।

कितनी बार इस देश के अन्दर कितने ही योगियो, सन्तो, महात्माओ ने लोगो को यह अमृतभरा नशा पिलाने का प्रयत्न किया किन्तु यह अमृत मिलता है देवता, साधक या ऋषि बनने से। यह काम है कठिन। इसलिए लोग इसके बजाय दूसरे नशो की ओर भागते है—उन नशो की ओर जो चढते हैं और उतर जाते हैं। मनुष्य को अधिक दुर्बल, जर्जर, अपमानित और दु खी करते चले जाते है। यह नशा है भौतिकवाद का, धन का, रूप का, यौवन का, शक्ति और सत्ता का, सन्तान और परिवार का।

और समय आता है जब मनुष्य इन सबको छोडकर चला जाता है। मधुशाला रह जाती है, मादकता रह जाती है, मधुपायी चला जाता है। ये चीजें कभी किसी के साथ नही जाती और कई बार तो उसके जाने से पहले ही छोडकर चली जाती हैं। और कई बार विद्यमान

रहने पर भी व्यर्थ हो जाती हैं। इनसे नशा नहीं होता, सुख नहीं मिलता। दुःख जाग उठता है। मैंने उन धनियों को देखा है जो सब-कुछ होते हुए भी दुःखी हैं। उन सम्पत्तिवालों को देखा है जिन्हें नींद नहीं आती। उन सन्तानवालों को देखा है जिनके लिए पुत्र-कलत्र ही विपत्ति का कारण बन गए हैं। उन शक्ति और सत्तावालों को देखा है जिनसे अधिक दुःखी कोई नहीं। मैं धन-सम्पत्ति, सन्तान-परिवार, शक्ति-सत्ता और शरीर किसी की निन्दा नहीं करता। पहले भी कई बार कहा, आज भी कहता हूँ कि मनुष्य का यह शरीर देवताओं की नगरी है। इसमें प्रेम-प्यारे प्रभु के दर्शन होते हैं। इसकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये। आवश्यक धन-सम्पत्ति, आवश्यक भौतिक सुख-सुविधाएँ जुटाने के लिए प्रयत्न भी करना चाहिये। ऐसा करने में कोई बुराई नहीं है। किन्तु यह भी तो देखना चाहिये भाई, कि यह सब करना किसलिए है? किसके लिए? मानव-शरीर देवताओं की नगरी है अवश्य किन्तु उस देवता की चिन्ता भी तो करनी चाहिये जो इसके अन्दर रहता है, जिसके कारण इस शरीर का मूल्य और महत्त्व है और जिसके बिना यह एक कौड़ी का नहीं।

आज विज्ञान का युग है। विज्ञान अच्छी चीज है। इससे मनुष्य को सुख-सुविधा और सुरक्षा मिलती है, किन्तु यह विज्ञान जो केवल शरीर की बात सोचता है, आत्मा की नहीं, एक अधूरा ज्ञान है। क्योंकि आत्मा के बिना शरीर केवल मिट्टी का ढेर है। जो भी ज्ञान मनुष्य के जीवन के केवल एक पक्ष की बात सोचता और कहता है, दूसरे की नहीं, वह आधा और अधूरा ज्ञान है। पूरा ज्ञान है वेद भगवान् में जहाँ प्रकृति और आत्मा दोनों के लिए सोचा गया है, दोनों की उन्नति का मार्ग बताया गया है।

मैंने पहले निवेदन किया था कि जिस विज्ञान पर हम अभिमान करते हैं उसका आधार वेद में विद्यमान है। उसमें विमान-यात्रा, अन्तरिक्ष-यात्रा, इलैक्ट्रोन, प्रोटोन, आदि का उल्लेख विद्यमान है। उस विज्ञान का उल्लेख भी विद्यमान है जिसे आज विज्ञानवेत्ता

अभी जानते नही। किन्तु इसके साथ ही उस आत्मा और परमात्मा का उल्लेख भी है, जिसके बिना कोई भी ज्ञान पूर्ण नही हो सकता और जिसके बिना मनुष्य का कल्याण नही हो सकता। वेद भगवान् की महानता यह है कि स्पष्ट-सीधे शब्दों में वह कहता है :

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूयः इव ते तमो य उ संभूत्यां रताः॥

वे लोग गहरे-घने अँधेरे में डूबते है जो केवल प्रकृति की, शरीर की, धन-सम्पत्ति, सन्तान-परिवार, सत्ता और शक्ति की चिन्ता करते हैं। और वैसे ही वे लोग भी गहरे-घने अँधेरे मे डूबते हैं, जो केवल आध्यात्मिकता के पीछे, आत्मा और परमात्मा के पीछे दौड़ते है।

इसके साथ उसने वल देकर कहा है :

> कुछ लोग कहते हैं प्रकृति की उपासना से, और कुछ कहते हैं आत्मा की उपासना से कल्याण होता है। यह बात हमने उनसे सुनी जो अपने-अपने मार्ग के सम्बन्ध मे हठ किये बैठे है ; अपने ही मार्ग पर चलना चाहते हैं। दूसरे मार्ग पर नही। किन्तु ये दोनों ही भूले हुए है। कल्याण उसका होता है जो प्रकृति और आत्मा दोनों को जानता है। प्रकृति के ज्ञान से इस जीवन को सुखी बनाकर मृत्यु को पार करता है और आत्मा के ज्ञान को प्राप्त करके मृत्यु के बाद अमृत को प्राप्त करता है। प्रकृति का ज्ञान वास्तव में अज्ञान है। आत्मा का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। किन्तु गहरे-घने अँधेरे मे डूबते हैं वे, जो केवल प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करते हैं। वैसे ही वे भी गहरे-घने अँधेरे में डूबते हैं जो केवल आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करते है। कुछ लोग कहते हैं, केवल प्रकृति का ज्ञान आवश्यक है, केवल आत्मा का ज्ञान आवश्यक है। दूसरे कहते हैं, केवल आत्मा का ज्ञान आवश्यक है। दोनों अपने-अपने विश्वास पर हठ करके अड़ गए है किन्तु कल्याण होता है उनका जो प्रकृति के ज्ञान से मृत्यु को पार करते हैं और आत्मा के ज्ञान से मृत्यु के बाद अमृत को प्राप्त करते

हैं। यही मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं।

(यजुर्वेद चालीसवाँ अध्याय, मंत्र ६ से १४)

यह है वेद का सन्देश। धन-सम्पत्ति, सन्तान-परिवार, शक्ति-सत्ता और शरीर की वेद निन्दा नहीं करता, किन्तु इसके साथ ही कहता है, यह सब प्रकृति है। केवल इसके पीछे भागने से कुछ होगा नहीं। और केवल आत्मा के पीछे भागने और शरीर की उपेक्षा करने से भी कुछ नहीं होगा, क्योंकि जिस आत्मा को तुम पाना चाहते हो वह इस शरीर के भीतर ही रहता है ; जिस ईश्वर को देखना चाहते हो, उसका दर्शन इस शरीर के अन्दर होता है। इसलिए मैं कहता हूँ कि आज का विज्ञान अधूरा है। उसने केवल प्रकृति के लिए सोचा है, आत्मा के लिए नहीं। केवल शरीर के लिए सोचा, उसके भीतर रहनेवाली उस शक्ति के लिए नहीं, जिसके कारण यह शरीर विद्यमान है, जिसके कारण उसका मूल्य है। पूरी बात कही तो वेद ने, जिसने प्रकृति और आत्मा—भौतिकवाद और अध्यात्मवाद—दोनों को आवश्यक बताया। दोनों का ज्ञान मनुष्य के सामने रखा। आज के विज्ञान ने ज्ञान के केवल एक पक्ष को सामने रखा, दूसरे की उपेक्षा की। यह नहीं समझा कि किसी भी एक पक्ष की उपेक्षा करने का परिणाम केवल गहरे-घने अन्धकार में डूबना, दुःख में नष्ट होना हो सकता है। दूसरा कोई परिणाम संभव नहीं। पूर्ण ज्ञान यह है कि शरीर को जान लिया तो उसको भी जानो जो इस शरीर के अन्दर बैठा है और जिसके कारण इस शरीर का मूल्य और महत्त्व है। यदि उसे नहीं जानोगे, यदि केवल शरीर की रक्षा में लगे रहोगे तो दुःख के सिवा दूसरा कोई परिणाम होगा नहीं। इसलिये वेद भगवान् ने कहा है :

"इसको जानकर ही मनुष्य मृत्यु को पार करता है।"

और फिर यह भी बताया कि इसके जानने का ढंग क्या है? स्पष्ट और सरल शब्दों में उसने कहा, 'उसको दैवी सम्पदावाले जानते हैं, साधक जानते हैं, ऋषि जानते हैं।"

पिछले दिन मैंने आपको बताया था कि 'देवता कौन है?' इसके सम्बन्ध में कुछ और बातें भी सुनिये! गीता के सोलहवें अध्याय में

भगवान् कृष्ण ने कहा है, "जो सदा प्रसन्न रहे वह देवता है।" किन्तु सदा प्रसन्न कौन रहता है ? वह नहीं जो दूसरों के दुर्गुणों को देखता है किन्तु वह जो दूसरो के गुणों को और अपने अवगुणों को देखता है। देवता और राक्षस मे कोई अन्तर है तो यह है। देवता दूसरे के गुण और अपने अवगुण को देखता है। राक्षस अपने गुण और दूसरे के अवगुण को देखता है। प्रत्येक व्यक्ति मे उसे दोष दिखाई देते है। उसे यह बात भी बुरी मालूम होती है कि आनन्द स्वामी साधु होने के बाद भी डेढ गज कपडे की पगडी बाँधता है। मैं मुरादाबाद मे कथा कर रहा था। कथा समाप्त हो चुकी तो एक सज्जन मेरे लिए मिट्टी के कसोरे में दूध लाए। मैं प्रात. और साय दूध जरूर पीता हूँ। मैंने वह दूध ले लिया और पी लिया। पास खडे एक साहब बोले, "साधु लोग क्या दूध भी पीते हैं ?" मैंने कहा, "नही जी, वे तो विष पीकर जीवित रहते हैं।" उस आदमी को मेरा दूध पीना भी बुरा लगा तो इसलिये कि वह प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर अवगुण देखने का अभ्यस्त था। उसके गुण देखने का अभ्यस्त नही था।

किन्तु इस तरह काम नही चलेगा भाई ! देवता बनना है तो दूसरे के गुण को देखो। तुम्हारी आत्मा गुणो का भण्डार बन जाएगी। गुण की अपेक्षा दूसरो के अवगुण देखोगे तो तुम्हारी आत्मा अवगुणों का भण्डार बन जाएगी। तुम देवता नही, राक्षस बन जाओगे। देवता वह है जो दूसरे के गुण और अपने अवगुण देखता है। वह नही जो दूसरे के अवगुण और अपने गुण देखता है।

मैं करोल बाग के आर्यसमाज मे कथा कर रहा था तो एक सज्जन मेरे पास आए , बोले, "आज हमारे यहाँ दूध पीजिये।" "मैं शाम को दूध पीता हूँ।" मैंने कहा, "आप शाम को दूध यहाँ ले आइये।" वह बोले, "नही-नही, हमारे घर पर चलिये। आपके चरणों से हमारा घर पवित्र हो जाएगा।" मैं उनके घर गया। अभी बैठा ही था कि बिजली ठप्प हो गई। अँधेरा हो गया तो वह सज्जन बोले, "देखिये स्वामी जी ! ये स्वराज्य की बरकतें है। जब से अपना राज हुआ है, बिजली बार-बार चली जाती है। बडी अव्यवस्था है।

कोई भी काम ठीक नहीं। अब बताइये, इस अँधेरे में क्या करें?"

मैंने कहा, "स्वराज्य को बाद में कोस लीजिएगा, अभी कोई मोमबत्ती जलाकर अपना काम चलाइये। मुझे प्रातः तीन बजे उठना होता है; इसलिए जल्दी सोना होता है, मुझे जल्दी जाना भी है।"

वह इस बात को समझे। अपनी पत्नी को आवाज देकर बोले, "अरी ओ कुक्कू की माँ! जरा मोमबत्ती तो निकालो। स्वामीजी को जल्दी जाना है।"

कुक्कू की माँ बोली, "जरा दियासलाई ढूँढ लूँ तो मोमबत्ती भी जलाती हूँ।"

किन्तु दियासलाई को यहाँ खोजा, वहाँ खोजा, वह मिली नहीं। कितना ही समय बीत गया, फिर भी उसका नाम-निशान नहीं मिला। तभी एक सज्जन ने जो वहाँ बैठे थे और जो सिगरेट पीते थे, कहा, "मुझसे यह दियासलाई लेकर मोमबत्ती ढूँढिये।" अब दियासलाई की तीली के बाद तीली जलाकर मोमबत्ती की खोज होने लगी। पर कई तीलियाँ जलाने के बाद भी मोमबत्ती नहीं मिली। पत्नी कह रही थी, "कुक्कू ने कहीं रख दी है।" पति कह रहे थे, 'तुम मोमबत्ती भी सँभाल के नहीं रख सकतीं!" और सिगरेट पीनेवाले सज्जन कह रहे थे, "सब-की-सब तीलियाँ समाप्त न कर दीजिये, नहीं तो मैं सिगरेट कैसे पिऊँगा।" अन्ततोगत्वा मोमबत्ती मिली, प्रकाश हुआ। मैं दूध पी रहा था तो यह सज्जन फिर बोले, "देखिये स्वामीजी, शासन की यह अव्यवस्था! अभी तक बिजली नहीं आई।" मैंने धीमे से कहा, "शासन की अव्यवस्था को रोते हो! भाई, स्वराज की निन्दा करते हो, किन्तु तुम यह क्यों नहीं देख सकते कि तुम्हारे अपने घर की व्यवस्था दोषपूर्ण है। तुम दियासलाई खोजते हो तो वह नहीं मिलती, मोमबत्ती ढूँढते हो तो उसका पता नहीं लगता; यह कैसी अव्यवस्था है? अपनी आँख का शहतीर तुम्हें दिखाई नहीं देता, शासन की आँख के तिनके का रोना रोए जाते हो।" मैं कह नहीं सकता कि मेरी बात वह समझ पाए कि नहीं किन्तु 'देवता' और 'असुर' की मनोवृत्ति में

अन्तर यह है कि देवता अपनें अवगुण को देखता है और उसे दूर करने का प्रयत्न करता है। असुर दूसरे के अवगुण देखता है, उसका रोना रोता रहता है। देवता का गुण मनुष्य मे जागता है तो उसकी सभी चिन्ताएँ समाप्त हो जाती हैं। राक्षस का गुण आदमी में जागता है तो वह एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी चिन्ता मे डूब जाता है। उसके मन, बुद्धि और चित्त मे प्रसन्नता कभी आती नही। और यह प्रसन्नता न आए तो मनुष्य लाख यत्न कर ले, उसके मन को शान्ति कभी नही मिलती। चिन्ताओ को दूर कर देना ही आत्मा और परमात्मा को प्राप्त करने का सबसे बडा साधन है। इसलिए योगी याज्ञवल्क्य से जब पूछा गया कि योग की परिभाषा क्या है तो उन्होंने कहा

सर्वचिन्ता परित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते।

सब चिन्ताओ को त्यागकर निश्चिन्त हो जा, तभी योग-मार्ग पर चलेगा। इन चिन्ताओं को छोडकर ही मनुष्य योग के मार्ग पर आगे बढता है। दूसरा कोई मार्ग नही है।

एक दिन मैंने यह बात कही तो एक बेटी मेरे पास आई, बोली, "स्वामीजी, आप हैं सन्यासी। आपने घर-बार छोड दिया। आप कह सकते हैं कि चिन्ता छोड दो, किन्तु हम गृहस्थी लोग चिन्ता को कैसे छोड सकते हैं?"

मैंने हँसते हुए कहा, बेटी! मैं सदा से ही तो सन्यासी नही था। एक ऐसा समय भी था जब तुम्हारी ही तरह गृहस्थी था। उस समय भी मैं चिन्ता नही करता था। बहुत समय पहले की बात है, मेरे बेटे रणवीर को पंजाब के अग्रेज गवर्नर-जनरल को कत्ल करने के षड्यन्त्र के अपराध में मृत्युदण्ड की आज्ञा सुनाई गई। रणवीर न केवल मेरा बेटा था अपितु मुझे बहुत प्यारा भी था। किन्तु इसके बावजूद मेरे मन में दु ख नही था। कोई चिन्ता नही थी। एक दिन मैं लाहौर के अनारकली बाजार मे मुस्कराता हुआ जा रहा था तो महाराजा कश्मीर के गुरु मुझे मिले। वह दो घोडो की गाडी में सवार

थे। मैं मुस्कराता हुआ जा रहा था, उन्हें देखा नहीं। उन्होंने मुझे देखा तो गाड़ी रोक दी और मुझसे बोले, "रणवीर अपने घर में सही-सलामत आ गया है।" मैंने आश्चर्य से कहा, "मैं अभी-अभी घर से आया हूँ। तब तक तो वह आया नहीं था। उसे मृत्युदण्ड की आज्ञा हुई है। मैंने हाईकोर्ट में अपील की है। अपील का फैसला अभी हुआ नहीं।" वे बोले, "यदि अभी तक नहीं आया तो थोड़ी देर के बाद घर पहुँच जाएगा।" मैंने पूछा, "यह बात आप कैसे कहते हैं?" वह बोले, "जिस आदमी के बेटे को मृत्युदण्ड मिल चुका हो, उसका पिता बाजार में मुस्कराता जा रहा हो तो उसके बेटे को कोई फाँसी पर लटका नहीं सकता। और वास्तव में मेरा विश्वास यह था कि यदि मेरा और रणवीर का भला इस बात में है कि उसे मृत्युदण्ड मिले तो दुनिया की कोई शक्ति उसे बचा नहीं सकती। और यदि मेरा और रणवीर का भला इस बात में है कि वह मेरे पास आ जाए तो दुनिया की कोई शक्ति उसे मृत्युदण्ड नहीं दे सकती। इस विश्वास के कारण मैं मुस्करा रहा था। किन्तु यह मुस्कराहट और निश्चिन्तता पैदा होती है, ईश्वर में विश्वास के कारण। ईश्वर में विश्वास नहीं तो यह निश्चिन्तता और मुस्कराहट कभी पैदा नहीं होती। मेरा विश्वास यह था कि यदि भगवान् की इच्छा यह है कि रणवीर को मृत्युदण्ड हो जाए तो दुनिया की कोई शक्ति उसे बचा नहीं सकती, किन्तु यदि उसकी इच्छा यह है कि उसे मृत्युदण्ड न मिले तो दुनिया की कोई शक्ति उसे मुझसे अलग नहीं कर सकती। इस विश्वास के कारण मैं प्रसन्न था, निश्चिन्त था।

और यही बात मैं आपसे कहता हूँ, यदि आपके मन में ईश्वर का विश्वास है और यह सुनिश्चित है कि सब-कुछ करनेवाला वह है और जो कुछ वह करता है, वह मनुष्य के भले के लिए करता है तो चिन्ता और दुःख की कोई बात है नहीं। आप देवता हैं, देवता का गुण आपमें आ गया है; किन्तु देवता का गुण केवल यही नहीं है कि वह ईश्वर-विश्वास के कारण निश्चिन्त और प्रसन्न रहता है अपितु

यह भी है कि वह अपने लिए नही, दूसरो के लिए सोचता है, देश के लिए सोचता है, राष्ट्र के लिए, समाज के लिए, समूची मानवता के लिए सोचता है , केवल अपने लिए नही।

वृक्षा फले न आप को, नदी न पीये नीर।
परमारथ के कारने, सन्तन धरा शरीर ॥

वृक्ष अपने लिए फलो को उत्पन्न नही करते। नदी अपने लिए जल को दूर-दूर तक नही ले जाती। सन्तपुरुष शरीर को धारण करते है तो दूसरो के लाभ के लिए, अपने लाभ के लिए नही।

और इस बात के ऐसे उदाहरण विद्यमान हैं जिनको देखने के बाद कोई भी आदमी समझ सकता है कि आदमी के कल्याण का मार्ग क्या है ?

सोमनाथ के मन्दिर की बात तो आपने सुनी है। महमूद गजनवी ने उस मन्दिर पर आक्रमण किया तो गुजरात के तत्कालीन शासक महाराज भीम ने उसका सामना किया। पहले उनपर आक्रमण हुआ तो महाराज भीम ने महमूद गजनवी के छक्के छुडा दिये। इतनी हानि पहुँचाई कि महमूद चीख उठा। दूसरे दिन उसने अधिक शक्ति और अधिक तैयारी के साथ आक्रमण किया। महाराज भीम ने उस आक्रमण को भी निष्फल बना दिया। इस तरह वह लडे कि देखनेवाले आश्चर्यचकित रह गए। अपने घोडे पर सवार होकर बिजली की तरह वह युद्धस्थल के प्रत्येक मार्ग मे पहुँचते। हर जगह उन्होने शत्रु के लिए मौत खडी कर दी। किन्तु तभी एक ऐसी घटना हुई जिसने युद्ध का पासा पलट दिया। सोमनाथ के मन्दिर मे देवदासियाँ नाचती थीं। उस युग म ऐसा ही रिवाज था। कितने ही मन्दिरो में देवदासियो का नाच होता था। भक्त लोग अपनी बच्चियो को मन्दिरो मे चढाते थे। मन्दिरो मे उनका पालन-पोषण होता था। उन्हें मूर्ति के सामने नाचने की कला सिखाई जाती थी। उनकी सारी आयु मूर्ति के सामने नाचने में बीत जाती थी। सोमनाथ के मन्दिर मे भी यह बात होती थी। कई हजार देवदासियाँ वहाँ प्रात व साय भगवान् महादेव के

सामने नाचती थीं। इनमें एक देवदासी थी चोला। वह इतनी सुन्दर थी कि उसे देखकर सौन्दर्य भी नतशिर होता था। इतनी आकर्षक कि उसे देखकर यौवन मदमत्त हो जाता था। उस चोला का प्रेम था, सोमनाथ मन्दिर के एक पंडित के नवयुवक बेटे के साथ जिसका नाम था—शिवदर्शी। चोला अपने भगवान् के लिए नाचती थी। शिवदर्शी उसे अपनी पत्नी बनाने के स्वप्न देखता था। और महमूद गजनवी ने सोमनाथ मन्दिर पर पहले और दूसरे दिन आक्रमण किया तो यह चोला किले की दीवार से महाराज भीम को लड़ते हुए देखती रही। उसके साहस और वीरता के लिए उसके मन में अथाह श्रद्धा जाग उठी। दूसरे दिन गजनवी की सेना को एक बार फिर खदेड़ने के बाद महाराज भीम किले में वापस आए तो उषा के प्रकाश की भाँति सुन्दर चोला उनके सामने खड़ी हो गई; बोली, "महाराज! आपने कमाल कर दिया। मैं आपको प्रेम करती हूँ। मेरा यह शरीर, जिसकी कितने ही लोगों ने प्रशंसा की है, आज से आपकी सेवा में अर्पित है। आज से मैं आपकी हुई। यह शरीर आपका हुआ।"

महाराज भीम ने उस अनुपम सुन्दरी को देखा तो कहा, "चोला! तू आज मुझे प्यार करने लगी है। मैं तब से तुम्हें प्यार करता हूँ जब पहली बार तुझे भगवान् सोमनाथ की मूर्ति के सामने नाचते हुए देखा था। तभी से तू मेरे दिल की रानी, मेरे मन की स्वामिनी है।"

किन्तु उन दोनों का और इस देश का दुर्भाग्य कि जब वे दोनों इस तरह बात कर रहे थे, वह 'शिवदर्शी' यह बात सुन रहा था जो चोला को प्रेम करता था। इस बातचीत को सुनकर उसके मन में आग जाग उठी। वह चोला को प्रेम करता था और चोला उसके हाथ से निकली जाती थी। एक असीम नीच और तुच्छ स्वार्थ उसके मन में जाग उठा। आधी रात के समय उसका भेजा हुआ एक आदमी महमूद गजनवी के पास पहुँचा तो दो दिन की हार के बाद वापस जाने की तैयारी कर रहा था; जिसने अपनी सेना को आज्ञा दे दी थी कि डेरे उखाड़ो, कल प्रातः हम वापस चले जाएँगे, उस महमूद गजनवी

के पास शिवदर्शी का सन्देशवाहक पहुँचा ; बोला, "वापस जाने की आवश्यकता नही अमीर, मुझे शिवदर्शी ने भेजा है। मैं आपको बता सकता हूँ कि सोमनाथ का गुप्त-मार्ग कौन-सा है और उस मार्ग से सोमनाथ मे प्रविष्ट होने का उपाय क्या है ? आप मेरे साथ अपने आदमी भेजिये। एक बार वे गुप्त मार्ग को देख ले तो आपकी सेना बिना किसी सघर्ष के सोमनाथ के किले मे पहुँच सकती है। उसके बाद आप आक्रमण करे तो आपकी जीत निश्चित है क्योकि किले के भीतर और बाहर दोनो जगह आपकी सेना विद्यमान होगी। महाराज भीम का कचूमर निकल जाएगा।" महमूद गजनवी ने इस बात को समझा। शिवदर्शी के सन्देशवाहक के साथ कुछ आदमी भेज दिये। गुप्त मार्ग का पता लग गया तो चुपचाप अपनी सेना का बडा भाग सोमनाथ के किले मे भेज दिया। तीसरे दिन युद्ध हुआ तो महाराज भीम ने एक बार फिर तलवार के जौहर दिखाने शुरू किये। किन्तु ये जौहर व्यर्थ हो गए, क्योकि जब वे किले के बाहर लड रहे थे, तो उस समय महमूद गजनवी की सेना किले के भीतर थी। महाराज भीम दोनो ओर से शत्रु के बीच घिर गए और लडते-लडते अमर गति पाई। महमूद गजनवी सोमनाथ के किले मे प्रविष्ट हुआ तो सामने शिवदर्शी खडा था। बाहे फैलाकर उसने कहा, "मैने ही तुम्हे सोमनाथ के गुप्त मार्ग से परिचित कराया था। मेरे कारण ही तुम्हे यह विजय प्राप्त हुई है। अब मेरी बात सुनो, सोमनाथ के मन्दिर मे प्रविष्ट होने का यत्न मत करो। मैं तुम्हारा मित्र और विश्वासपात्र हूँ।"

महमूद गजनवी ने उस आदमी की ओर देखा। थोडी देर के लिए सोचा, फिर तलवार निकाली और शिवदर्शी के सिर को धड से अलग कर दिया। चीखते हुए उसने कहा, "तुम जो अपने देश और जाति से द्रोह कर सकते हो, मैं तुमपर विश्वास करने को तैयार नही।"

इस प्रकार यह शिवदर्शी मरा।

इन प्रकार हिन्दुस्तान के लिए नाश और लूटपाट का एक युग

जाग उठा। इसलिए कि अभागे व्यक्ति ने देश के लिए नहीं, अपने लिए सोचा। उसके मन में नीच स्वार्थ-भावना जाग उठी। उसने समझा कि जिस चोला को वह प्यार करता है, वह किसी दूसरे की नहीं होनी चाहिये। इस नीच स्वार्थ के कारण उसने अपने देश के साथ द्रोह किया। उसका परिणाम न केवल इस अभागे देश के लिए है वल्कि स्वयं उस अभागे आदमी के लिए जो कुछ हुआ, वह हमारे सामने है। स्पष्ट है कि यह देवतापन का नहीं राक्षसपन का मार्ग था। देवता बनने से केवल भगवान् के ही दर्शन नहीं होते, देश की रक्षा भी होती है। मनुष्य देवता न बने तो न भगवान् मिलते हैं, न देश रहता है। दीन और दुनिया दोनों का सत्यानाश होता है।

देवता कौन है और कौन नहीं? इसके सम्बन्ध में कल भी मैंने निवेदन किया था। आज यह बात केवल इसलिए कही कि यह बात और स्पष्ट हो सके। आप जान सकें कि 'देवता' कौन है? इसके बाद वेद भगवान् साध्य या साधक का वर्णन करता है।

साध्य या साधक कौन है? यह मैंने आज प्रारंभ में थोड़ा-सा बताया कि 'अष्टांगयोग' के मार्ग पर चलनेवाला ही 'साधक' है। इस मार्ग पर चलना ही साधना है। और वे आठ भट्ठियाँ हैं जिनमें नाम-खुमारी का नशा तैयार होता है। महर्षि दयानन्द ने भी 'ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका' में लिखा है कि 'अष्टांगयोग' का मार्ग ही ठीक है। अष्टांग योग क्या है? यह मैंने थोड़ा-सा बताया। अभी और बताऊँगा। किन्तु पहले यह समझिये कि इस साधना के लिए, इन आठ भट्ठियों में से निकलने के लिए आदमी तैयार कैसे होता है। तैयारी के लिए सबसे पहली वस्तु है ज्ञान। यह ज्ञान दो प्रकार का है—एक भौतिक, दूसरा आध्यात्मिक। एक का सम्बन्ध प्रकृति से है, दूसरे का आत्मा और परमात्मा से। दोनों आवश्यक हैं। दोनों का ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्य सच्चे अर्थों में ज्ञानी होता है। यह ज्ञान है नहीं, यह ही पता नहीं कि कहाँ जाना है और मार्ग से जाना है तो भले ही दौड़ते रहो, साँस फुला लो,

पाँव थका लो, जाओगे कहाँ ? घना है जगल, रात अँधेरी, आकाश मे घनघोर घटाएँ, हाथ को हाथ नही सूझना। पगडडी का पता नही, हाथ में दीपक नही, और भाग रहे हो तो पहुँचोगे कहाँ ? कोल्हू के वैल की तरह भाग-दौड करके भी वही-के-वही रहोगे। कही जाना है तो पहले यह जानने का यत्न करो कि वह जगह कहाँ है ? वहाँ जाने का मार्ग कौन-सा है ? आप बैठे हैं दिल्ली में, जाना चाहते हैं गगोत्तरी तो पहले किसी से पूछिये कि यह गगोत्तरी है किधर ? अब यह गगोत्तरी है मेरठ की ओर, मेरठ से मुजफ्फर नगर, रुड़की, हरद्वार, हृषिकेश पहुँचिये। वहाँ से उत्तरकाशी जाइये। उत्तरकाशी से गगोत्तरी की ओर। यह सब-कुछ जाने बिना यदि आप दिल्ली से आगरा की ओर चल दें तो गगोत्तरी पहुँचेगे कैसे ? पहले ज्ञान प्राप्त करो, फिर आगे चलो, तभी लक्ष्य मिलेगा; अन्यथा मिलेगा नही।

और यह ज्ञान मिलता है गुरु से। इसलिए उपनिषद् ने कहा है:

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिश्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।
उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत् ॥

उसको अर्थात् परमेश्वर को जानने के लिए वह जिज्ञासु अर्थात् जानने की इच्छावाला, साधना के मार्ग पर चलने की इच्छा रखनेवाला, गुरु के पास जाए। किन्तु किस प्रकार जाए ? क्या अकडकर धन और शक्ति का अभिमान लेकर ? नही, हाथ जोडकर, सिर झुकाकर, नम्र बनकर। किन्तु कैसे गुरु के पास जाए ? जो वेद का विद्वान् है और ब्रह्म को जानता है। ऐसे गुरु के पाम के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करे। किन्तु इसके साथ ही उपनिषद् के ऋषि ने उसी स्थान पर कहा है:

उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

उठो, जागो, उनको प्राप्त करो जो जानते हैं। किन्तु यह कुछ त्रुटिपूर्ण मालूम होता है न ? आदमी जागता पहले है, उठता बाद में, वह उपनिषद् का ऋषि पहले कहता है, 'उठो', फिर कहता है, 'जागो'। यह बात क्या हुई ? किन्तु ऋषि दोषयुक्त वाणी बोलते नहीं। इस जागो का अर्थ नींद से जागना नही, किन्तु बुद्धि से काम

लेना है। ऋषि चेतावनी देता है कि गुरु बनाने के लिए चल तो पड़े पड़े हो किन्तु पहले यह भी देखो कि जिसको गुरु बनाना चाहते हो वह गुरु बनाने के योग्य भी है? क्या वह उस ज्ञान को जानता है जिसे तुम प्राप्त करना चाहते हो?

आजकल गुरु बनाने का रिवाज बहुत है। लोग भेड़चाल से चल पड़ते हैं। यह ठीक है कि ठीक मार्ग सच्चा गुरु ही बताता और दिखलाता है। श्री गुरु अंगददेव जी महाराज ने बिल्कुल सच कहा था:

जे सौ चन्दा ऊगा वही, सूरज चढ़हो हजार।
रहते चानन हो नदियाँ, गुरु बिन घोर अँधार।।

सौ चन्द्रमा चमकते हों, हजारों सूरज जगमगाते हों, कितना भी प्रकाश क्यों न हो, गुरु के बिना मन का अँधेरा दूर नहीं होता। सच्चा गुरु मिल जाए तो दुःखों का नाश हो जाता है।

ऐसे सद्गुरु के सम्बन्ध में दादू महाराज ने भी कहा है:

दादू इस संसार में, ये दो रत्न अमोल।
इक साईं इक सन्तजन, इनका तोल न मोल।।

ऐसे गुरु के सम्बन्ध में ही महात्मा कबीरजी ने कहा:

जात न पूछो साध की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।।

किन्तु ऐसा गुरु है कहाँ? साधु बन जाना तो बहुत सुगम है भाई! किन्तु सच्चे अर्थों में साधु के धर्म का पालन करना, सच्चे अर्थों में गुरु बनने के योग्य होना तो बहुत कठिन है:

साध कहावन कठिन है, लम्बा पेड़ खजूर।
चढ़े तो चाखे प्रेम रस, गिरे तो चकनाचूर।।

तब इस गुरु की और साधु की पहचान क्या है?

गुरु मिला तब जानिये, मिटे मोह सन्ताप।
हर्ष शोक व्यापे नहीं, फिर गुरु अपने आप।।

यह है गुरु की पहचान ! वह मिले तो आपका मोह मिट जाए, चिन्ताएँ मिट जाएँ। यदि ऐसा नही होता, यदि गुरु के मिलने के बाद भी रोना धोना बाकी रह जाता है तो फिर गुरु का लाभ क्या है ? किन्तु आजकल जगह-जगह गुरुओ के नामपट्ट टँगे हैं। उन्होंने काम बिगाड रखा है। विचित्र-विचित्र कहानियाँ हम सुनते हैं। कही कोई गुरुजी चेली को लेकर भाग जाते हैं। कही पति-पत्नी मे लडाई करा देते है। कही भाई को भाई का शत्रु बना देते हैं। और कई जगह तो चेले के गहने, रुपया आदि लेकर रफूचक्कर हो जाते हैं। और फिर ऐसे भी गुरु हैं, जो स्त्रियो के साथ नाचने, अपने-आपको भगवान् की कृपा का अवतार कहने, भडकीले वस्त्र पहनने और मालपूडे खाने को ही 'अध्यात्मवाद' कहते फिरते है। ऐसे गुरुओ से लाभ होने का प्रश्न पैदा ही नही होता। हानि अवश्य होती है। ऐसे गुरु स्वय भी पाप के गढे मे गिरते हैं, चेले को भी ले डूबते हैं। कुछ गुरु होते है जो पाप-अपराध के मार्ग पर तो चलते नही, किन्तु जिनके पल्ले किसी को देने के लिए कुछ होता नही।

ऐसे एक गुरु के पास एक चेले ने जाकर पूछा, "गुरुजी, कबूतर पकडने का तरीका क्या है ?" गुरुजी पहले कुछ देर चुप रहे, फिर बोले, "देखो, कबूतर पकडने का तरीका तुम्हे बताता हूँ। कबूतर जब तेज धूप मे बैठा हो तो मोम लेकर पीछे से उसके पास जाओ। मोम को उसके सिर पर रख दो। धूप की गर्मी से मोम पिघलेगी, उसकी आँखो मे पडेगी, आँखें बन्द हो जाएँगी। तब चुपके से जाकर उसे पकड लो।"

चेले ने पूछा, "किन्तु गुरुजी, जब मोम को उसके सिर पर रखने के लिए जाएँ, तभी उसीको क्यो न पकड ले ?"

गुरुजी बोले, "अरे ! इस तरह पकडोगे तो फिर खूबी क्या हुई ? उस्तादी क्या हुई ? मैं तुम्हें उस्तादी का उपाय बता रहा हूँ।"

यह उस्तादी मार गई हमको।

ऐसे लोग गुरु नही हैं। गुरु बनने के योग्य भी नही हैं। अच्छे गुरु की पहचान क्या है ? इसके सम्बन्ध मे एक रहस्य की बात आप-

को बताता हूँ। जिसे गुरु बनाना चाहते हो, उसके पास जाओ। बैठ जाओ उसके पास और फिर देखो कि वहाँ बैठे रहने को तुम्हारा जी चाहता है या नहीं ? हर आदमी के अन्दर एक आकर्षण-शक्ति रहती है—एक तरह की बिजली जो दूसरों को अपनी ओर खींचती है। योगी लोग इस चुम्बक शक्ति को, तप और योगसाधन से अधिक शक्तिशाली बना लेते हैं। उनके समीप जाते ही यह चुम्बक शक्ति प्रभाव डालने लगती है। आदमी स्वयमेव योगी की ओर खिंचने लगता है। उसका जी चाहता है कि उसके पास ही बैठा रहे। योगी के पास बैठने से मन में एक विचित्र प्रकार की निश्चिन्तता, अनोखी निर्मलता उत्पन्न होती है।

यह है सच्चे गुरु की पहचान ! यदि उसके पास बैठकर मन शान्त होता है, उसके पास बैठे रहने को जी चाहता है तो बैठो उसके पास, नहीं तो उठकर चले आओ। वह आदमी आपका गुरु बनने के योग्य नहीं है !

किन्तु यदि यह पहली बात उस महापुरुष में है तो शान्ति से बैठो। यह देखो कि इस सज्जन का अपनी वाणी पर नियंत्रण है या नहीं। यह वाणी बड़ी शक्ति वाली है। मैंने जब पहलेपहल अपने गुरुजी से हठयोग सीखना प्रारंभ किया तो उन्होंने चेतावनी देते हुए कहा, "सबसे पहले इस जीभ को, वाणी को वश में करो। यह वश में हो जाए तो शेष इन्द्रियों को वश में करना सरल हो जाता है। यह जीभ एक ही समय में दो काम करती है : बोलती भी है और स्वाद भी लेती है। तो आप भी देखिये कि जिस सज्जन को आप गुरु बनाना चाहते हैं, उसकी जीभ उसके वश में है या नहीं ? यदि वह मटरोंवाले समोसे, मसालेदार चने, पालक के साग के पकौड़े, चाट-चटनी, दही-बड़े, अचार-मुरब्बे का ही शौकीन है तो छोड़ दो उसे। वह आपके काम का आदमी नहीं है। यदि स्वाद पर उसने वश पा लिया है, 'रसना' (यह जीभ का ही एक नाम है) को रसों-स्वादों की ओर लपकने से रोक लिया है, तो फिर यह देखो कि वह अनाप-शनाप तो

नही बोलता ? गाली-गलौज से काम तो नही लेता ? नपे-तुले शब्दो का प्रयोग करता है या नही ? यदि बोलने के विषय मे भी उसका अपनी वाणी पर वश है, फिर वह ठीक आदमी है। उसके पास ठहर जाओ, दो दिन, चार दिन—और यह देखो कि उसे क्रोध तो नही आता ? यह क्रोध बडी बुरी बला है। हर पाप की जड यह क्रोध ही है। इसीलिए भगवान् कृष्ण ने कहा, "क्रोध और काम, ये दोनो एक ही प्रकार के पाप हैं। जिसने क्रोध पर काबू नही पाया, वह कामवासना पर काबू कभी नही पा सकता। अन्तर केवल यह है कि क्रोध दिखाई दे जाता है, कामवासना दिखाई नहीं देती। इसलिए देखो कि उस सज्जन को किसी समय क्रोध तो नही आता ? यदि आता है तो वापस चले आओ भाई ! वहाँ तुम्हारा काम बनेगा नही। यदि उसे क्रोध नही आता तो उसके पाँव पकड लो, बोलो, "गुरुदेव, मैं आपकी शरण मे आया हूँ। मुझे मेरा लक्ष्य बताइये। मुझे मेरे जीवन-लक्ष्य का मार्ग बताइये।" यह आदमी आपका गुरु बनने के योग्य है।

अभी-अभी दादूदयालजी का एक दोहा सुनाया न आपको। वही महात्मा दादू जिन्होंने कहा था

दादू दुनिया बावरी, मढियाँ पूजन ऊत।
जो आप नपूते मर गए, उनसे माँगें पूत॥

बहुत ऊँचे, बडे सज्जन महात्मा थे वह। 'अष्टाग योग' की आठों भट्ठियों मे तपकर प्रभु-प्रेम के रस मे डूबे हुए, एक दिन वह एक शहर के पासवाले जगल मे जा पहुँचे, वही ठहर गए। शहरवालो को पता लगा तो वे जगल में जाकर उनको गुरु बनाने लगे। शहर पुलिस के कोतवाल ने यह बात सुनी तो उसने सोचा, 'मैं भी दादू के पास जाऊँ। उन्हें अपना गुरु बनाऊँ।' वह चढा घोडे पर और चल पडा जगल की ओर। उधर जगल मे दादू महाराज झाडियाँ काट-काटकर मार्ग को साफ कर रहे थे कि आने-जानेवालो को कष्ट न हो, किसी के पाँवो म काँटे न चुभें। कोतवाल ने उन्हे देखा—एक दुबला-पतला-सा आदमी—केवल एक छोटी-सी धोती पहने झाडियाँ काट रहा है। वह

घोड़े पर बैठे-ही-बैठे बोला, "अबे ओ कंगले ! इस जंगल में दादूजी कहाँ रहते हैं ?"

दादूजी झाड़ियाँ काटते रहे, बोले नहीं। कोतवाल ने अबकी बार एक गाली देकर पूछा, "अरे बहरा है तू ? बोल, दादूजी कहाँ रहते हैं ?"

दादूजी फिर भी नहीं बोले। और वह कोतवाल क्रोध में भरा घोड़े से नीचे उतर पड़ा। उसने कई चाबुक और थप्पड़ बरसा दिये दादूजी के ऊपर ; किन्तु दादूजी फिर भी कुछ नहीं बोले। कोतवाल ने समझा, यह कोई पागल है। इससे कुछ पता नहीं लगेगा। वह फिर से घोड़े पर चढ़ा और आगे गया। उसे एक आदमी मिला ; उसने पूछा, "इस जंगल में कहीं दादूजी रहते हैं। क्या तुम जानते हो कि वे किस जगह रहते हैं ?"

उस आदमी ने कहा, "अभी-अभी मैं उन्हें देखकर आया हूँ। एक धोती पहने वे मार्ग को झाड़ियाँ काट रहे थे। किन्तु आप भी तो उसी ओर से आ रहे हैं, आपने उन्हें देखा नहीं ?"

कोतवाल का चेहरा उतर गया। वह आश्चर्य से बोला, "वह... वह जो झाड़ियाँ काट रहा है, वही आदमी दादू है ?"

उसने कहा. "वही तो हैं महात्मा दादूजी।"

कोतवाल ने घोड़े का मुँह पीछे को मोड़ा। दादूजी के पास पहुँचा, घोड़े से उतरा और उनके पैरों पर गिर पड़ा ; बोला, "मुझसे बहुत बड़ा अपराध हुआ महाराज ! मैं तो आपको गुरु बनाने आया था महाराज और..."

दादूजी हँसते हुए बोले, "तुमसे कोई अपराध नहीं हुआ भगत ! लोग बाजार में एक घड़ा खरीदने के लिए जाते हैं, तो उसे ठोक-बजाकर देख लेते हैं कि कहीं टूटा तो नहीं है। तुम मुझे गुरु बनाना चाहते थे। तुमने भी ठोक-बजाकर देख लिया कि गुरु कच्चा तो नहीं।"

मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि गुरु बनाना चाहते हो उसे ठोक-पीटकर देखो ; किन्तु यह कि उसे अच्छी तरह जान लो, देख-परख

लो कि वह गुरु बनाने के योग्य है भी या नही।

ऐसे गुरु से ही वह ज्ञान मिलेगा जिसके बिना साधना की तैयारी नहीं होती, और जिसके मिल जाने से मन, बुद्धि और चित्त—तीनों निर्मल हो जाते हैं। देखो, बुद्धि निर्मल हो, शुद्ध हो तो क्या-कुछ होता है। खरगोश और शेर की पुरानी कहानी तो आपने सुनी है। शेर रहता था जंगल में। वह प्रतिदिन कई जानवरों को मार डालता। कुछ खाता, कुछ फेक देता। जंगल के जानवरों ने सोचा, इस तरह तो हम नष्ट हो जाएँगे। यह शेर केवल भूख मिटाने के लिए नहीं मारता। ऐसे ही बहुतों को मारे देता है। एक दिन उन्होंने जगल के जानवरो का सम्मेलन बुलाया। उसमे निश्चय हुआ कि शेर से हम लड तो सकते नही। उसे समझाना चाहिये और उसके भोजन की उचित व्यवस्था कर देनी चाहिये ताकि वह केवल खाने के लिए मारे। व्यर्थ ही नादिरशाह की तरह कत्ले-आम न करता रहे। हो गया निर्णय। जानवरों का एक शिष्टमण्डल शेर से जाकर मिला। बोला, 'शेरजी! आप जगल के राजा है। हम आपकी प्रजा हैं। हम जानते हैं कि आपको भोजन चाहिये और आप घास-पात, फल आदि खाते नही। किन्तु जिस प्रकार आप जगल के जानवरों को व्यर्थ मारते जा रहे हैं, उससे तो एक दिन जगल ही खाली हो जायेगा।"

शेर ने गर्जकर कहा, "फिर मैं क्या करूँ? भूखा मर जाऊँ?"

शिष्टमण्डल का एक सदस्य बोला, "नही महाराज! हम ऐसी व्यवस्था करना चाहते हैं कि आपको प्रतिदिन भोजन के लिए एक जानवर भी मिल जाये और जंगल मे व्यर्थ किसी जानवर की जान भी न जाये। हमारा सुझाव यह है कि आप दौड-झपटकर शिकार करना बन्द कर दीजिये। हम स्वय ही प्रतिदिन आपके पास एक जानवर को भेज देगे। उसे अपना भोजन बनाइये। ऐसा करने से आपको भी सुविधा होगी और जगल के जानवरों की जानें भी बेकार जाने से बच जाएँगी।"

शेर ने कहा, "मुझे यह सुझाव स्वीकार है। किन्तु यदि किसी

दिन कोई भी जानवर नहीं पहुँचा तो मैं दूसरे दिन जंगल के सभी जानवरों के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। उनका खून पी जाऊँगा। हड्डियाँ तोड़ दूँगा।"

शिष्टमण्डल का एक और सदस्य बोला, "नहीं महाराज ! ऐसी भूल कभी नहीं होगी।"

लो जी ! हो गया एग्रीमेंट। प्रतिदिन एक जानवर शेर के पास पहुँचने लगा। जानेवाला यह सोचकर जाता था कि उसे मरना है। बाकी जानवरों को बचाने का दूसरा कोई उपाय था नहीं। और तभी एक दिन एक खरगोश की बारी आ गई। वह था बुद्धिमान्। चल तो पड़ा किन्तु बार-बार रुककर सोचता कि अपने प्राण कैसे बचाऊँ? चलता-चलता वह एक गहरे कुएँ के पास पहुँचा। कुएँ के अन्दर देखा तो नीचे के पानी में अपनी परछाईं दिखाई दी तो वह मुस्करा उठा। उसे बचने का उपाय सूझ गया। कितनी ही देर तक वह कुएँ की मुँडेर पर बैठा रहा। अन्त में धीरे-धीरे चला। शेर की माँद पास आई तो दौड़ने लगा।

शेर ने उसे दूर से देखा तो क्रोध से आग-बबूला हो उठा। दाँत पीसकर उसने कहा, "जंगलवालों ने एक तो इतनी देर से यह भोजन भेजा, सुबह से मैं बैठा हूँ और भेजा है अब दोपहर के समय, और वह भी एक छोटा-सा खरगोश !"

खरगोश ने उसकी बात सुनी। वह नम्रता से बोला, "मैं छोटा हूँ महाराज, तो यह मेरा दोष नहीं। मैं सुबह से इस ओर चला आ रहा था कि एक शेर ने मेरा रास्ता रोक लिया। मुझे पकड़ लिया। मैंने उसे कहा, 'मैं अपने महाराज के पास जा रहा हूँ। उन्हें भूख लगी होगी। वह मुझे खाएँगे।' वह बोला, 'कौन है तेरा महराज ?' मैंने उत्तर दिया, 'वह शेर है और तुमसे अधिक बलवान् है।' तो वह गर्जकर बोला, 'दूसरा शेर ? दूसरा शेर कैसे हो सकता है मैं हूँ इस जंगल का राजा। आज से प्रत्येक जानवर को मेरे पास आना चाहिये।' मैंने उसे कहा, 'हमारे शेर महाराज इस बात को कभी सहन

नही करेंगे।' वह बोला, 'जहन्नुम मे गया तुम्हारा शेर महाराज ! उसे कहो इस जगल से चला जाए। आज से यहाँ मेरा राज है।' बहुत अनुनय विनय करके मैंने उसे मनाया कि वह आपसे मिलकर निर्णय कर ले। वह बोला, 'मैं नही जाता उसके पास। उसे यहाँ बुलाओ। मैं उसके टुकडे-टुकडे कर दूंगा। पहले उसे खाऊँगा, फिर तुम्हे खाऊँगा।' इस तरह बडी कठिनाई से मैं पहुँचा हूँ यहाँ, इसलिए देर हो गई। अब बताइये, इसमें मेरा क्या दोष है ? आप मेरे देर से आने की शिकायत करते हैं। मुझे डर है कि यदि वह दूसरा शेर जगल मे रहा तो कल से कोई भी जानवर आपके पास पहुँच नही पाएगा। आपके भोजन को वह रास्ते मे ही हडप जाएगा। रास्ते मे जो कुआँ है, वहाँ बैठा है वह।"

शेर ने यह सब सुना तो तडप उठा, गर्जकर बोला, "कहाँ है वह शेर ? चल, मैं अभी उसको सीधा करता हूँ।"

खरगोश उसको साथ लेकर कुएँ के पास पहुँचा। इधर उधर देखकर बोला, "जान पडता है महाराज ! वह केवल डीग मारनेवाला था। आपको देखकर कही छिप गया है।" और तभी उसने कुएँ के भीतर झाँककर कहा 'वह है महाराज ! इस कुएँ के भीतर छिपा बैठा है।"

शेर ने कुएँ के भीतर झाँककर देखा तो पानी मे उसे अपनी परछाई दिखाई दी—एक और शेर !

और उस दूसरे शेर को ललकारने के लिए वह पूरे जोर से दहाड उठा। कुएँ के भीतर उसकी दहाड की प्रतिध्वनि गूंज उठी। उसे सुनकर शेर महाराज क्रोध मे भरे हुए कुएँ मे कूद गए। खरगोश की जान बच गई। बाकी जानवरो की जान भी बच गई। इसलिए कहते हैं

बुद्धिर्यस्य बल तस्य।

जिसकी बुद्धि है, उसी का बल है। मनुष्य में बुद्धि का बल है, इसलिए वह हाथियो, शेरों और भयानक-से-भयानक जगली जानवरो को नचाता है। पहाडो की छाती फोड देता है। नदियो का प्रवाह

रोक देता है।

देखिये, ज्ञान और बुद्धि से मनुष्य ने बिजली से कैसे-कैसे काम लिये हैं!

मनुष्य ने बिजली को बाँधा और कहा, 'यहाँ बत्तियाँ जगा दो!' और जगह-जगह बत्तियाँ जग गईं। हमारे युग में बादशाह लोग अपने यहाँ दीपमाला करते थे। अब साधारण-से-साधारण आदमी के यहाँ शादी हो तो बाजार-का-बाजार जगमगा उठता है। ऐसी बत्तियाँ जल उठती हैं जो न पानी से बुझें और न ही आँधी से।

मनुष्य ने बिजली को कहा, 'पंखे चलाओ!' और जगह-जगह पंखे चलने लगे। बड़े-बड़े सुलतान और सामन्त अपने यहाँ छत का पंखा लगवाते थे और कुली से उसे खिचवाते थे। अब साधारण घरों में भी बिजली के पंखे चलते हैं। छत के न हों तो मेज के ही सही। और अब तो मैंने सुना है कि बैटरी के छोटे-छोटे पंखे भी बन गए हैं। जहाँ गर्मी लगे, वहीं जेब से निकालो, बटन दबाओ, हवा शुरू!

और फिर मनुष्य ने बिजली को कहा, 'खाना बनाओ!' और खाना बनने लगा।

उसने कहा, 'बर्फ बनाओ!' और जिस बिजली से हीटर चलते हैं, उसी से बर्फ बनाने के लिए रेफ्रिजरेटर चलते हैं।

और बम्बई में देखिये। वहाँ सेठ लोग जरा मोटे होते हैं। सीढ़ियाँ चढ़ नहीं सकते। लिफ्ट में खड़े हो जाते हैं। बिजली उन्हें ऊपर ले जाती है। मैं हाँगकाँग में गया। वहाँ पचीस-पचीस और तीस-तीस मंजिल की इमारतें हैं। करोड़पति सिन्धी वहाँ रहते हैं। संभवतः एकाध लखपति भी हो, अन्यथा सभी करोड़पति हैं। अब इन ऊँची-ऊँची इमारतों में वे सीढ़ियाँ चढ़कर तो जाते नहीं। बिजली की लिफ्टों से जाते हैं। मैं एक बार ऐसी इमारत में कथा करने गया। संभवतः ग्यारहवीं मंजिल में कथा थी। मैं लिफ्ट में चढ़ा तो आश्चर्य से सोचा, यदि कहीं बिजली फेल हो जाए तो क्या होता होगा? ऊपर-के-ऊपर, नीचे-के-नीचे, बीच-के-बीच में। किन्तु मुझे बताया गया कि वहाँ

बिजली कभी फेल नही होती।

किन्तु यही क्यो ? बिजली से ऐसे-ऐसे काम लिये हैं मनुष्य ने कि बुद्धि चकरा जाती है। बिजली से रेलगाडियाँ चलती हैं। टेलीफोन काम करते हैं। तार आते-जाते है। वायरलेस चलते हैं, रेडियो चलते हैं, टेलीविजन चलते हैं।

अकबर ने एक बार बीरबल से पूछा था, 'ऐसा कौन है जो पीर, बावर्ची, भिश्ती, खर—अर्थात् गधा—सब-कुछ हो ?' बीरबल ने कहा था, 'जहाँपनाह, ऐसा आदमी ब्राह्मण है। वह गुरु भी है, पानी भी लाता है, खाना भी बनाता है, और यात्रा पर जाए तो बोझ भी उठा लेता है।'

किन्तु आज यदि बीरबल जीवित होते तो आश्चर्य से देखते कि बिजली तो ब्राह्मण से भी कई कदम आगे बढ गई है। यह प्रकाश करती है। भिश्ती का रसोइया का, मजदूर का, घोडा, आग, हवा, पानी सब-कुछ है सबका काम देती है।

रणवीर जब अमेरिका की यात्रा पर गया तो उसने वापस आकर बताया कि अमेरिका और यूरोप मे बिजली मे क्या-कुछ होता है। एक इमारत मे वह गया। उसके दरवाजे अपने-आप खुल गए। रणवीर भीतर प्रविष्ट हुआ तो अपने-आप बन्द हो गए। रणवीर ने आश्चर्य से पूछा, 'यह क्या करामात है?' तो उसके साथी ने बताया कि 'दरवाजे में बिजली की आँख लगी है। जैसे ही वह देखती है कि दरवाजे के पास कोई आया है तो वह दरवाजा खुल जाता है। उसके भीतर जाते ही बन्द हो जाता है।' फिर उसने बताया कि 'एक सीढी पर वह खडा हुआ और सीढी ऊपर जाने लगी। इसके साथ ही दूसरी ओर की सीढी नीचे आ रही थी, अर्थात् आप सीढी पर चढो या उतरो नही, केवल खडे हो जाओ, सीढी अपने-आप उतरती और अपने-आप चढती है।' अन्त मे उसने यह भी बताया कि 'एक सडक पर वह पहुँचा। भारी-भरकम सामान उसके पास था। उसे लेकर आगे चलने लगा तो साथी ने कहा, 'यह सामान यहीं रख दो।' रणवीर

ने कहा, 'यहाँ सड़क पर ?' साथी बोला, 'यह सड़क अभी चलेगी। सामान भी चलेगा। तुम खड़े रहो तुम भी चलोगे।'

यह बुद्धिबल का परिणाम है! ज्ञान ने बुद्धि को प्रेरणा दी। बुद्धि ने बिजली को इस तरह बाँध दिया कि सब-कुछ बनी जाती है, सब-कुछ करती है।

ज्ञान मिल जाए तो मन, बुद्धि और चित्त सभी ठीक मार्ग पर चलते हैं। तभी इनके द्वारा ऐसी-ऐसी बातें होती हैं जिन्हें देखकर आदमी दंग रह जाता है। यह मन बहुत चंचल है—बहुत तेज, बहुत शक्तिशाली। यह ज्योतियों की ज्योति है। यह बिजली से अरबों-खरबों गुणा अधिक तेज चलता है। यह परमाणु शक्ति से भी अधिक शक्तिवाला है।

सोचकर देखिये! आपमें से कितने लोगों ने लन्दन, न्यूयॉर्क, टोक्यो, और सिंगापुर को देखा है, यह मैं नहीं जानता। किन्तु जिन लोगों ने देखा है, उनके लिए कहता हूँ। लन्दन की बात सोचिये, टेम्स नदी का पुल, लन्दन का टावर—आपका मन लन्दन में है। और तब न्यूयॉर्क की बात सोचिये! टाइम्स स्क्वेयर, बड़ी-बड़ी इमारतें, बड़े-बड़े नामपट्ट, दौड़ती हुई मोटरें—आपका मन लन्दन से न्यूयॉर्क पहुँच गया। तब टोक्यो की बात सोचिये और वह टोक्यो में है। अब सिंगापुर की बात सोचिये और वह सिंगापुर में है। और फिर दिल्ली की बात सोचिये, इस पंजाबी बाग की और आपका मन दिल्ली में है। दुनिया में है कोई ऐसी चीज जो इससे भी अधिक गति से चल सके? किन्तु इसको भी ज्ञान की डोर से बाँधा जा सकता है :

मन पंछी तब लग उड़े विषय-वासना माहीं।
ज्ञान बाज की झपट में, जब लग आया नाहीं॥

ज्ञान का बाज जब उसे पकड़ लेता है, तब उसकी सब दौड़-भाग समाप्त हो जाती है। जब कभी यह बहुत उछल-कूद करे तब ज्ञान से इसको समझाइये। इसे बताइये कि यह दुनिया सदा रहनेवाली नहीं है। यह तो 'जागत' है। और 'जागत' का अर्थ है 'चलने वाले'

निरन्तर बदलनेवाला। प्रतिदिन यह बदल रहा है। हर घंटे, हर मिनट, हर सैकण्ड इसमे परिवर्तन आ रहा है। हर सैकण्ड के करोड़वें भाग मे भी परिवर्तन का यह खेल चल रहा है। बच्चा उत्पन्न होता है, बडा होता है, उसकी किलकारियो से घर मे एक शब्दहीन संगीत गूंज उठता है। उन मुस्कराहटों से प्रकाश जाग उठता है। वह और बडा होता है। बालक बनता है, पढने के लिए जाने लगता है। और बडा होता है। नवयुवक हो गया है। उसकी आँखो मे मस्ती है, चेहरे मे आकर्षण, भुजाओ मे बल। उसे देखने को लोगो की आँखे उठ जाती है। वह कितने ही लोगो की आशा का सम्बल है। कितने ही लोगो के प्यार का केन्द्र है वह। तब वह और बडा होता है। शादी हो गई, बच्चे हो गए। वह अधेड उम्र का हो गया है। कुछ दुर्बलता आने लगी है। कुछ रोग घेरने लगे है। और तब वह बूढ़ा हो जाता है—बीमार, जर्जर, दुर्बल! खाट से उठ नही पाता। लाठी के बिना चल नही पाता। और तब एक दिन आता है, जब चार भाई मिलकर उसे उठाते है। श्मशान मे छोड आते है।

यही है तुम्हारी दुनिया। इसी के पीछे दौड रहे हो तुम? यह तो सदा बदलती रही, सदा बदलती रहेगी, पल-पल मरती, पल-पल नई पैदा होती है।

> दुनिया का इब्तदा से यही कारखाना है।
> कल था किसी का, आज किसी का जमाना है॥

नई-नवेली रूपवती पत्नी घर मे आई। उसके रूप से घर जगमगा उठा। उसकी आँखो की मस्ती से यो जान पडा जैसे सारा घर मादकता से भर गया। उसके चेहरे से यो लगा जैसे चाँद निकल आया। किन्तु यह भी तो सोच भाई, कि एक दिन इसी चेहरे पर झुर्रियाँ पड जाएँगी। इन्ही होठो पर पपडी जम जाएगी। ये काले घुंघराले बाल सफेद हो जाएँगे। इन आँखो में मोतियाबिन्द उतर आएगा। यह तो जगत् है—निरन्तर चलता हुआ, नष्ट होता हुआ, बनता हुआ, फिर नष्ट होता हुआ।

योगदर्शन कहता है :

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधात् दुःखमेव सर्वं विवेकिनाम् ।

'परिणाम' का अर्थ भी है, निरन्तर बदलता, बिगड़ता हुआ।

आपने सफेद, नया धुला हुआ कपड़ा पहना। कुछ देर बाद ही वह मैला होने लगता है ; कुछ दिनों बाद फटने लगता है। यहाँ मैला होना और फटना वास्तव में उसी समय उस कपड़े में विद्यमान था, जब आपने उसको पहना। प्रत्येक वस्तु का परिणाम, प्रत्येक वस्तु में उसका बिगड़ना और मरना प्रारंभ से ही उसके साथ लगा हुआ है।

एक आदमी पैदा हुआ, बड़ा हुआ, सब लोग उसकी ओर देखते हैं। सबके लिए वह आकर्षण का कारण है। किन्तु एक दिन वह बूढ़ा होता है। कोई उसकी ओर नहीं देखता। कोई उसको नहीं चाहता। यह परिणाम' है उस मनुष्य का। किन्तु वह परिणाम उस समय भी उसके साथ था, जब वह उत्पन्न हुआ। हिन्दी के एक कवि ने इस बात को बड़े सुन्दर ढंग से कहा है :

काचे में नीका लगे।

नीका कहते हैं, अच्छे को। कच्चा हो तो बहुत अच्छा लगता है।

काचे में नीका लगे, गदरे बहुत मिठाये।
इक फल है ऐसा सखी, पाक गये कड़वाये।।

ऐसा फल है मनुष्य। पक जाए तो कड़वा हो जाता है। लोग भी उससे तंग आ जाते हैं। घरवाले कहते हैं, 'बुड्ढा न मरे, न जाए'। इस दुनिया के पीछे पागल हुए फिरते हो भाई ! बेटियों को दामाद ले गए, बेटों को उनकी पत्नियाँ और बूढ़ा-बूढ़ी घर में ठन-ठन गोपाला रह गये।

इस तरह समझाओ अपने मन को। प्रत्येक वस्तु जो दिखाई देती है, जो विद्यमान है, उसका 'परिणाम' उसके साथ है। वह बदलनेवाली, बिगड़नेवाली, समाप्त होनेवाली है। सदा उस रूप में रहेगी नहीं। और फिर 'ताप'।

'ताप' कहते हैं भय को। हालत अच्छी है, मकान है, सम्पत्ति है,

बैंक मे पर्याप्त रुपया भी है, किन्तु भय है कि कल क्या होगा ? बैंक फेल हो गया, तो ? मकान को आग लग गई, तो ? भूचाल आ गया, तो ? ऐसे कितने ही भय हैं। इस भय से मनुष्य दु:खी रहता है। इसे 'ताप'—दु:ख कहते हैं।

और तब 'संस्कार' अर्थात् वासना।

एक कर्म किया आपने। शुरू हुआ कर्म और समाप्त हो गया। किन्तु उसका संस्कार आपके मन पर रह जाता है। यह संस्कार विवश करता है कि फिर से वही कर्म करो। इसको कहते हैं—वासना। यह वासना ही मनुष्य को जन्म और मरण के चक्कर में लेकर घूमती रहती है।

अपनी एक बात सुनाऊँ आपको—

दिल्ली के आर्य सज्जनों ने मिल-मिलाकर, यत्न करके सीताराम-बाजार में एक आर्यसमाज मन्दिर बनवा दिया। बहुत बरस पहले की बात है यह। मैं तब लाहौर में रहता था। लाहौर से कई सज्जनों को आर्यसमाज सीताराम बाजारवालो ने बुलाया। मुझे भी बुलाया। टिकट लेकर यहाँ आया। दोपहर के समय समाजवालों ने भोजन खिलाया तो उसके साथ जलेबियाँ भी खिलाईं। बड़ी स्वादिष्ट जलेबियाँ थीं। पूछने पर पता लगा कि दिल्ली में एक बाजार है, चाँदनी चौक। वहाँ एक दुकान है, घटेवाले की। उसकी जलेबियाँ हैं ये। वह शुद्ध देशी घी की जलेबियाँ बनाता है। मैंने जलेबियाँ खा तो ली किन्तु इतनी स्वादिष्ट लगीं कि सारा दिन उन्हे फिर खाने की इच्छा मन मे होती रही। सोचा, उस दुकान पर चलकर ये जलेबियाँ खरीदूँगा। किन्तु आर्यसमाजवालों ने उसी रात को फ्रंटियर मेल से सीटें रिजर्व करवा रखी थीं। उसी रात लाहौर को वापस जाना पड़ा। घटेवाले की दुकान तक नही पहुँच सका। अब रात का समय, गाड़ी भाग रही है और मेरे मन महाराज जाप कर रहे हैं, "जलेबी, जलेबी, जलेबी।" लाहौर पहुँचकर भी यही हाल। दिन-भर काम मे जी नही लगा। मैं मन को कहूँ, 'काम करो।' वह बोले, 'जलेबी लाओ।

दिल्ली के अन्दर चाँदनी चौक में घंटेवाला हलवाई जलेबी बनाता है। वही जलेबी।' और उसी रात मैं फिर से टिकट लेकर फंटियर मेल में सवार हो गया। सुबह-ही-सुबह दिल्ली पहुँचा और रेलवे-स्टेशन से ताँगा लेकर सीधा घंटेवाले हलवाई की दुकान पर! दुकान बन्द थी। बहुत देर वहाँ खड़ा रहा कि अभी खुलेगी। देर तक नहीं खुली तो मैंने एक आदमी से पूछा, तब पता लगा कि आज दुकानवालों की छुट्टी है; दुकान खुलेगी नहीं। अब मैं क्या करता? विवश होकर आर्यसमाज मन्दिर में पहुँचा। दिन-भर वहाँ ठहरा। रात-भर जलेबी के सपने देखता रहा। सुबह होते ही फिर घंटेवाले की दुकान पर! दुकान अब भी बन्द थी। किन्तु भीतर से जलेबी तलने की सोंधी सुगन्ध आ रही थी। अन्त में दुकान खुली। मैंने आधा सेर जलेबियाँ खरीदीं, खाईं, तब मन को शान्ति हुई।

यह है वासना!

पहले दिन जलेबी खाने के बाद मैं टिकट लेकर दिल्ली से लाहौर गया। वह टिकट के बिना ही मेरे साथ-साथ यात्रा कर रही थी। 'वास' का अर्थ है गन्ध। चमेली के फूल एक कपड़े में बाँधकर रखिये। थोड़ी देर के बाद फूलों को फेंक दीजिये। कपड़े को सूँघिये। फूल उसमें एक नहीं किन्तु चमेली की गन्ध उसमें विद्यमान है। यही 'वासना' है। कर्म समाप्त हो जाता है। उसका संस्कार शेष रह जाता है। 'वासना' रह जाती है और यह वासना दुःख देती है।

परिणाम, ताप, संस्कार ये सब दुःख देनेवाले हैं। गुण और वृत्ति के भेद से पैदा होनेवाली दशा में भी दुःख को देनेवाले हैं। जो 'विवेकी' हैं, सोचते, समझते और जानते हैं, उन्हें पता है कि यह सब दुःख-ही-दुःख है।

'नानक दुखिया सब संसार।'

'फरीदा मैं जाणया—दुख मुझको सुख सबाइये जग
ऊँचे चढ़ के देखाँ तां घर-घर ऐहो अग्ग।'

मैं समझा कि मैं ही दुःखी हूँ, बाकी सब लोग सुखी हैं। किन्तु एक ऊँची जगह पर खड़े होकर देखा तो पता लगा कि घर-घर में यही आग लगी है। प्रत्येक मनुष्य दुःखी है।

यह है वह बात जो ज्ञान से प्राप्त होती है। इसलिए उपनिषद् के ऋषि ने कहा, ज्ञान को प्राप्त करने के लिए गुरु के पास जाओ—ऐसे गुरु के पास जो जानता है, जो वेद का विद्वान् है। जो ब्रह्म को समझता है। उससे प्राप्त किये हुए ज्ञान से अपने-आप को समझाओ। इस बात को समझो कि यह संसार निरन्तर बदलनेवाला है। यहाँ केवल एक वस्तु है जो कभी नहीं बदलती; वह ईश्वर है। और यह ज्ञान जैसाकि मैंने पहले कहा, उस गुरु से मिलता है जो स्वयं उसे जानता है। जो स्वयं ही नहीं जानता वह दूसरे को क्या बताएगा?

अब देखिये, मैं गंगोत्तरी में रहता हूँ। मुझसे कोई पूछे कि गंगोत्तरी जाने का मार्ग क्या है तो मैं कहूँगा, 'पहले हृषिकेष पहुँचो, वहाँ से नरेन्द्र नगर के रास्ते उत्तर काशी तक जाओ, उत्तर काशी से धराली तक पक्की सड़क जाती है। यह धराली भारत का अन्तिम नगर है। इससे दो फर्लांग के अन्तर पर एक ओर गंगा है, दूसरी ओर सड़क। गंगा के किनारे पर कुछ प्राकृतिक गुफाएँ भी हैं। इन्हीं में से एक गुफा में कभी महर्षि दयानन्द ने कई मास रहकर घोर तप किया था। धराली से तेरह मील पैदल चलने के बाद गंगोत्तरी आएगी।

मैं यह सब-कुछ इसलिए कहूँगा कि मैं कई बार गंगोत्तरी गया हूँ; कई-कई मास वहाँ निवास किया है। मैं जानता हूँ कि गंगोत्तरी का मार्ग क्या है। इस मार्ग पर चलकर आप गंगोत्तरी ही पहुँचेंगे, किसी दूसरी जगह नहीं पहुँच सकते।

किन्तु यदि आप किसी ऐसे आदमी से गंगोत्तरी का मार्ग पूछिये जो वहाँ कभी गया नहीं और जिसे वह मार्ग मालूम नहीं; या अगर आपको वह धोखा देना चाहता है तो कहेगा कि दिल्ली से कलकत्ता जाओ। गाड़ी में चले जाओ या हवाई जहाज में। वहाँ से स्टीमर में

बैठकर रंगून पहुँचो। वहाँ से मांडले तक गाड़ी जाती है। इस गाड़ी में सवार हो जाओ। तब वहाँ से बस में बैठकर भामू पहुँचो। भामू से चलते-चलते असम पहुँच जाओ। वहाँ से पूछ लेना कि गंगोत्तरी किधर है।

नहीं मेरे भाई! ऐसे गुरुजी से कुछ नहीं मिलेगा। सच्चे गुरु से ही सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा।

ज्ञान के बाद दूसरी आवश्यक चीज है श्रद्धा। एक बार जो बात समझ ली, उसका ज्ञान प्राप्त कर लिया तो उसपर चट्टान की तरह दृढ़ता से खड़े हो जाओ। डगमगाओ नहीं। इधर-उधर मत देखो। ईश्वर का मार्ग तर्क का मार्ग नहीं है; श्रद्धा का मार्ग है। वेद कहता है:

श्रद्धा आपः।

श्रद्धा पानी है। जो आध्यात्मिकता के उद्यान को हरा-भरा रखना चाहते हैं, उन्हें श्रद्धा के जल से उसे सींचना चाहिये। श्रद्धा के बिना आध्यात्मिकता का उद्यान सूख जाएगा। इसके बिना ज्ञान भी सहायता नहीं करेगा। उसमें मरुभूमि की तरह व्यर्थ के कँटीले झाड़-झंखाड़ उग आयेंगे—शंका और सन्देह की काँटेदार झाड़ियाँ—मार्ग रहेगा नहीं।

आजकल किसी से श्रद्धा की बात कहो तो वह कहता है, "श्रद्धा तो अनपढ़ और मूर्ख लोगों की वस्तु है। हम पढ़े-लिखे हैं, सोचने-विचारने की शक्ति रखते हैं। हमारे पास बुद्धि है। हमारे साथ तर्क के साथ बात करो।"

मैं तर्क का विरोध नहीं करता। किन्तु यह तर्क हर जगह तो चलने का नहीं। तुम्हें अभिमान है पढ़ने और लिखने का। अभिमान है बुद्धि का और समझदारी का। किन्तु सोचकर देखो कि यह अभिमान है क्या? आज से तीन सौ बरस पहले क्या कोई आदमी, बहुत पढ़ा-लिखा आदमी, बहुत बुद्धिवाला भी कह सकता था कि ऐसा हवाई जहाज बन सकता है, जिसमें सैकड़ों आदमी बैठकर पाँच सौ या आठ

सौ मील प्रति घंटे की गति से उड सके ? क्या कोई कह सकता था कि ऐसे यंत्र भी बन सकते हैं, जिनसे आदमी हजारो मील दूर की आवाज को सुन सके ? सैकड़ो मील दूर की घटनाओं और दृश्यों को देख सके ? क्या कोई कह सकता था कि आकाश में चमकनेवाली बिजली को मनुष्य का दास बनाया जा सकता है ? इससे प्रकाश, गर्मी, सर्दी, सवारी का प्रबन्ध भी करवाया जा सकता है ? क्या कोई कह सकता था कि इस दुनिया में ऐसे एटम और हाइड्रोजन बम भी बन सकते हैं जो देश-भर मे लाखों लोगो को समाप्त कर दें ? उस युग मे भी तो लोग पढे-लिखे थे, बुद्धिमान् थे। किन्तु उनकी विद्या और बुद्धि यह सब-कुछ देख नही पाती थी। आप कह सकते हैं कि उस समय का मनुष्य इतना शिक्षित नही था। अब शिक्षित हो गया है। अब उसे तर्क से ही काम लेना चाहिये। किन्तु सोचकर देखिये कि क्या आज भी हम जानते हैं कि मंगल, शुक्र, वृहस्पति, शनिश्चर, अरुण, वरुण और यम तारो मे क्या है ? क्या हम जानते हैं कि सूर्यमण्डल के बाहर क्या है ? इस ब्रह्माण्ड में क्या है, जिसमे हमारे सूर्यमण्डल-जैसे डेढ अरब सूर्यमण्डल है ? और इन ब्रह्माण्डों में क्या है जिनकी संख्या एक खरब से अधिक है और जो हमें चमकते हुए कण-से दिखाई देते हैं और जिनमें एक-एक मे कई अरब सूर्यमण्डल हैं ? प्रत्येक सूर्यमण्डल की परिक्रमा करते हुए कितने ही तारे ! एक खरब ब्रह्माण्डो की बात मैं नही कहता ; आज के वैज्ञानिक कहते हैं, उनकी घोषणा है कि अब तक जितने दूरवीक्षण यंत्र तैयार हो चुके हैं उनसे पता चलता है कि इस विशाल आकाश मे एक खरब से अधिक ब्रह्माण्ड हैं। यह इस दुनिया का अन्त नही। कल यदि अधिक शक्तिशाली दूरवीक्षण यंत्र बन सकें तो संभवतः कई खरब ब्रह्माण्ड दिखाई देंगे। और तब भी अन्त दिखाई नही देगा, क्योंकि इस विश्व का अन्त कही मालूम नहीं देता।

यह है मनुष्य की शिक्षा और बुद्धि का वास्तविक रूप। इतना-कुछ जानकर भी हमने सब-कुछ नही जाना। अरे ! इस दुनिया का

अन्त तो पाया नहीं, फिर इसको बनानेवाले का अन्त कैसे पाओगे? तुम्हारी शिक्षा, तुम्हारी बुद्धि दोनों सीमित हैं, और ईश्वर है असीम। सीमित में असीम समाएगा कैसे? तर्क से तुम उसे समझोगे कैसे, जो तुम्हारे तर्क से परे है? वह तो श्रद्धा से ही मिलेगा। इसलिए वेद ने कहा—

श्रद्धा देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।

'श्रद्धा' मूर्ख और अनपढ़ लोगों की चीज नहीं है। देव लोगों की, ज्ञानियों की, यज्ञकर्त्ताओं की, आकाश-समाधि लगाकर वायुमण्डल में घूमनेवाले योगियों की चीज है। वे इसकी उपासना करते हैं। वे इसका सहारा लेते हैं।

अब बताइये, यह श्रद्धा मूर्खों की चीज है या विद्वानों की?

श्रद्धां हृदय्याकूत्या श्रद्धयां विन्दते वसुः।

श्रद्धा से हृदय का कमल खिल उठता है, श्रद्धा से ईश्वर की प्राप्ति होती है। इसीलिए हमारे शास्त्रों ने कहा:

श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।

सच्चा ज्ञान भी श्रद्धावाले को ही मिलता है। जो प्रतिक्षण तर्क-कुतर्क ही करता है, उसके लिए महाभारत कहता है:

अश्रद्धा परमं पापम्।

अश्रद्धा से बढ़कर कोई पाप नहीं, क्योंकि यह अश्रद्धा मनुष्य को शंकाओं और सन्देहों के उस जंगल में ले जाती है, जिससे बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं। इसके साथ ही महर्षि वेद व्यास कहते हैं:

अश्रद्धा परमं पापम्, श्रद्धा पाप प्रमोचनी।

श्रद्धा से ही पाप दूर होता है। और वेद में तो एक पूरा सूक्त श्रद्धा के सम्बन्ध में है। हमारे महात्मा आनन्द भिक्षुजी यज्ञ कराते हैं। यज्ञ से पहले यजमान को व्रत लेने के लिए कहते हैं तो उससे यह मंत्र पढ़वाते हैं:

व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

यह यजुर्वेद का मंत्र है। व्रत से दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा, दक्षिणा से श्रद्धा उत्पन्न होती है। और श्रद्धा से उस परमपिता परमात्मा के दर्शन होते हैं जो परम सत्य है, सबसे बड़ी सच्चाई है। क्यों जी! यदि श्रद्धा व्यर्थ की वस्तु होती तो वेद भगवान् इसपर जोर क्यों देता? नही, यह व्यर्थ वस्तु नही है। कुछ प्राप्त करना है तो श्रद्धावान् बन, श्रद्धा से काम ले।

अब आर्यसमाज को ही देखिये। ज्ञान बहुत है यहाँ, तर्क-वितर्क बहुत है। किन्तु श्रद्धा या तो है नही, या न होने के बराबर है। इसलिए दिन-प्रतिदिन निर्बलता आ रही है। मैं पंजाबी बाग के लोगों की बात नही कहता। ये तो श्रद्धावाले हैं। कल प्रातः मैं उस समय यहाँ आया जब हवन-यज्ञ हो रहा था। कितने ही लोग यहाँ उपस्थित थे। उन्हे देखकर मुझे प्रसन्नता हुई कि इनमें श्रद्धा है। प्रात. साढे पाँच बजे नहा-धोकर यहाँ पहुँच गए हैं। कुछ और जगहो पर भी मैंने ऐसी श्रद्धा देखी है।

होलियों के दिनों मे अमृतसर नगर मे मेरी कथा हुई तो प्रातः छः बजे प्रारभ होती थी और ऐसे जान पडता था जैसे सारा नगर उमडकर आ गया हो। किन्तु यह श्रद्धा आर्यसमाज मे केवल कही-कही दिखाई देती है। इसके न होने से आर्यसमाज शिथिल हुआ जाता है। याद रखो, जहाँ श्रद्धा है, वही रस है, वही मिठास है। वही जीवन है। श्रद्धा के बिना कभी कुछ होता नही।

आपने मुझसे गंगोत्तरी का मार्ग पूछा, मैंने बता दिया। अब आप उस मार्ग पर चलने की अपेक्षा मन मे सोच रहे हैं कि आनन्द स्वामी ने मार्ग तो बताया किन्तु क्या पता इस मार्ग पर चलने से गगोत्तरी पहुँचेंगे भी नही? सन्देह ही किये जाते हैं, चलते नही, तो याद रखो, गगोत्तरी कभी नही पहुँचोगे।

मैं कहता हूँ गायत्री मत्र का जाप करो। इससे मन मे प्रकाश आएगा। आत्मा का द्वार खुलेगा। किन्तु तुम जाप ही न करो तो मैं क्या करूँ?

एक बड़ा पत्थर है, उसे तोड़ना है। पकड़ो हथौड़ा। मारो उसके ऊपर। एक बार मारने से पत्थर नहीं टूटता तो फिर मारो, फिर मारो। लगाते जाओ चोट। घबराओ नहीं, पचास चोटें लगाने के बाद भी पत्थर नहीं टूटता तो यह मत समझ लो कि पत्थर कभी टूटेगा नहीं। अन्त में अवश्य टूटेगा यह। तुम चोट-पर-चोट लगाते जाओ। एक चोट के बाद दूसरी चोट, पूरी शक्ति के साथ लगाते जाओ, एक सौ या दो सौ चोटों के बाद पत्थर टूट गया तो यह मत समझो कि इसे अन्तिम चोट ने तोड़ा है। इसका टूटना पहली चोट से ही प्रारंभ हो गया था। उस समय यह टूटना तुम्हें दिखाई नहीं दिया। अब दिखाई देता है। श्रद्धा के साथ, विश्वास के साथ लगे रहे तो अन्त में सफलता मिलेगी अवश्य।

कई माताएँ कहती हैं, "स्वामीजी, आपने मंत्र का जाप करने के लिए कहा था। मैं करती तो हूँ किन्तु मन नहीं लगता।"

तो मैं कहता हूँ, "मन नहीं लगता तो न लगे। तुम तो लगी रहो।"

सचाई यह है कि हम वास्तव में स्वयं कुछ करना नहीं चाहते, दोष मन के माथे मढ़ देते हैं। इस तरह काम नहीं बनता। श्रद्धा होनी चाहिये, विश्वास होना चाहिए, तो फिर सब-कुछ होता है।

किन्तु……हे मेरे भगवान्! यह तो साढ़े नौ बज गए। अच्छा, शेष बात कल करेंगे। अभी

ओ३म् शम्!

चौथा दिन

[पूज्य महात्मा आनन्द स्वामीजी महाराज ने आर्यसमाज पंजाबी बाग में यह कथा ३० एप्रिल को प्रारम्भ की थी। ३ मई को, चौथे दिन, कथा प्रारम्भ करने से पहले उन्होंने वेद का वह मन्त्र पढ़ा जिसका अर्थ है :]

स्वामी ! तू हमारी माँ है ;

और हमारी रक्षा करनेवाला पिता भी।

हजारों ओर से तेरे कल्याण की वर्षा हम पर होती है,

कृपा कर कि हमारा मन अच्छा हो, नेक हो, तुम्हारी राह पर चलने वाला हो।

[और तब बोले—] इससे पूर्व कि मैं अपनी बात कहूँ, सब लोग मिलकर मेरे साथ गायत्री मंत्र को इस तरह मस्ती के साथ पढ़ो जैसे अरबों-खरबों ब्रह्माण्डों को ज्योति और जीवन देती हुई वह माँ अनन्त प्रकाश में जगमगाती, मुस्कराती, आशीर्वाद देती हुई आपके सामने खड़ी है। वह माँ जो महाशक्ति है, महाज्योति है, जो परमाणु के करोड़वें भाग से भी छोटी होकर उसके भीतर विद्यमान है और खरबों ब्रह्माण्डों से भी बड़ी होकर सबको अपनी ममतामयी गोद में लिये हुए है। जो सब जगह है, सब ओर है, सबके भीतर और सबके बाहर है। जिसे प्रभु, परमात्मा, प्रीतम, भगवान्, शिव, ब्रह्मा, रामा रहीम, अल्ला, खुदा, वाहगुरु, आदि कितने ही नामों से पुकारा जाता है, और जिसका अपना नाम ओ३म् है। उसका ध्यान करके मेरे साथ-साथ बोलिये :

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं।
भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।

[और जब सैकड़ों लोगों की गूँजती हुई ध्वनि ने गायत्री मन्त्र के अन्तिम शब्द का उच्चारण किया तो वह बोले :]

यजुर्वेद के इक्कीसवें अध्याय की बात सुना रहा था मैं आपको। इस संसार में सब ओर दुःख-ही-दुःख दिखाई देता है। और यह दुःख बढ़ता जाता है; कम होने में नहीं आता। अमेरिका इतना धनी देश है, विज्ञान ने वहाँ बहुत उन्नति की है, किन्तु वहाँ भी हालत यह है कि स्वयं अमेरिकावालों की एक रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका में हर दस आदमियों में एक पागल है। अमेरिका की जनसंख्या बाईस करोड़ है। यदि यह रिपोर्ट ठीक है तो इसका अर्थ है कि इन बाईस करोड़ लोगों में से दो करोड़ बीस लाख पागल हैं। यह ठीक है कि उनमें सब-के-सब अस्पतालों में नहीं, किन्तु इस रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि अमेरिका में जितने लोग अस्पतालों में चिकित्सा करवा रहे हैं, उनमें ५०% पागलपन के रोगी हैं। इतने धनी, इतने उन्नत देश में ये लोग यदि पागलपन के रोग से रोगी हैं, तो इस बात का दावा कौन कर सकता है कि वह देश सुखी है? सुखी लोग तो पागल होते नहीं। और फिर यही क्यों! करोड़ों अमेरिकन ऐसे हैं जो नींद लाने की गोलियाँ खाए बिना सो नहीं सकते। सुखी आदमी को तो बिना किसी औषध के गहरी नींद आनी चाहिए। यदि अमेरिका के इन करोड़ों लोगों को औषध के बिना नींद नहीं आती तो इसका अर्थ यह है कि वे दुःख और चिन्ता में डूबे हुए हैं। तब इस देश को सुखी कौन कह सकता है?

कुछ ही मास पूर्व मैं यूरोप में था। लन्दन में कथा कर रहा था। तभी लन्दन के दैनिक पत्र 'डेली टेलीग्राफ' ने 'गैल्पपोल' कराया। उस-के परिणाम को प्रकाशित करते हुए लिखा, 'इंग्लैंड, स्कॉटलैंड और वेल्स में पचास प्रतिशत नवयुवक और नवयुवतियाँ ऐसे हैं जो बल-पूर्वक कहते हैं कि वे उस देश में रहना नहीं चाहते। इससे बाहर चले जाना चाहते हैं। इस रिपोर्ट के आधार पर 'डेली टेलीग्राफ' ने एक मुख्य सम्पादकीय लिखा और उसमें कहा कि जिस देश में ५०%

नवयुवक लडके-लडकियाँ देश से बाहर चले जाना चाहते है, देश मे रहने की इच्छा नही रखते, जो देश मे रहकर सुखी नही, उसे एक स्वस्थ देश कौन कह सकता है ? निश्चय ही वह देश बीमार है, उसका सारा ढाँचा बीमार हो गया है।

किन्तु इस बात पर अभिमान मत करो कि केवल ब्रिटेन की यह दशा है। हमारे इस देश की हालत भी यही है। यहाँ किसी नवयुवक लडके या लडकी से पूछिये, उसकी सबसे पहली इच्छा यह है कि इस देश से बाहर चला जाए। कोई भी नवयुवक लडका या लडकी मुझे मिले तो वह कहता है, "स्वामीजी, जरा मेरा हाथ देखिये तो।" मैं हाथ देखता हूँ तो उसका सबसे पहला प्रश्न होता है विदेश जाने की रेखा है या नही ? हाथ की रेखाओ मे कुछ नही। व्यर्थ है यह सभी बात। किन्तु सच यह है मेरे भाई, कि जिस तरह अमेरिका, ब्रिटेन बीमार हैं वैसे ये भारतवासी भी बीमार है। वे बीमार हैं इसलिये कि उनके पास धन बहुत है, हम बीमार हैं इसलिए कि हम निर्धन है। हमारे देश का प्रत्येक युवक कैनेडा, ब्रिटेन, फ्रास, अमेरिका, आस्ट्रेलिया जाने का स्वप्न देखता है। कोई यह नही सोचता कि इस देश के सम्बन्ध मे भी उसका कोई कर्त्तव्य है जिसने उसे जन्म दिया।

किन्तु हमारे देश मे इस बीमारी का इलाज क्या समझा गया ? यह कि धन कमाओ। सुखी हो जाओगे। अरे भाई ! रावण से, औरगजेब से, कारूँ से अधिक धन कैसे कमाओगे ? वे सुखी नही हुए तो तुम्हे धन से वह सुख कैसे मिल जाएगा ? सुख प्राप्त करने का यह मार्ग नही।

सुख का सीधा-सा मार्ग वह है जिसे वेद भगवान् ने बताया, वह यह कि भौतिकवाद और अध्यात्मवाद दोनो को साथ-साथ लेकर चलो। दोनो मे आगे बढो। दोनो मे किसी भी एक को छोडकर दूसरे का सहारा लोगे तो निश्चित रूप से दुःख प्राप्त होगा। महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के नियम बनाए तो यह नहीं कहा कि मनुष्य को केवल आध्यात्मिक उन्नति होनी चाहिये, किन्तु यह

कहा कि शारीरिक, आध्यात्मिक और सामाजिक उन्नति होनी चाहिये।

और इन धनवालों की बात पूछते हो? मैं तो सबके घरों में जाता हूँ। सबकी बात सुनता हूँ। मुझसे पूछो, इनकी हालत क्या है? मैंने तो इनमें से किसी को सुखी नहीं देखा। धन उनके पास है अवश्य, किन्तु वह केवल उनके लिए चिन्ता का कारण है; सुख का कारण है नहीं। एक सेठजी हैं आपके नगर में। उनका नाम नहीं लेता। मुझे किसी ने बताया कि आज से इक्कीस वर्ष पहले उनके पास एक करोड़ रुपया था। आज पाँच सौ करोड़ रुपया है। मैं पूछता हूँ इस धन का यह सेठजी करते क्या हैं? क्या इक्कीस वर्ष पहले जितना खाते थे, जितना पहनते थे, उससे अधिक खाते-पहनते हैं? इक्कीस वर्ष पहले जितनी जगह पर सोते थे, उससे अधिक जगह पर सोते हैं? आपसे मैं पूछता हूँ और उन सेठजी से भी कि उन करोड़ों रुपयों से उन्हें कौन-सा सुख मिला है? मैं धन कमाने के विरुद्ध नहीं किन्तु सच यह है भाई, कि धन में सुख है नहीं। मनुष्य एक सीमा तक खा सकता है, पहन सकता है, सो सकता है। उससे अधिक खाएगा तो बीमार हो जाएगा। उससे अधिक कपड़े पहनेगा तो बोझ तले दब जाएगा। उससे अधिक जगह पर सोने का प्रयत्न करेगा तो इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं कि पहले अपने टुकड़े करे, फिर इन टुकड़ों को विभिन्न कमरों और चारपाइयों पर डाल दे। सचाई यह है कि मनुष्य ज्यों-ज्यों धनी होता है, त्यों-त्यों उसकी भूख मिटती जाती है, नींद मिटती जाती है। एक सीमा से अधिक धन सुख का नहीं, दुःख का कारण बन जाता है।

इस शरीर को ठीक रखना उचित है भाई! किन्तु यह भी तो सोचो कि यह शरीर है किसलिये?

आज की दुनिया केवल शरीर को ठीक रखने में व्यस्त है, वह भी अनुचित उपायों से। ज्यों-ज्यों दवा होती है, रोग बढ़ता जाता है। किन्तु मैं शरीर को ठीक रखने, उसे सुख-सुविधा जुटाने का विरोध

नही करता। यह भी तो सोचो कि शरीर किसलिए है ? यह भी तो सोचो कि तुम्हें जाना कहाँ है ? तुम्हारा लक्ष्य कौन-सा है ? मैंने पहले भी कहा था, आज फिर कहता हूँ। एक आदमी दुकान चलाता है। मैं पूछता हूँ, "क्यों भाई ! इस दुकान पर इतना परिश्रम करते हो, यह क्यों करते हो ?" वह कहता है, "धन कमाने के लिए।" मैं पूछता हूँ, "तुम धन कमाते हो तो किसलिये ?" वह कहता है, "खाने के लिए ?" खाते क्यो हो तो उत्तर यह होता है कि जीने के लिए। फिर पूछता हूँ कि जीवित क्यो रहना चाहते हो तो इस प्रश्न का उनके पास कोई उत्तर नही। अजीब तमाशा है यह। जिस बात को लेकर सारा गोरखधन्धा हो रहा है, उसी का पता नही। लगातार दौड हो रही है किन्तु यही पता नही कि जाना कहाँ है। ऐसे आदमी को जो लगातार दौडता जाता हो और जिसे यह भी मालूम न हो कि जाना कहाँ है, आप मूर्ख के सिवा और क्या कहेगे ? किन्तु ठडे दिल से सोचिये कि क्या आज इस दुनिया मे प्रायः प्रत्येक मनुष्य की यही दशा नही है ? दौडे जाता है, भागे जाता है, पसीना-पसीना हुआ जाता है और यही पता नही कि जाना कहाँ है ? यह दौड-भाग है किसलिये ? मैंने पहले भी कहा, आज फिर कहता हूँ : विज्ञान यह तो बता सकता है कि शरीर को ठीक रखने का उपाय क्या है, यह नही बता सकता कि शरीर को ठीक रखना क्यों है। वह यह तो बता सकता है कि दुनिया किस तरह बनी, किन्तु यह नही बता सकता कि किसलिये बनी और क्यों बनी।

यह बात कि शरीर को क्यो ठीक रखना चाहिये, यह बात कि जिस दुनिया को हम देखते हैं वह क्यों बनी, यह अध्यात्म-ज्ञान बता सकता है। भौतिक विज्ञान की यहाँ पहुँच नही है। इस आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त किये बिना सुख और मुक्ति का कोई मार्ग नही। यही एक मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहो।

ईसाई पादरी अपने धर्म का प्रचार करते और दूसरों को ईसाई बनाते है तो किस तरह ? धर्म का सहारा लेकर नही, अपितु इस धन

का सहारा लेकर जिसके सम्बन्ध में महात्मा ईसा ने कहा था, "यह तो सम्भव है कि एक हाथी सूई की नोक से निकल जाए किन्तु यह असंभव है कि कोई धनवान् स्वर्ग के द्वार से होकर स्वर्ग पहुँच जाए।" महात्मा ईसा ने यह कहा और ये पादरी उसी धन को हथियार बनाकर लोगों को ईसाई बनाते फिरते हैं।

मैं उड़ीसा में गया—उस क्षेत्र में जहाँ ईसाई पादरियों ने कई निर्धन लोगों को ईसाई बना दिया है और जहाँ स्वामी ब्रह्मानन्दजी काम कर रहे हैं। मैं उन भाइयों से मिला जो ईसाई हो चुके हैं। उन्होंने मुझे बताया कि ईसाई पादरी हमारे लिए स्कूल खोलते हैं, अस्पताल खोलते हैं, हमें रुपया देते हैं। तुम हमें यह सब-कुछ दो तो हम उस धर्म में वापस आ सकते हैं, जिसमें राम और कृष्ण की पूजा होती है। मन से वे अब भी हिन्दू हैं। धन के कारण ईसाई बन गए। अब बताइये कि यह कैसा धर्म-प्रचार है? यह तो धन-प्रचार है, धर्म-प्रचार है नहीं।

ऐसी ही इस देश की हालत को देखिये, इस दिल्ली को देखिये। यहाँ पहले अंग्रेज का राज था। लोगों ने कहा, हमें यह राज पसन्द नहीं। अंग्रेज का राज समाप्त हुआ, कांग्रेस का राज प्रारम्भ हुआ। लोगों ने कहा हमें कांग्रेस का राज स्वीकार नहीं। कांग्रेस का राज समाप्त हुआ, जनसंघ का राज प्रारम्भ हुआ। किन्तु जनसंघ-वालों ने क्या किया है? लोग वैसे ही दुःखी हैं, जैसे अंग्रेज के राज में दुःखी थे। तब इस दुःख का इलाज क्या है? वेद कहता है:

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

उस पुरुष को, उस परम-पुरुष परमेश्वर को जाने बिना दुःख, कष्ट, क्लेश, निर्धनता, भुखमरी, पिछड़ापन, निराशा, रोग, मृत्यु, किसी का इलाज नहीं हो सकता।

और उस परम-पुरुष को जानने का उपाय क्या है? यह इसी अध्याय के नवम मन्त्र में बताया गया है—

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवाऽयजन्त साध्या ऋषयाश्च ये॥

उस युगपुरुष को, परम पूज्य परमेश्वर को जो अनन्त ब्रह्माण्डों वाले इस जगत् से पहले भी था, जिसके सिवा किसी की पूजा नहीं होनी चाहिए, प्राप्त करते हैं, उसका दर्शन करते हैं, देव, साधना करने वाले और ऋषि लोग।

इस मन्त्र मे तीन शब्द बड़े महत्त्व के हैं . देव, साध्य और ऋषि। ये तीन मार्ग हैं। तीन साधन हैं जिनको अपनाने से उसको देखा जा सकता है जिसका कोई रूप, आकार, रंग नही।

क्योंकि, जब यह सब-कुछ नही तो फिर उसे देखा कैसे जा सकता है? निश्चित ही इस शरीर की आँख से उसको देखा नही जा सकता। किन्तु इस शरीर के भीतर जो आत्मा बैठा है, उसकी आँख से देखा जा सकता है उसे, अनुभव किया जा सकता है।

तब मैंने आपको बताया कि देव किसे कहते हैं? उसको जो अपने लिए नहीं, किन्तु दूसरों के लिए सोचता और कर्म करता है, जिसने स्वार्थ को त्याग दिया है। इस स्वार्थ से केवल मनुष्य ही नहीं राष्ट्र भी नष्ट हो जाते हैं। आदमी समझता है कि वह अपने-आपको सुखी बना रहा है। पर वह दुःख के गहरे गढे मे गिरता चला जाता है। स्वयं भी गिरता है, देश और जाति को भी गिराता है।

अपने देश की दशा को देखिये; ये लोग जो मंत्रिमण्डल बना बैठे हैं आज एक दल मे हैं, कल दूसरे में। कर क्या रहे हैं ये? क्या इनके दिल में देश का ध्यान है? राष्ट्र का हित है? दोनों को तो ये अपमानित किये देते हैं। इनके मन में केवल 'कुर्सी का हित' है। कुर्सी मिलनी चाहिये। भले ही और कुछ रहे या न रहे। इन जनसंघवालों को देखो, जबतक कुर्सी नही मिली तबतक ये चिल्लाते रहे कि पंजाब द्विभाषी प्रदेश है। कुर्सी मिली तो एक ही रात मे पंजाब इनके लिए एकभाषा-भाषी प्रदेश बन गया। अरे, यह है तुम्हारी सिद्धान्तवादिता? यह है तुम्हारी संस्कृति, कि आज जिस बात को कहकर वोट प्राप्त करो,

कल उसी का विरोध प्रारम्भ कर दो ? और केवल इसलिए कि कुर्सी मिल जाए ? कुर्सी बनी रहे ? यह कुर्सी रहेगी कबतक ?

यह उन दिनों की बात है जब पंजाब में जनसंघ और अकाली मिरलक राज कर रहे थे। बाद में यह राज सचमुच रहा नहीं।

सच यह है कि आज इस देश में हित की भावना रही नहीं। केवल स्वार्थ की भावना एक राक्षस की तरह चिल्लाती हुई दौड़ रही है। केवल एक उद्देश्य रह गया है कि धन कमाओ। जैसे भी हो सके, वैसे कमाओ। पहले 'नोट' प्राप्त करो, फिर नोट देकर 'वोट' प्राप्त करो। आज की राजनीति केवल 'चुनाव' की राजनीति है। कुछ लोग कहते हैं कि आर्यसमाज को भी चुनाव में भाग लेना चाहिये। मैं कहता हूँ जिस दिन आर्यसमाज ऐसा करेगा, उस दिन इसका सर्वनाश प्रारंभ हो जाएगा। ये चुनाव हैं क्या ? झूठे वादे, शराब की बोतलें, रिश्वत के नोट। यदि आर्यसमाज ने भी इस मार्ग को अपना लिया तो अधिक-से-अधिक तीन या चार बरस में इसका अन्त हो जाएगा। आज वह मुस्लिम लीग कहाँ है जिसने पाकिस्तान बनवाया था ? आज कांग्रेस कहाँ है जिसने देश की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष किया था ? जनसंघवाले उठे हिन्दू-राष्ट्र और हिन्दू-संस्कृति का नाम लेकर। किन्तु कुर्सियाँ सँभालते ही इनके अन्दर भी वही स्वार्थ-भावना जाग उठी। इनका भी वही हाल होनेवाला है। दिल्ली में जो कुछ ये कर रहे हैं, वह किसी से छिपा हुआ तो है नहीं। इसलिए मैं कहता हूँ कि आर्यसमाज को चुनाव और राजनीति से दूर रहना चाहिये। यदि यह अलग नहीं रहा तो याद रखो, इसको भी कोई पूछेगा नहीं। आर्यसमाज के लिए मुख्य वस्तु है आध्यात्मिकता। उस ओर आर्य नेताओं को ध्यान देना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि शरीर की रक्षा न करो। अवश्य करो। किन्तु इसके साथ ही उसकी भी चिन्ता करो जो इसके भीतर रहता है ; जिसके कारण इसका मूल्य है ; जिसके बिना यह मिट्टी का ढेर बन जाता है। इस भीतरवाले को देखते हैं—देव, साध्य और ऋषि।

देव की बात कह चुका। साध्य का वर्णन कर रहा था कल मैं। यह बता रहा था कि 'साधक' कौन है? इस सम्बन्ध में बताया कि सबसे पहले ज्ञान की आवश्यकता है। कहाँ जाना है, क्या करना है, यह जानना आवश्यक है। इस बात को जाने बिना आदमी जाएगा कहाँ? करेगा क्या?

महर्षि दयानन्द ने साध्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है, 'योग-अभ्यास आदि साधनो के द्वारा ईश्वर की ओर जाना।'

किन्तु उस ओर जाने से पहले तैयारी करना भी तो जरूरी है। मैंने निवेदन किया, तैयारी के लिए पहली जरूरी चीज है ज्ञान। उपनिषदो की कुछ बातें सुनाईं, कुछ घटनाएँ भी कि यह 'ज्ञान' क्यो आवश्यक है।

किन्तु ज्ञान मिल गया, मार्ग का पता चल गया, तब भी श्रद्धा न हो तो उसपर कोई चल नही सकता। प्राप्त किया हुआ ज्ञान भी व्यर्थ हो जाता है। वेद कहता है:

श्रद्धा आपः श्रद्धा प्राणाः।

श्रद्धा पानी है, जिससे अध्यात्म के मार्ग पर चलनेवाले के लिए हर ओर हरियाली जाग उठती है। दुख भी सुख मे बदल जाता है। श्रद्धा वह प्राण है, जिससे साधक को जीवन मिलता है।

मात्र यह जान लेने से तो भला नही होता। ज्ञान मे श्रद्धा भी होनी चाहिये। व्यास मुनि 'योग भाष्य' में कहते है कि श्रद्धा इस तरह योगी की रक्षा करती है, जैसे माँ अपने बच्चे की। किन्तु यह श्रद्धा है क्या? सीधे शब्दो मे यह कि जिस बात को आपने तर्क, आलोचना और प्रयत्न के द्वारा जाना, उसपर विश्वास भी कीजिये। अब देखिये, वेद कहता है:

कस्त्वा विमुंचति स त्वा विमुंचति
कस्मै त्वा विमुंचति तस्मै त्वा विमुंचति॥

महर्षि दयानन्द ने इसका यह अर्थ किया है कि जो हवन-यज्ञ को छोड़ देता है, प्रभु उसको छोड़ देता है।

किन्तु यह तो केवल शब्दार्थ है। गहरा अर्थ यह है कि ईश्वर

उसकी प्रार्थना नहीं सुनता जो परमात्मा की आज्ञा का पालन नहीं करता। प्रभु ने आज्ञा दे रखी है कि यज्ञ करो। और हमने यज्ञ करना ही छोड़ दिया। अब बताइये कि यदि आप इस बात को जानते हैं कि वेद ईश्वर की वाणी है, यदि आप इस बात को जानते हैं कि वेद स्पष्टरूप में हवन-यज्ञ का आदेश देता है और कहता है कि जो आदमी हवन-यज्ञ नहीं करता उसको ईश्वर छोड़ देता है तो फिर आप प्रतिदिन अपने घर में हवन-यज्ञ क्यों नहीं करते ?

कई लोग कहते हैं कि हवन-यज्ञ करने में खर्च बहुत होता है।

मैं पूछता हूँ कि क्या दूसरी बातों पर खर्च नहीं होता ? नाइलोन की साड़ियों पर, लिपस्टिकों पर, क्रीम पर, पाउडर पर। इस खर्च में कुछ कमी करके तुम हवन क्यों नहीं कर सकते ?

अच्छा, थोड़ी देर के लिए मान लो कि वास्तव में तुम हवन-यज्ञ पर खर्च नहीं कर सकते। यद्यपि मेरा अनुमान यह है कि हवन-यज्ञ करने पर प्रतिदिन अधिक-से-अधिक छः आने या आठ आने का खर्च होता है। किन्तु तुम यदि नहीं कर सकते तो -यहाँ आर्यसमाज में प्रतिदिन हवन-यज्ञ होता है। यहाँ क्यों नहीं आते ?

कई भाई कहते हैं, समय नहीं मिलता।

मैं कहता हूँ, तुम्हें समाचारपत्र पढ़ने का समय मिलता है, सिनेमा जाने के लिए समय मिलता है, बस के लिए कितनी ही देर तक प्रतीक्षा करने का समय मिलता है। क्या हवन के लिए ही समय नहीं मिलता ? किन्तु ये सब-को-सब बातें होती हैं श्रद्धा से, विश्वास से। यदि श्रद्धा न हो तो केवल ज्ञान से कुछ नहीं होता।

किन्तु ज्ञान और श्रद्धा के बाद भी और बात की आवश्यकता है। वह है तप। तप किये बिना कोई काम नहीं होता। किन्तु यह तप है क्या ?

कुछ मास पूर्व हरिद्वार में अर्द्ध-कुम्भी का मेला था। मैं वहाँ गया। देखा, एक साधु महाराज लोहे की कीलों पर लेटे हैं। लोग

उनको पैसे दे रहे हैं। मैं भी इस तमाशे को देखने के लिए एक ओर खड़ा हो गया। काफी पैसे मिल गए तो साधु महाराज ने कहा, "अब जाओ, यह तप समाप्त हुआ।"

लोग चले गए तो मैंने साधु से पूछा, "यह कैसा तप तुम कर रहे हो ?"

उसने पेट पर हाथ मारते हुए कहा, "सब इसके लिए है।" अर्थात् यह सब पेट पालने का साधन है। वह कीलों पर लेटता है, लोग उस तमाशे को देखते हैं, उसे पैसे देते हैं, और वह मनचाहा खाना खाता है। अब बताइये, यह तप क्या हुआ ? यह तो पेट पालने का धन्धा है।

तप क्या है ? इसका उत्तर देते हुए महर्षि दयानन्द ने 'ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका' में कहा है, "जैसे सोने को आग में तपा के निर्मल कर देते हैं, वैसे ही आत्मा और मन को भले कामों और अच्छे गुणों के द्वारा निर्मल कर देना ही तप है।"

यह है तप की महिमा ! इसलिए 'योगदर्शन' में 'क्रिया योग' का एक रूप बताते हुए सबसे पहले 'तप' का नाम लिया गया।

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।

क्रियायोग का मार्ग यह है कि आदमी तप करे, स्वाध्याय करे, और फिर सब-कुछ ईश्वर को अर्पण कर दे।

यहाँ सबसे पहले तप का उल्लेख है। और शारीरिक तप क्या है, इसके सम्बन्ध में भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥

देवता, विद्वान्, ब्राह्मण, गुरु और वृद्धों की सेवा करने और उनकी आज्ञा मानने में जो शारीरिक कष्ट होता है, उसे प्रसन्नतापूर्वक सहन करना, अपने-आप को भीतर और बाहर से निर्मल रखना, धोखा-छल-कपट न कर नहीं अपितु सफलता का जीवन बिताना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और बिना कारण किसी को कष्ट नहीं देना, और

यह सब-कुछ करते हुए भी नम्रता से रहना, अकड़ना नहीं, अभिमान में नहीं आना, दूसरों को अपने से नीचा नहीं समझना, यह है शरीर का तप।

अब बताइये, इसमें कहीं आग या पानी का उल्लेख है? कहीं यह बात कही है कि चारों ओर आग जलाकर तपती दोपहरी में इसके मध्य बैठ जाओ? या, सर्दियों की रात में, किसी बर्फीले इलाके में, घण्टों खड़े रहो? ऐसा तो कुछ भी नहीं लिखा कहीं। यह भी नहीं लिखा कि कीलों की सेज पर लेट जाओ, वृक्ष से उल्टे लटक जाओ या शरीर के किसी अंग को बेकार बनाकर सुखा डालो। यह भी नहीं लिखा कि बिना कारण के व्रत रखकर शरीर की शक्ति को घटाते रहो।

एक स्वामीजी मिले मुझे। एक जगह खाना खाने जा रहा था। मैं तो भिखारी हूँ न, सदा दूसरों का दिया खाता हूँ। उस दिन भी भिक्षा के लिए जा रहा था। यह स्वामीजी बोले, "कहाँ जा रहे हैं?" मैंने कहा, "भिक्षा के लिए जाता हूँ, एक सज्जन के यहाँ खाना खाने।" वह बोले, "भूख तो मुझे भी लगी है।" मैंने कहा, "तो आइये मेरे साथ। मैं जहाँ भिक्षा ग्रहण करूँगा, वहाँ आप भी कीजिये।" पहुँचे हम दोनों उस सज्जन के यहाँ। वह प्रसन्न हुए कि आनन्द-स्वामी के साथ एक और साधु पुरुष आ गए। हाथ धुलाकर उन्होंने आसन बिछा दिये। थालों में भोजन परोसकर ले आए। मैंने भगवान् का स्मरण करके भोजन प्रारंभ किया तो उन स्वामीजी से कहा, "आप भी खाइये।" वह मेरी ओर तथा इधर-उधर देखते बैठे रहे। भोजन को उन्होंने हाथ नहीं लगाया। मैंने आश्चर्य से कहा, "आप खाते क्यों नहीं? अभी तो कह रहे थे कि भूख लगी है?" वह धीमे-से बोले, "जी, मैं अपने हाथ से नहीं खाता, यह मेरा व्रत है। कोई दूसरा खिलाए तभी खाता हूँ।" मैंने हँसते हुए कहा, "यह क्या तप और व्रत है? आप अपने हाथ से दूसरे सभी काम करते हैं, खाना ही क्यों नहीं खाते?" वह बोले, "ऐसा ही तप है यह। मैंने व्रत ले

रखा है।" विचित्र तप और विचित्र व्रत है यह! किन्तु अब करते क्या? मैं तो खाना खा रहा था। जिन सज्जन के यहाँ खा रहा था, उन्होंने स्वयं ही हँसते हुए कहा, "आप चिन्ता मत कीजिये। इन स्वामीजी को मैं ही खिला देता हूँ।" और वह सज्जन ग्रास तोड-तोडकर, सब्जी लगा-लगाकर इन स्वामीजी के मुँह मे डालने लगे। बीच-बीच मे स्वामीजी कभी कहते, "अब पानी पिलाओ। अब अमुक सब्जी से खिलाओ। अब मीठा खिलाओ। अब थोडा अचार ले आओ। अब अमुक फल खिला दो।" और इस प्रकार वह सारा खाना खा गए।

स्पष्ट है कि यह तप नही है। यह तो जान-बूझकर अपने-आपको और दूसरो को तग करने का तरीका है। भगवान् ने हाथ दिये है तो इसलिए नही कि उन्हे निकम्मा बनाकर, अपग बनकर बैठ जाओ, अपितु इसलिए कि इनसे काम लो। दूसरो की सहायता भी करो। अपनी भी करो। तुम अपना खाना ही अपने हाथ से नही खाते तो दूसरे की सहायता क्या करोगे?

और ऐसे ही ये व्रत भी रख जाते है। आज सोम का व्रत है, आज मगल का। आज पूर्णिमा का व्रत है, आज अमावस का। बीच-बीच मे और भी व्रत आ जाते हैं। कभी एक अष्टमी है, कभी दूसरी। कभी-कभी मैं आश्चर्य के साथ सोचता हूँ कि लोग सोम का, मगल का व्रत रखते हैं, बेचारे बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर और रविवार ने क्या अपराध किया है? इनका व्रत क्यों नही रखते? रखें तो देश के अन्दर अनाज की समस्या तो हल हो जाए! किन्तु ये व्रत हैं कहाँ? पचास पैसे या एक रुपये का खाना नहीं खाया, दस-दस रुपये के विटामिन खाने प्रारभ कर दिये। रसोई मे जितने पैसे बचाए, उससे दस-बीस गुणा अधिक डॉक्टरो को दे दिये।

और फिर यही क्यों? लोग कई विचित्र प्रकार के व्रत भी तो रखते हैं।

एक बूढी माँ की कहानी सुनाया करता हूँ, आपको भी सुनाता हूँ।

किन्तु वह बूढ़ी माँ पंजाबी बाग की नहीं थी। किसी दूसरी जगह की थी। इस बूढ़ी ने व्रत रखा। चार बेटे थे इसके। चारों ने सोचा—माँ ने व्रत रखा है। बुढ़ापे की अवस्था है, इन्हें कुछ तो खाना ही चाहिये। एक बेटे ने उसके लिए डेढ़ दर्जन केले भेज दिये। दूसरे बेटे ने डेढ़ सेर दूध भेज दिया। तीसरे ने 'दड़ाग्रो' के आटे के बने हुए बहुत-से पकौड़े भेज दिये। चौथे ने फलों का एक टोकरा भेज दिया कि माँ कुछ खाएगी, कुछ दूसरों को बाँट देगी। साँझ हुई तो चारों बेटे अपनी-अपनी दुकानों से घर आए। पहले बेटे ने पूछा, "माँ, मैंने तेरे लिए डेढ़ दर्जन केले भेजे थे। तुझे मिले कि नहीं ?"

माँ बोली, "मिल गए, बेटा ! बड़े अच्छे केले थे। मैंने सब खा लिये।"

दूसरे बेटे ने पूछा, "माँ, मैंने तेरे लिए डेढ़ सेर दूध भेजा था। वह किसी ने तुझे दिया कि नहीं ?"

माँ बोली, "हाँ बेटा, मिल गया था। दूध मैंने सारा पी लिया।"

तीसरे बेटे ने कहा, "माँ, मैंने तेरे लिए जो पकौड़े भेजे थे, वह तो सम्भवतः किसी ने तुझे दिये ही नहीं होंगे ?"

माँ बोली, "नहीं बेटा, सब पकौड़े मुझे मिल गए थे। और मैं सब खा गई। बहुत करारे पकौड़े थे। उनमें अनारदाना भी पड़ा था। बहुत मजा आया उन्हें खाकर।"

चौथे बेटे ने आश्चर्य से कहा, "और माँ ! मैंने जो फलों का टोकरा भेजा था ?"

माँ बोली, "वह फल भी खा लिये मैंने। सब खा लिये। तीन-चार ही बाकी रहे हैं।"

और उसका सबसे बड़ा बेटा यह सुनते ही मकान की छत पर जाकर चिल्लाने लगा, "अरे ओ लोगो ! अरे ओ पड़ोसियो ! अपने-अपने बच्चों को सँभाल के रखो, हमारी माँ ने आज व्रत रखा है, वह सब खाए जाती है।"

(और सब लोग जोर से हँस उठे। पूज्य स्वामीजी भी हँसने

लगे। कितनी ही देर तक हँसी जारी रही।)

फिर स्वामीजी बोले—अब बताओ, यह क्या व्रत हुआ ? या तो इतना अधिक खाओ कि बीमार हो जाओ, या इतना कम खाओ कि डॉक्टर के पास जाना पडे। यह व्रत नही है। यह तप नही है। और तप किये बिना दुनिया मे कुछ भी होता नही।

तपो मूलं हि साधनम्

दुनिया में कुछ भी करना हो, तप ही उसका मूल साधन है। कोई देवी माँ नही बन सकती, जबतक आठ-नौ मास तप न करे, कष्ट और पीडा न भोगे। तप के बिना कुछ होता नही। तप से सब-कुछ होता है। ऋग्वेद कहता है

महद्‌यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तम्।

इस विश्वास मे एक महान् शक्ति है जिसे तप के बिना कोई जान नही सकता। तप के मार्ग पर चला तो उस महान् शक्ति के दर्शन होते है। वह सुख और आनन्द मिलता है जिसे ससार की कोई भी भाषा किसी भी तरह वर्णन नही कर सकती। और हम चाहते है कि तप के बिना इस महाशक्ति के दर्शन हो जाएं। कैसे होंगे यह दर्शन ? किसी सासारिक प्रेमी को प्राप्त करना हो तो उसके लिए भी तप करना पडता है। मजनूं की तरह मरु-भूमि की खाक छाननी पडती है। शकुन्तला की तरह बरसो तक दर-दर की ठोकरें खानी पडती हैं। सस्सी की तरह पुन्नूं की खोज मे तपती रेत पर यह चिन्ता किये बिना दौडना पडता है कि पाँवो मे कितने छाले पडे हैं और कितने फूट गए हैं। और हम चाहते हैं कि उस परम प्रीतम के, उस महाशक्ति के दर्शन तप के बिना ही हो जाएँ, जिससे अधिक सुन्दर, अधिक शक्तिशाली, अधिक आनन्दवाला इस दुनिया मे कुछ नही। कैसे होगी यह बात ? अरे भाई ! सपन देखो महल के और हाथ पर-हाथ धरकर बैठे रहो, कष्ट उठाकर एक झोपडे के लिए भी ईंटें जमा न करो, तो यह महल कैसे बनेगा ?

एक विचित्र युग आ गया है दुनिया में। मैं इसे बटन-युग

कहता हूँ। बटन दबाओ तो प्रकाश होता है। बटन दबाओ तो पंखा चलता है। बटन दबाओ तो गर्मी होती है। बटन दबाओ तो सर्दी। और फिर बटन दबाओ तो लिफ्ट ऊपर जाने लगता है, नीचे आने लगता है। ऐसा लगता है कि किसी दिन बटन दबाने से बच्चे भी पैदा होने लगेंगे।

किन्तु यह सब-कुछ भले ही बटन दबाने से हो, ईश्वर तो बटन दबाने से मिलेगा नहीं। ईश्वर को पाना हो तो तप के मार्ग पर चलने के सिवा कोई दूसरा मार्ग है नहीं। तप का अर्थ है सहन करना। जिन परिवारों में सहन करने का स्वभाव नहीं रहता वहाँ प्रतिदिन झगड़े होते हैं। आज पिता और पुत्र का झगड़ा है, कल भाई और भाई का। परसों पति और पत्नी का। प्रतिदिन, प्रतिक्षण एक आग सुलगती रहती है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता कि दूसरे उसकी बात को सहन करें। कोई भी दूसरे की बात को सहन करना नहीं चाहता। बात हुई नहीं कि आग भड़की नहीं।

[इस समय एक छोटी-सी बच्ची श्रोताओं के बीच से स्वामीजी के पास पहुँची। होगी कोई दो बरस की। घुँघराले बाल, हँसता हुआ चेहरा, स्वामीजी के सामने आकर खड़ी हो गई। जैसे उसी को स्वामीजी की कथा सुननी हो, दूसरों को नहीं। स्वामीजी हँसते हुए बोले, 'बैठ जा गुड्डो, यहीं बैठ जा।' किसी ने आवाज देकर पूछा, 'किसका बच्चा है यह?' स्वामीजी हँसते हुए बोले, 'मेरा ही बच्चा है। सब बच्चे मेरे ही तो हैं। पराया कौन है यहाँ?' और बच्ची को अपने पास बिठाकर वे कहते रहे—]

तप का अर्थ है कि दूसरे ने यदि कड़वी बात भी कही है तो उसे सहन करो। सहन करो उसे। अपनी वाणी से कड़वी बात न कहो। ऐसी बात न कहो कि दूसरा सुने और उसके मन में उबाल उठ खड़ा हो।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।

यह है वाणी का तप ! ऐसी बात बोलो, जिससे दूसरे के मन में उबाल न पैदा हो, जो सच हो, प्यारभरी हो और दूसरे का भला करनेवाली हो। दूसरे का भला करनेवाली और सच्ची बात भी इस प्रकार मत बोलो कि दूसरे का मन दुखे।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्,
न ब्रूयात् सत्यम् प्रियम्।

सच बोलो, मीठा बोलो, ऐसा सच न बोलो जिससे दूसरे के दिल में दुःख, क्रोध, कटुता आदि जाग उठे।

ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आप भी शीतल होय॥

यह है तप और इसकी शक्ति महान् है। महर्षि दयानन्द ठहरे हुए थे फर्रुखाबाद में, गंगा के किनारे एक कुटिया में। कई दूसरे लोग भी आस पास रहते थे। इनमें एक साधु था। वह प्रतिदिन प्रातःकाल महर्षि की कुटिया के आगे आकर उन्हें गालियाँ देता था। चिल्ला चिल्लाकर बकता—दयानन्द नास्तिक है ! ईसाई है ! हमारे धर्म का बेडा डुबोए देता है। और तब वह सभी गालियाँ देता जो उसकी जीभ पर आती ! वह प्रति दिन घंटा-आध-घंटा ऐसे ही करता था। महर्षि गालियाँ सुनते, मुस्कराते रहते। कोई उत्तर न देते। एक दिन महर्षि से एक भक्त ने कहा, "आप आज्ञा दें तो हम उस दुर्वचन बोलनेवाले को सीधा करें।" महर्षि बोले, "उसे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। वह स्वयं ही सीधा हो जाएगा।" कुछ दिन बाद किसी भक्त ने महर्षि के लिए फलों का एक बडा टोकरा भेजा। महर्षि ने टोकरे से अच्छे-अच्छे फल चुने, और दूसरे टोकरे में रखकर एक आदमी से कहा कि ये फल उस साधु को दे आओ जो प्रतिदिन मुझे गालियाँ देता है।"

उस आदमी ने साधु के पास जाकर कहा, "ये फल स्वामी दयानन्द ने आपके लिए भेजे हैं।"

साधु ने दयानन्द का नाम सुनते ही कई गालियाँ दीं। गर्जकर

बोला, "किस दुष्ट का नाम ले लिया सुबह-सुबह! पता नहीं आज रोटी भी मिलेगी या नहीं। चला जा यहाँ से! तुझे गलती लगी है। मैं तो प्रतिदिन उसे गालियाँ देता हूँ, मुझे वह फल क्यों भेजेगा? किसी दूसरे के लिए भेजे होंगे।"

वह आदमी फल लेकर वापस महर्षि के पास आया। उन्हें साधु की बात सुनाई। महर्षि हँसते हुए बोले, "नहीं, उसी के पास ले जाओ। उसे बोलो कि तुम्हारे लिए ही ये फल भेजे हैं। तुम प्रतिदिन इतना श्रम करते हो, फलों को खाओ, इनका रस निकालकर पियो ताकि तुम्हारी शक्ति बनी रहे।"

वह आदमी फिर उस साधु के पास गया। उसे महर्षि की बात सुनाई और वह साधु फलों को एक ओर रखकर दौड़ा महर्षि की कुटिया की ओर। दौड़ता हुआ वहाँ पहुँचा और महर्षि के चरणों पर गिर पड़ा; बोला, "मैं क्षमा माँगने आया हूँ। मैंने तो आपको मनुष्य समझा था किन्तु आप तो देवता हैं।"

यह है सहनशक्ति का फल! जिन परिवारों में सहनशक्ति है, वहाँ कभी दुःख और क्रोध की आग नहीं जलती, घृणा और शत्रुता का जन्म नहीं होता। जो लोग कष्टों से घबराते नहीं, सुख-दुःख और लाभ-हानि, दोनों को एक-सा समझकर अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ते चले जाते हैं, वे लक्ष्य को प्राप्त अवश्य करते हैं।

और फिर यह भी स्मरण रखिये कि तप के बिना यह शरीर भी ठीक नहीं रहता।

अतप्ततनु न तदामोऽश्नुते।

जिसने तप नहीं किया, इस शरीर को व्यायाम से, योग के आसनों से, सैर से, पर्वतों की ऊँचाई और मरुस्थलों की लम्बाई मापकर दृढ़ नहीं बनाया, जिसने पसीना नहीं बहाया, उसका शरीर बीमारियों का घर बन जाता है।

इस सम्बन्ध में हँसी की एक बात सुनाऊँ आपको। पुरानी बात है। केवल हँसी की बात। आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् थे पं० आर्यमुनि जी।

वह चाय बहुत पीते थे—कभी अदरक की चाय, कभी सोठ की, कभी तुलसी की, कभी साधारण चाय—गर्म-गर्म और जलती हुई। किसी ने उनसे पूछा, "पंडित जी! इतनी चाय क्यो पीते हैं आप?" वह बोले, "वेद की आज्ञा है कि शरीर को तपाओ। इसे तपाने के लिए यह चाय पीता हूँ।" किन्तु यह तो हँसी की बात है। इतनी चाय पीना ठीक नही। चाय से शरीर तपता नही, खराब होता है केवल।

शरीर का तप वह है जो भगवान् कृष्ण ने गीता मे बनाया—

मन का तप सहन करने की शक्ति है।

वाणी का तप मधुरता है।

और ज्ञान, श्रद्धा, तप ये तीन चीजे हो तो आदमी 'साधक' अर्थात् साधन करनेवाला, प्रय न करनेवाला बनता है। इस प्रयत्न के बाद ही उस प्रीतम प्यारे के दर्शन होते है।

किन्तु आज इतना प्रयत्न कोई करना नही चाहता। केवल यह इच्छा है प्रत्येक व्यक्ति की कि बस कोई बटन दबाए और दर्शन हो जायँ। ये लोग कहते हैं कि विज्ञान के इस युग मे भी आप इस पुरानी बात को चलाना चाहते हैं तो वह चलेगी नही। जेट हवाई जहाजो और रॉकेटो के इस युग मे आप बैलगाडियो का समर्थन करते हैं तो उसे कौन मानेगा?

ऐसे लोग आते है मेरे पास जो ईश्वर का दर्शन करना तो चाहते हैं किन्तु उसके साथ ही यह भी चाहते हैं कि कोई झटपट वाला उपाय उन्हे बता दिया जाय। किन्तु ऐसा कोई उपाय है नही मेरे भाई! मैं मानता हूँ कि विज्ञान ने उन्नति की है। मैं मानता हूँ कि आज ऐसी चीजें हमारे सामने है जिनका सौ-दो-सौ बरस पूर्व कोई स्वप्न भी नही देखता था। आज से तीन सौ बरस पहले के किसी आदमी को यदि बताया जाता कि ऐसी मोटरे भी बन सकती है जो अस्सी या नब्बे मील प्रति घटा की गति से चलें, ऐसे हवाई जहाज भी बन सकते हैं जो सौ डेढ सौ आदमियो को लेकर हजार मील प्रति घण्टा की गति से आकाश मे उडने लगे, ऐसे रॉकेट भी बन सकते है जो पन्द्रह या बीस हजार

मील प्रति घण्टा की गति से चन्द्रमा, मंगल, शुक्र, या अन्य तारों तक पहुँच जायँ, ऐसे टेलीफोन भी बन सकते हैं जिनसे दिल्ली में बैठा हुआ आदमी लन्दन और न्यूयॉर्कवालों से बात कर सके, ऐसे रेडियो भी बन सकते हैं जिनसे हजारों मील दूर की ध्वनियाँ सुनाई देने लगें, ऐसे टेलीविजन भी बन सकते हैं जिनसे सैंकड़ों मील दूर की घटनाएँ आपकी आँखों के सामने होती हुई दिखाई दें तो सुननेवाला कहता कि कहनेवाला पागल हो गया है। यह ही क्यों? आज से तीन-चार सौ बरस पहले बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं को जो प्रकाश उपलब्ध नहीं था, वह आज साधारण लोगों के घरों में शादी के दिन बिजली के हजारों रूप धारण करके जगमगा उठता है। आज से दो या तीन सौ बरस पहले पंजाब का कोई आदमी हरिद्वार जाता था तो उसके सम्बन्धी इस तरह रोते थे जैसे वह मौत के मुँह में जा रहा हो। लोग उस समय बैलगाड़ियों, घोड़ागाड़ियों और ऊँटों पर यात्रा करते थे, या फिर पैदल ही चलते थे। यात्रा पर जानेवालों के सम्बन्धियों को बहुत आशा नहीं होती थी कि यात्रा करनेवाला उनका प्रिय वापस भी आएगा या नहीं। इसलिए वे रोते थे। आज दिल्ली से कलकत्ता जाना हो तो रेलगाड़ी में अठारह घण्टे लगते हैं। दिल्ली से लन्दन जाना हो तो हवाई जहाज में आठ घण्टे लगते हैं। मुगल लोग ठंडे इलाकों से भारत में आते थे। मुगल बादशाहों को गर्मी के दिनों में दिल्ली और आगरा में गर्मी बहुत सताती थी। ठंडे पानी की इच्छा होती थी उन्हें। पानी को ठंडा करने के लिए वे कश्मीर और अफगानिस्तान के पहाड़ों से बर्फ मँगाते थे। ऊँटों के बड़े-बड़े काफिले बर्फ लेकर चल पड़ते थे। चलते-चलते एक मन बर्फ सम्भवतः एक सेर रह जाती थी। उस बर्फ से मुगल बादशाहों का पानी ठंडा होता था। उसे 'बर्फाब' कहते थे। किन्तु प्रतिदिन तो यह बर्फ मिलती नहीं थी। कई बार पूरी-की-पूरी बर्फ रास्ते में गल जाती थी और इतने बड़े साम्राज्य के बादशाह, अर्बों और खर्बों रुपयों के मालिक ठंडे पानी को तरसकर रह जाते थे। दूसरे अमीर और साधारण कोटि के लोग तो

उसका सपना भी नही देख सकते थे। किन्तु आज आपके घर की सफाई करनेवाला जमादार भी बर्फ से ठडा किया हुआ पानी पीता है। यह सब-कुछ विज्ञान की उन्नति से हुआ। यह ठीक है इस उन्नति से मनुष्य को शारीरिक सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं केवल, मानसिक और आत्मिक सुख नही मिला, चैन नही मिला, शान्ति नही मिली। किन्तु विज्ञान की उन्नति से तो कोई इन्कार नही करता।

इस उन्नति को ध्यान मे रखकर कई सज्जन मेरे पास आते हैं और कहते है, "स्वामीजी, जल्दी का कोई उपाय बताइये। जैसे बिजली का बटन दबाते ही बत्ती जल जाती है, ऐसा कोई उपाय।" किन्तु ऐसे जल्दी मचानेवाले लोग कोई आज ही तो पैदा नही हुए। विज्ञान के इस युग से पहले भी थे। उनके सन्तोष के लिए, क्रियात्मक रूप मे उन्हे धाखा देने के लिए दुकानदार किस्म के लोगो ने कहा, "अमुक नदी मे नहा लो तो मुक्ति मिल जायगी। अमुक तीर्थ पर हो आओ तो जन्म-जन्म के पाप कट जायँगे। अमुक मन्दिर मे एक बार पूजा कर आओ तो दुनिया के सारे सुख मिल जायँगे। अमुक दिन व्रत रखकर रातभर जागते रहो तो भगवान् के दर्शन हो जायँगे।"

ऐसी ही बात मैंने पिछली बार अपनी यूरोप-यात्रा मे देखी। एक अग्रेज सज्जन और उनकी धर्मपत्नी दोनो मेरे पास आए, बोले, "हम लोग साधन करते हैं, ध्यान लगाते हैं किन्तु दिन-प्रतिदिन हमारी नीद समाप्त होती जाती है। कोई उपाय बताइये जिससे नीद आ जाय।"

मैंने पूछा, "आप ध्यान कैसे लगाते हैं ?"

पति ने बताया, "भारत से एक योगी गुरु आए थे। जैसे उन्होने बताया है, वैसे ही ध्यान लगाते हैं।"

मैंने पूछा, "क्या बताया है उन्होने ?"

पति ने कहा, "कुछ गोलियाँ दी थी उन्होंने, ध्यान के लिए बैठने से कुछ पहले हम उन्हें खा लेते हैं, फिर ध्यान करने बैठ जाते हैं। पहले एक गोली खाने से ध्यान लग जाता था, अब दो-दो, तीन-तीन गोलियाँ खानी पडती हैं। किन्तु नीद दूर भाग जाती है।"

मेरे कहने पर वे गोलियाँ उन्होंने दिखाई। मैंने उन्हें सूंघा तो यह जानकर हैरान रह गया कि वे भाँग, चरस और धतूरे की गोलियाँ थीं। उनके नशे से जो खुमार चढ़ता था, उसे वे ध्यान लगना समझते थे। धीरे-धीरे यह भाँग और धतूरा शरीर में रच गया था, इसीलिए उत्तरोत्तर अधिक मात्रा की आवश्यकता उन्हें अनुभव होने लगी थी। इससे जिगर की क्रिया नष्ट हुई जाती थी। पूरी मात्रा में खून बनता नहीं था। यही कारण था कि उनकी नींद कम हुई जाती थी।

मैंने उन्हें कहा, "ये गोलियाँ यदि आप खाते रहे तो नींद ही नहीं तुम्हारा जीवन भी समाप्त हो जाएगा। यह तो विष है। इससे तुम्हारा ध्यान नहीं लगता, चेतना अपितु लुप्त-सी हो जाती है।"

इसके बाद उन्हें क्या बताया, यह दूसरी बात है किन्तु यह सच है कि झटपट ईश्वर-दर्शन, मुक्ति और आनन्द की इच्छा मनुष्य में सदा रही है। ऐसे लोग भी रहे हैं जो मनुष्य की इस दुर्बलता से लाभ उठाने और उसे पथभ्रष्ट करने का यत्न करते रहे हैं। किन्तु जैसाकि मैंने आपसे कहा, यह सरल उपाय, यह बटन दबाने के झटपट के उपाय आध्यात्मिकता के कार्य में चलते नहीं; यह तो ज्ञान, श्रद्धा और तप का मार्ग है। सोने को बार-बार आग में तपाए बिना यदि तुम चाहो कि उसका मैल दूर हो जाय और वह कुन्दन बन जाय तो ऐसा कभी होगा नहीं।

एक सज्जन मेरे पास आए। वह डॉक्टर हैं; बोले, "मैं दो सप्ताह की छुट्टी ले रहा हूँ। कोई ऐसा उपाय बताइये कि इन दो सप्ताहों में आत्म-दर्शन हो जायें। प्रभु के दर्शन हो जायें। उसके बाद मैं काम में व्यस्त हो जाऊँगा और अवकाश नहीं मिलेगा।"

मैंने कहा, "डॉक्टरजी, डॉक्टरी की उपाधि प्राप्त करने के लिए आपने चार या पाँच वर्ष लगाए। उससे पहले बारह या चौदह वर्ष आप इसलिए पढ़ते रहे कि डॉक्टरी की शिक्षा को समझ सकें। लगभग सोलह या अठारह वर्ष आपने डॉक्टर बनने में व्यय किये। उसके बाद कई वर्षों से चिकित्सा कर रहे है। कई ऑपरेशन आपने किये हैं। कई

मुर्दों की चीर-फाड भी की है, हजारों लोगों की चिकित्सा भी की है, क्या आप पूरे विश्वास के साथ कह सकते हैं कि मानव-शरीर के सम्बन्ध मे आप सब-कुछ जानते है ?"

वह बोले, "सब-कुछ जानने का दावा कौन कर सकता है ? बहुत-कुछ जानने के बाद भी ऐसा बहुत-कुछ बच जाता है जिसे हम नहीं जानते ।"

मैंने कहा, 'इतने वर्षों के बाद आपका शरीर-दर्शन यह है । और इस शरीर से करोडो गुणा अधिक सूक्ष्म और अर्बों ब्रह्माण्डो को चलानेवाला जो ईश्वर है, उसे आप दा सप्ताहो मे हो देख लेना चाहते हैं तो यह बात होगी कैसे ?"

एक और सज्जन आए। वह इंजिनीयर हैं। इंजिनीयरिंग का ज्ञान प्राप्त करने मे तो चालीस वर्ष लगा दिये, आत्मा और ईश्वर का दर्शन पाँच दिनो में करना चाहते थे। एक महीने मे इतना ही अवकाश था उनके पास। एक और सज्जन आए। बहुत बडे वकील हैं। उन्होने कानून का ज्ञान प्राप्त किया कितने ही वर्षों मे। भगवान् का दर्शन करना चाहते थे एक मास मे। इतना ही अवकाश था उनके पास। एक और सज्जन आए। वह उच्च सरकारी पद पर हैं। बोले, 'बिजली का बटन दबाने से प्रकाश होता है तो मन का बटन दबाने से भगवान् के दर्शन क्यों नहो हो सकते ?"

मैंने उन्हे कहा, "हो सकते हैं मेरे भाई ! किन्तु आपको पता है कि बिजली का बटन दबाने से प्रकाश क्यों होता है ? आज से सौ वर्ष पहले एक बार नहीं सौ बार भी आप बटन को दबाते तो प्रकाश न होता। १८५२ ई० में अमेरिका के बेंजामिन फ्रेंकलिन ने एक पतंग उडाकर सिद्ध किया कि बादलों मे जो चीज चमकती और गर्जती है वह बिजली है। जून का महीना था। घनघोर घटाएँ उमड़ रही थीं। बादलो मे गर्ज के साथ बार-बार बिजली चमक उठती थी। बार-बार कान फाड़नेवाली ध्वनि सुनाई देती थी। बेंजामिन ने एक बहुत बडी पतग उड़ाई, उसके साथ ताबे की एक पतली तार बाँध दी। तार के ऊपर

रेशमी कपड़ा लपेट दिया। तार का एक सिरा पतंग के साथ जुड़ा था और दूसरा धरती पर था। उसके साथ लोहे की एक चाबी लगी थी। पतंग बादलों में पहुँची तो जिस समय बादलों में प्रकाश की रेखा चमक उठी, उस समय तार के निचले सिरे पर लगी चाबी में चिंगारी भड़क उठी। बेंजामिन ने घोषणा की कि बादलों में जो चीज चमकती है, वही धरती पर की बिजली भी है। इसके बाद धरती की इस बिजली को विभिन्न वस्तुओं की रगड़ से उत्पन्न करने के परीक्षण प्रारम्भ हुए। इससे पूर्व भी परीक्षण हो रहे थे, पर अब ज्यादा तेजी से शुरू हुए। कई वर्षों के अथक प्रयत्न और परिश्रम के बाद वैज्ञानिक न केवल इस कार्य में सफल हुए कि बिजली उत्पन्न करें अपितु इसमें भी कि तारों के द्वारा उसे एक जगह से दूसरी जगह मीलों दूर पहुँचा दें। कितने ही परीक्षणों के बाद इस बात में भी सफल हुए कि बिजली की शक्ति से प्रकाश पैदा कर दें। अब यह बिजली हजारों कामों में प्रयुक्त होती है। किन्तु कैसे होती है? पहले एक बहुत बड़ा पॉवरहाउस बनाया जाता है। पानी की शक्ति या तेल-इंजन की शक्ति से वहाँ बड़े-बड़े चक्कों को चलाया जाता है, जिनसे बिजली पैदा होती है। तब इस बिजली को हजारों खम्भे लगाकर तारों के द्वारा उस शहर में लाया जाता है जहाँ उसे लाना अभीष्ट हो। शहर में उसके लिए एक और ट्रांसमीटर-स्टेशन बनाया जाता है। वहाँ से बिजली की शक्ति आपके मुहल्ले या क्षेत्र में लगे खम्भे तक पहुँचती है। इस खम्भे से जुड़े तार के द्वारा आपके घर में पहुँचती है। यदि बड़े पॉवरहाउस से आनेवाली तारें ठीक हैं, यदि शहर के ट्रांसमीटर से आनेवाली तारें ठीक हैं और यदि आपके घर की तारें ठीक हैं, और यदि आपका बल्ब खराब नहीं हो गया है, टूट नहीं गया है तो आपके बटन दबाने से प्रकाश अवश्य होगा। किन्तु यदि इनमें से एक भी चीज खराब है तो आप हजार बटन दबाते रहिये, प्रकाश नहीं होगा। किंतु यदि बटन दबाने से प्रकाश होता है तो इसके पीछे हजारों लोगों का तप काम करता है। लगभग एक सौ वर्ष का परिश्रम काम करता है। एक विस्तृत प्रबन्ध-व्यवस्था काम

करती है। तब होता है बटन दबाने से प्रकाश। आप तप करना नहीं चाहते, परिश्रम का नाम नही लेते, व्यवस्था आपके पास है नही, और चाहते हैं कि बटन दबाने से प्रभुदर्शन-रूपी प्रकाश चमक उठे। यह बात कैसे सभव है? इतना बड़ा सुख चाहते हैं, इतना बड़ा आनन्द—उस महाशक्ति का दर्शन करना चाहते हैं जिससे बड़ी दुनिया मे कोई शक्ति नही और चाहते है कि यह सब-कुछ तप के बिना हो जाए तो ऐसा होगा नही। वेद कहता है—

महद्‌यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तम्।

वह महाशक्ति इस दुनिया मे है; उससे बड़ी कोई शक्ति नही। किन्तु वह केवल तप से जानी जाता है।

यह है तप की महिमा! लग गया था न तीर बालक मूलशंकर को। शिवरात्रि की आधी रात, टंकारा के अन्दर, चल पड़े घर छोड़कर, प्यार छोड़कर, परिवार छोड़कर। पहुँचे नर्वदा नदी के किनारे। कितने ही योगी रहते थे वहाँ। एक-एक के पास गए; बोले, 'प्रभु के दर्शन करा दो। किसी भी तरह मुझे सच्चे प्रभु के दर्शन करा दो।' योगियों ने कहा, 'इस तरह नही होते दर्शन। इसके लिए तप करना होगा।'

मूलशंकर ने कहा, 'करूँगा।' योगी बोले, 'ब्रह्मचारी बनना होगा।' मूलशकर ने कहा, 'बनूंगा।' योगियो ने कहा, 'यह रेशमी कपड़े उतारने होगे।' मूलशकर बोला, 'उतार दूँगा।' उन्होने कहा, 'ये सोने की अगूठियाँ, ये बालियाँ उतार देनी होगी।' मूलशकर सबको उतारकर बोले, 'छोड़ दिया इनको।'

और बन गए मूलशकर के बजाय 'शुद्ध चेतन' ब्रह्मचारी।

समय बीता, प्रभुदर्शन नही हुए तो शुद्ध चेतन ने योगियों से शिकायत की। वे बोले, 'इस तरह नही होंगे प्रभुदर्शन तुझे ये कपड़े भी उतार देने होगे। केवल एक कोपीन धारण करना होगा। संन्यासी बनना होगा। हिमालय के जगलों मे जाकर तप करना होगा।'

शुद्ध चेतन ने कहा, 'मुझे यह सब स्वीकार है।'

उतार दिये कपड़े, मुँडवा दिये बाल, संन्यासी हो गए। 'शुद्ध चेतन'

से दयानन्द बन गए और चल पड़े हिमालय की ओर। उत्तराखण्ड के उन पर्वतों पर पहुँचे जहाँ चोटियाँ आकाश से बातें करती हैं; जहाँ सदियों पुरानी वर्फ के मीलों लम्बे, मीलों चौड़े तोदों से निर्मल नीले नीर की नदियाँ बहती हैं; जहाँ घने जंगलों में शेर घूमते हैं, साँप रींगते हैं, हाथी चिंघाड़ते हैं, और जहाँ वह अलकनन्दा बहती है जिसमें वर्फ के टुकड़े तलवारों की तरह काटते हैं; एक बार कोई इस नदी में घुस जाय तो लहूलुहान हो जाता है। इस नदी के किनारे एक गुफा में वह रहने लगे—नंग-धड़ंग, केवल भोज-पत्र का एक कोपीन पहने। खाना नहीं, कपड़ा नहीं। शेर गर्जते हैं, हाथी चिंघाड़ते हैं, सर्दी पड़ती है तो इसके सिवा कोई चारा नहीं कि इस गुफा में बैठ जाओ जिसका कोई दरवाजा नहीं। नदी में उतरो तो टाँगें लहूलुहान हो जाती हैं। और दयानन्द यहाँ प्रभु की याद में मस्त हैं।

अब दिल्ली में बैठकर कोई इस कष्ट और तप को कैसे अनुभव करेगा?

मैं गया कैलाश की यात्रा के लिए। नौ बंगाली साधु भी मेरे साथ थे। कीचखम्बा हमारा पथ-प्रदर्शक था। तिब्बत में पहुँचे तो कितनी ही तेज नदियाँ मिलीं। कुछ नदियों पर पुल थे। कुछ में पानी कम था। किन्तु एक नदी जो मिली, उसमें पानी ऐसे दौड़ रहा था, जैसे हजारों घोड़े दौड़े जाते हों। पानी में वर्फ के छोटे-छोटे तेज धारवाले टुकड़े दौड़े जाते थे। इस नदी पर पुल नहीं था। मैंने पूछा, "कीचखम्बा, इसको कैसे पार करना होगा?"

वह बोला, "पानी में उतरकर पैदल ही पार करना होगा। और कोई उपाय नहीं है।"

मैंने कहा, "किन्तु इसका बहाव तो बहुत तेज है। वर्फ के लाखों नुकीले टुकड़े बहे जा रहे हैं इसमें।"

वह बोला, "तो फिर नदी के किनारे बैठो। हम कैलाश से आए तो तुमको वापसी पर साथ ले चलेंगे।"

मैंने कहा, "किन्तु मैं तो कैलाश को देखने आया हूँ।"

वह बोला, "तो फिर उतरो पानी में। टाँगे लहूलुहान होती हैं तो होने दो। दूसरा कोई उपाय है नही।"

तब करना क्या था! उतरे उस नदी में। पानी तो घुटने से एक फीट ही ऊपर था किन्तु वर्फ के वे तेज नुकीले टुकडे इस तरह पाँवों और टाँगों को काट रहे थे जैसे सैकडो छुरियाँ चल रही हों। उस समय मैंने समझा कि अलकनन्दा मे महर्षि दयानन्द की क्या दशा होती थी।

कितना घोर तप किया उस महापुरुष ने! किन्तु इस तप के बिना तो कुछ मिलता नही।

तलाशे यार में जो ठोकरें खाया नहीं करते।
कभी वो मंजिले मकसूद को पाया नहीं करते॥

ठोकरें खानी पडती हैं भाई! टक्करे मारनी पड़ती हैं। तप की भट्टी मे तपना पडता है। तब जाकर मिलता है वह प्रीतम प्यारा। तब लक्ष्य मिलता है। तब आनन्द मिलता है जिससे बडा कोई आनन्द नही।

तीन बातें बताई मैंने आपको :

१. ज्ञानवान् बनो;
२. श्रद्धावान् बनो;
३. तपस्वी बनो।

चौथी बात है, विचारवान् बनो। ये चारो बाहर की बाते है। अन्दर की बातें फिर बताऊँगा। ध्यान कैसे करना है? मन को वश में कैसे करना है? समाधि कैसे लगानी है? इनका वर्णन बाद मे करूँगा। अभी इस चौथी बात—विचार की बात सुनिये!

अभी एक सज्जन उस बूढी देवी की बात सुना रहे थे न, जो रुई के एक बड़े ढेर को देखकर घबरा गई कि इस सारी रुई की पूनियाँ मुझे बनानी होंगी। ऐसी ही एक सच्ची बात पजाब में भी हुई। चनाव के किनारे एक गाँव था। उसमें एक नवयुवती लडकी रहती थी सुमित्रा। उसकी सगाई हुई चनाव के पार एक गाँव मे, एक सेठ

के बेटे से। शादी में कुछ मास अभी शेष थे कि सुमित्रा के गाँव से एक ऊँटों का काफिला निकला जिसपर रुई के कितने ही बोरे लदे हुए थे। सुमित्रा ने इन ऊँटों को देखा तो अपनी एक सहेली से पूछा, "इतनी रुई कहाँ जा रही है?" सहेली ने मजाक करते हुए कहा, "अरी, यह तो तेरे ससुर ने मँगाई है। तेरी शादी होगी तो यह सब रुई तुझे कातनी पड़ेगी।"

सुमित्रा ने यह बात सुनी तो एकदम उसका चेहरा उतर गया। रंग पीला पड़ गया। केवल इतना कहा उसने, "इतनी रुई कैसे कातूंगी मैं?" और उसे ज्वर हो गया। ज्वर की चिकित्सा हुई किन्तु वह उतरा नहीं। सुमित्रा की भूख जाती रही। शरीर निर्बल हो गया। जब किसी भी दवाई ने प्रभाव नहीं दिखाया तो घरवाले घबरा गए। अन्त में किसी ने कहा, 'अमुक गाँव में अमुक नाम का वैद्य रहता है। उसको दिखाइये। ठीक हो जायेगी।'

शादी का दिन समीप आ रहा था, केवल एक मास शेष था। और सुमित्रा हड्डियों का कंकाल बनी जाती थी। निश्चय हुआ कि उस वैद्य को बुलाया जाए। वैद्यजी आए। सुमित्रा को अच्छी तरह देखने के बाद बोले, "पहले यह बताओ कि यह बीमार कैसे हुई और कब हुई?"

सुमित्रा की सहेली ने वैद्यजी को उस दिन वाली बात बताई जब रुई-लदे ऊँटों का काफिला गाँव से निकला था। सभी कहानी सुनाकर उसने कहा, "इधर मैंने यह बात कही, उधर सुमित्रा ने कहा, 'इतनी रुई कैसे कातूंगी?' तभी इसका रंग उड़ गया। इसे ज्वर हो गया।"

वैद्यजी ने सोचते हुए कहा, "समझ गया मैं।" और सुमित्रा की सहेली को एक ओर ले-जाकर बोले, "तुम्हारी सहेली का ज्वर कल ही उतर जाएगा किन्तु उसके लिए तुम्हें एक काम करना होगा।"

सहेली ने पूछा, "कौन-सा काम?"

वैद्यजी बोले, "कल शाम को मैं नदी के पार उस सामनेवाले गाँव में बहुत-सा कूड़ा-कर्कट इकट्ठा कर उसमें आग लगा दूंगा। तू शाम के समय सुमित्रा को छत पर ले जाना। नदी के पार आग भड़क

उठे तो वह आग उसे दिखाना और कहना कि उस रुई को आग लग गई है जो तेरे ससुर ने तेरे कातने के लिए मँगवाई थी। इसी से वह ठीक हो जाएगी।"

दूसरे दिन वैद्यजी ने सचमुच नदी के पारवाले गाँव में कूडे-कर्कट का ढेर इकट्ठा करके शाम को उसमें आग लगा दी। सुमित्रा सहेली के साथ अपने मकान की छत पर खडी थी। सहेली ने आग दिखाते हुए कहा, 'सुमित्रा, वह देख कितनी बडी आग!" सुमित्रा ने उस ओर देखा। आश्चर्य से बोली, "इतनी ऊँची लपटें! क्या जल रहा है?"

सहेली ने कहा, "यह आग उस रुई को लगी जो तेरे ससुर ने मँगाई थी। सारी रुई जलकर राख हो गई।"

सुमित्रा ने एक लम्बा साँस लेकर कहा, "सारी रुई जल गई? कुछ भी नही बची?"

सहेली ने कहा, "अब क्या बचेगी! रुई में आग लग जाए तो बाकी क्या रहता है!"

और सुमित्रा का ज्वर एकदम उतर गया। चेहरे की रंगत भी लौट आई।

यह है विचार की शक्ति! एक विचार ने सुमित्रा को इस तरह बीमार कर दिया कि कोई और किसी भी दवाई से रोग ठीक नही हुआ। दूसरे विचार ने इसे उस तरह अच्छा अच्छा कर दिया कि दवाई की आवश्यकता नही रही।

विचारशक्ति बडी प्रबल है। जिस राष्ट्र को ऊपर उठना है, उसकी विचार-धारा ऊँची हो जाती है, शुद्ध हो जाती है, पवित्र हो जाती है। उसके अन्दर सद्‌विचार उत्पन्न होते हैं। उनका प्रचार होता है। जिस राष्ट्र को नीचे गिरना हो, वहाँ नीच विचारधारा जाग उठती है। इसलिये वेद ने बार-बार कहा

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

हे भगवान्! मेरे मन को शिवसंकल्पवाला, अच्छे विचारो वाला

बना।

किन्तु विचारों को पवित्र बनाने के साधन कम हैं, बिगाड़ने और बुराई की ओर ले-जाने के साधन अधिक। इनमें सबसे बड़ा साधन तो सिनेमा है। यह अच्छी बात है कि पंजाबी बाग में कोई सिनेमा नहीं। क्यों भाई, नहीं है न?

[किसी ने कहा—'दूसरी ओर नाले के पार है।' स्वामीजी ने कहा, 'वहाँ तो कोई जाता नहीं होगा।' एक और भाई ने कहा—'बहुत जाते हैं जी!' स्वामीजी ने हँसते हुए कहा,—'जाते हैं तो उनकी इच्छा, किन्तु आप सुनो!' और वह कहते रहे—]

मैं एक दिन रेलगाड़ी में जा रहा था। मेरे पास एक सज्जन बैठे थे। उनके पास एक मैगजीन था। उसमें मैंने पढ़ा कि इस देश में साढ़े सात हज़ार सिनेमाघर हैं। प्रतिवर्ष ७७ करोड़ व्यक्ति सिनेमा देखते हैं। लगभग प्रत्येक सिनेमाघर में प्रतिदिन तीन या चार बार फ़िल्में दिखाई जाती है। अब बताइये, अच्छे विचार कैसे फैलेंगे? आर्यसमाज का सत्संग तो होता है सप्ताह में एक बार। उसमें भी लोगों को बुलाना पड़ता है। सिनेमा के शो होते हैं दिन में चार-चार और वहाँ टिकट लेनेवालों की पंक्तियाँ लगी रहती हैं। उधर यह सिनेमा, इधर यह गन्दे उपन्यास। गन्दी पुस्तकें पढ़कर बच्चे बिगड़ें नहीं तो क्या करें! आदमी बनता और बिगड़ता है संगत से। माँ भी सिनेमा देखती हैं, पिता भी देखता है, फिर बच्चे को आप कैसे रोक सकते हैं कि वह न देखे? परिणाम यह है कि अब घर-घर में बच्चे गाते फिरते हैं।

उस सामने वाली खिड़की में इक चाँद का टुकड़ा रहता है।
या फिर

तेरे मन की गङ्गा, मेरे मन की जमना का
बोल राधा बोल, संगम होगा कि नहीं॥

मैं सिनेमा के विरुद्ध नहीं। सिनेमा है, रेडियो है, टेलीविज़न है, ये सब प्रचार के बहुत ऊँचे, बहुत सफल साधन हैं। किन्तु प्रचार ठीक

वात का हो तब न ? कोई अच्छी फिलम आए—चरित्र को ऊपर उठानेवाली, समाज की समस्याओं को आपके सामने रखनेवाली, उनका समाधान बतानेवाली तो उसे अवश्य देखिये। किन्तु ऐसी फिल्म है कितनी ? साधारणतया फिल्में बनती है इसलिए कि लोगो का मनोरंजन हो और मनोरंजन होता है, सामनेवाली खिड़की मे चांद के टुकड़े से। बताओ, इसका प्रभाव क्या होगा ? एक पूरी जाति के विचार यदि बिगाड़ दिये जायँ तो उसका परिणाम क्या होगा ?

एक पादरी की कहानी मैं सुनाया करता हूँ। आप भी सुनिये ! यह पादरी अमेरिका के एक गाँव मे रहता था। नकली दाँत लगवा रखे थे उसने। एक रात दाँत निकालकर मेज पर रखकर जो सोए तो भूल गए कि दाँत निकाले या नही। सो गए। प्रात हुई। उठे तो पेट म थोड़ा-सा दर्द था। उन्होने सोचा, डॉक्टर के पास चलता हूँ। उससे कोई दवाई लूंगा। दर्द ठीक हो जाएगा। डॉक्टर के पास जाने के लिए दाँत लगाने लगे तो देखा कि मेज पर दाँत नही हैं। दिमाग पर जोर दिया कि रात को दाँत निकाले भी थे या नही। कुछ याद नही आया और दांत भी नही मिले तो इस परिणाम पर पहुँचे कि दाँत मुँह मे ही लगे रह गए, रात को पता नही कि कब पेट के भीतर चले गए। अब आँतो को काटे जाते हैं। इसी से दद होता हैं। बस, यह सोचना था कि दर्द एकाएक बहुत बढ गया। पत्नी ने उनकी दशा देखी तो घबराकर पूछा, "क्या हुआ ?"

पादरी बोला, "अरे पूछती हो क्या हुआ ? मैं तो मरनेवाला हूँ। रात को सोते समय दाँत मुँह से सरककर पेट म चले गए हैं। मेरी आँतो को काटे डालते हैं। मैं तो अब कुछ ही देर का मेहमान हूँ।"

पत्नी ने घबराकर गाँव के डॉक्टर को बुलाया। डॉक्टर आया। पादरी को देखा। सारी कहानी सुनी। दु ख के साथ बोले, "यह मेरे बस म। रोग नही। कोइ साधारण चीज होती तो मैं मैगनीशिया देकर निकाल देता किन्तु ये तो बत्तीस दाँत हैं। यह तो ऑपरेशन-केस है। पादरी जी को बड़े अस्पताल मे भेजिये। वही यह ऑपरेशन होगा।"

अब पादरी और निढाल हो गया। दर्द और बढ़ गया।

गाँव के लोग उन्हें किसी तरह साथवाले नगर के अस्पताल में ले गए। अस्पताल के डॉक्टर पादरी को जानते थे। बोले, "क्या हुआ पादरी जी ?"

पादरी ने अपनी कहानी सुनाई; कहा, "दाँत पेट के अन्दर चले गए हैं। आँतों को काट रहे हैं।"

डॉक्टर बोला, "आप क्या बच्चों-जैसी बातें करते हैं! बत्तीस दाँतों का सैट गले में उतरा कैसे ? आखिर आपका गला मनुष्य का गला है। मगरमच्छ का गला तो यह है नहीं।"

पादरी ने कहा, "मुझे दर्द हो रहा है, तुम मज़ाक करते हो। सच कहते हैं—जिस तन लागे सो तन जाने, को जाने पीर पराई !"

डॉक्टर ने देखा कि इस तरह यह महाशय मानेंगे नहीं। बोले, "अच्छा भाई, ले चलो इन्हें ऑपरेशन-थियेटर में। इनका ऑपरेशन ही करो। औज़ार तैयार करो। क्लोरोफार्म सुँघाने की व्यवस्था करो।"

यह सब होने लगा। पादरी को ऑपरेशन की मेज पर लिटाया गया। क्लोरोफार्म अभी दिया नहीं गया था कि दरवाजे पर किसी ने बाहर से दस्तक की। डॉक्टर ने दरवाजे को थोड़ा-सा खोलकर पूछा, "क्या बात है ?"

बाहर खड़े एक आदमी ने एक तार उसके हाथ में देते हुए कहा, "आपके लिए एक तार है।"

डॉक्टर ने तार को पढ़ा, मुस्कराया और तार को पादरी के हाथों में दे दिया। पादरी ने भी तार को पढ़ा। उसकी पत्नी का तार था। उसने लिखा था, 'आपके दाँत बिल्ली ले गई थी। चौथे कमरे से मिल गए हैं।'

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "दाँत चौथे कमरे में थे और आप उनके लिए पेट फड़वाने की तैयारी कर रहे थे।"

पादरी उठकर बैठ गया; बोला, "वैसे भी डॉक्टर, जब से मैं इस ऑपरेशन की मेज पर लेटा हूँ, तभी से मेरा दर्द कम हो गया है।

और अब तो सम्भवतः है ही नहीं।"

इस तरह विचार का प्रभाव होता है।

अमेरिका की ही एक और बात भी सुनिये! न्यूयॉर्क मे मनोविज्ञान के कुछ विद्यार्थियो ने सिद्धान्त निश्चित किया कि विचार से आदमी मर भी सकता है। उसके लिए फाँसी को रस्सी, बिजली की कुर्सी, तलवार, गोली या विष की आवश्यकता नहीं। केवल विचार स उसकी मृत्यु हो सकती है। इन सिद्धान्त का क्रियात्मक परीक्षण करने के लिए वे जेल के बडे अधिकारी के पास पहुँचे; बोले, "आपके पास कोई ऐसा कैदी है जिसे मृत्युदण्ड मिला हो और जिसकी सभी अपीले अस्वीकार कर दी गई हो और आप उसे मृत्यु-दण्ड देनेवाले हों?"

अधिकारी ने कहा, "ऐसा एक आदमी है तो सही। उसे आज ही हम बिजली की कुर्सी पर बिठानेवाले हैं।" विद्यार्थियों ने कहा, "उस आदमी को आप हमे सौप दीजिये। हम जेल के भीतर ही आपके सामने एक परीक्षण करना चाहते हैं। हमारा विचार है कि उस आदमी को केवल विचार के प्रभाव से मारा जा सकता है। यदि हमारा परीक्षण सफल न हुआ तो आप उसे अपने तरीके से मारिये।" अधिकारी बोला, "ठीक है। आप परीक्षण कर सकते है। किन्तु विचार-मात्र से कोई आदमी मर कैसे सकता है?" विद्यार्थियो ने कहा, "आप देखते रहिये।"

और उस कैदी को एक कुर्सी पर बिठा दिया गया। एक विद्यार्थी ने उसे एक तेज छुरी दिखाते हुए कहा, "देखो, तुम्हे मृत्यु दण्ड मिल चुका है। तुम्हारा मरना आवश्यक है। किन्तु हमने एक ऐसा उपाय खोज निकाला है, जिससे तुम्हे रत्तीभर भी कष्ट न हो और तुम मर जाओ। इस छुरी से हम तुम्हारे पाँव की नस काट देंगे। उससे तुम्हारे शरीर का गर्म-सा रक्त बाहर निकलना आरम्भ होगा। जब सारा खून निकल जाएगा तो तुम बिना किसी कष्ट के मर जाओगे। केवल इस छुरी से नस काटने पर थोडा-सा कष्ट होगा। इसके बाद तुम्हे पाँव से निकलते खून की अनुभूति तो होगी परन्तु अन्य कोई कष्ट नहीं। किन्तु हम नहीं

चाहते कि तुम पाँव की नस काटने का दृश्य देखो, इसलिए हम तुम्हारी आँखों पर पट्टी बाँध देंगे और तुम्हें इस कुर्सी के साथ जकड़ देंगे जिससे तुम हिल न सको।"

कैदी बेचारा क्या कहता! उसे तो मरना ही है। कष्ट के बिना मर जाए तो अच्छा है।

विद्यार्थियों ने उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी। फिर कुर्सी के साथ बाँध दिया और तब एक बर्तन में कोसा पानी एक ऊँची जगह रखकर बर्तन के साथ रबड़ की नली लगा दी। छुरी से उन्होंने पाँव की नस को नहीं काटा। केवल यह कहा कि 'अब हम नस काटने लगे हैं' और छुरी को हलका-सा छुआकर परे रख दिया। कोसे पानी की नाली का मुँह पाँव के साथ लगा दिया। उससे गिरनेवाला पानी पाँव को छूकर बहता रहा। उन्होंने कैदी को बताया कि खून निकलना आरंभ हो गया। जेल के अधिकारी को सम्बोधित करते हुए कहा, 'देखिये, जब यह खून बहना समाप्त हो जाएगा तभी इसकी मृत्यु हो जाएगी।" पानी बहता रहा। पहले तेजी से, फिर धीरे-धीरे और अन्त में बूँद-बूँद; और जब अन्तिम बूँद के बाद कुछ क्षण बीते तो उस आदमी का सिर लुढ़क गया। जेल के अधिकारी और डॉक्टर ने परीक्षण करके देखा—उसकी धड़कन बन्द हो चुकी थी। वह मर चुका था।

केवल विचार के प्रभाव से वह आदमी मर गया।

ऐसी कितनी ही बातें प्रत्येक जन-साधारण के जीवन में घटित होती हैं। शाम का समय है। अँधेरा हो गया। आप एक रस्सी को देखते हैं। भ्रम होता है कि यह सर्प है। उस समय आपकी दशा क्या होती है? मन में कितनी घबराहट पैदा होती है! हृदय की धड़कन कितनी तेज हो जाती है! किन्तु जब प्रकाश करके आप देखते हैं तो पता लगता है कि यह सर्प नहीं रस्सी है तो उसी क्षण आपकी दशा सुधर जाती है। अब कोई घबराहट नहीं, कोई धड़कन नहीं, कोई भय नहीं। चीज वही है, केवल विचार बदलने से सब-कुछ बदल गया।

रात का समय है। आप सोए हुए उठे। संभवतः लघुशंका करने के

लिए। अँधेरे मे आपको ऐसा जान पडता है कि सामनेकोई खडा है। आप समझते हैं कि वह कोई चोर है। सिर से पैर तक आपके रोंगटे खडे हो जाते हैं। आपका गला सूखने लगता है किन्तु जब बत्ती जलाकर आप देखते हैं तो पता चलता है कि जिसे आप चोर समझ रहे हैं, वह कील के साथ टँगा कपडा है। और उसी क्षण आपकी हालत बदल जाती है। मानसिक स्थिति बदल जाती है। रक्त-प्रवाह की हालत बदल जाती है। एक विचार ने एक हालत पैदा की, उस विचार को बदल दिया तो हालत भी बदल गई। वास्तविकता नही बदली ; केवल विचार में परिवर्तन होने से आकाश-पाताल जितना अन्तर पड गया।

यह दुनिया विचार से चलती है। अच्छे विचार हो तो दुनिया अच्छी हो जाती है। बुरे विचार हों तो बुरी हो जाती है। आज की दुनिया बिगडी तो क्यो? सागर वही है, नदियाँ वही है। पहाड, जगल, मदान, मरुस्थल वही है। वही सूरज, वही चन्द्रमा, वही धरती, वही आकाश। फिर क्या बदल गया है यहाँ? कौन सा परिवर्तन हो गया? केवल यह कि विचारधारा बिगड गई है। इस विचारधारा को बिगाडने का प्रारभ किया डारविन ने, जिसने घोषणा की कि मनुष्य अपने कर्म से, एक विशेष उद्देश्य के लिए और एक विशेष लक्ष्य तक जाने के लिए नही बना, किन्तु पशु से मनुष्य बना है। इस विचार-धारा को बिगाडने का और काम किया डॉ० पावलोफ ने, जिसने कहा कि मनुष्य केवल पशु से बना नहीं, आज भी पशु है। मनुष्य और पशु मे कोई अन्तर नही। और इस विचारधारा को बिगाडने की अति की फ्रायड ने, जिसने कहा कि काम-वासना ही सारे ससार का आधार है। काम-वासना से दुनिया चलती है। काम-वासना न रहे तो कुछ भी रहेगा नही। काम-वासना ही सबसे ऊपर है। काम-वासना ही सबसे महान् है।

उधर यूरोप मे इन लोगो ने विचारधारा को बिगाडा, इधर हमारे देश में चार्वाक् ने ; वाममार्ग पर चलनेवालों ने ; उन लोगो—छुआछूत, जाति-पाँति और ऐसी दूसरी बातो का प्रचार करनेवालो ने।

पश्चिम में वह, पूर्व में यह। जो अपने-आपको जगद्गुरु, धर्मगुरु, दार्शनिक और विद्वान् कहते थे—सबने मिलकर इस दुनिया को विनाश के मार्ग पर चला दिया, सबने मिलकर दुनिया की विचारधारा बदल डाली।

आज से एक सौ वर्ष पूर्व पूना में महर्षि दयानन्द ने भाषण करते हुए कहा, 'वेद के आधार पर मैं हवाई जहाज बना सकता हूँ।' याद रखिये, उस समय हवाई जहाज़ बने नहीं थे। कुछ लोग स्वप्न देखते थे किन्तु किसी को विश्वास नहीं था कि यह स्वप्न वास्तविकता भी बन सकता है। उस समय महर्षि दयानन्द ने जहाँ कहा कि वेद-आधार पर मैं हवाई जहाज बना सकता हूँ, वहाँ यह भी कहा कि यह एक बहुत छोटी बात होगी। मैं लोगों की विचारधारा बदलना चाहता हूँ। विचारधारा बदल जाय तो विनाश की ओर बढ़ते हुए कदम रुक जाएँगे। यह है विचार की महानता!

एक बुरा विचार जाग उठे तो विनाश जाग उठता है।

मैं जापान गया। हिरोशिमा को देखा जहाँ दुनिया का पहला एटम बम फेंका गया था। एक ही बम से पलभर में साढ़े तीन लाख आदमी मर गए। यह उस बम से हुआ जिसे दुनिया का सबसे भयंकरतम और महाविनाशकारी अस्त्र कहा जाता है। किन्तु हमारे देश में क्या हुआ?

एक विचार यहाँ जागा कि हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग जातियाँ हैं। हिन्दू के लिए अलग देश चाहिए और मुसलमान के लिए अलग। इस विचार ने अन्त में देश का बँटवारा कर दिया। इस बँटवारे के कारण साढ़े दस लाख लोग मारे गए। डेढ़ करोड़ बेघर-बार होकर शरणार्थी हो गए।

अब बताइये, एटम बम बड़ा या कि विचार?

बार-बार कहता हूँ कि विचारों की शक्ति को समझो। देश को बचाना है, मानवता को बचाना है तो इस गलत विचारधारा को बदल दो, जो सब जगह जाग उठी है। यहाँ सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि

सभा के मन्त्री जी बैठे हैं, इनके सामने उनसे और आप सबसे कहता हूँ कि यदि वेद का प्रचार नही हुआ तो न यह देश बचेगा और न मानवता। और इसका उत्तरदायित्व आर्यसमाज के नेताओ पर होगा। एक समय था, जब आर्यसमाज उपदेशक तैयार करता था, प्रचारक तैयार करता था। मैं गुरुकुल कांगडी के वार्षिक-उत्सव पर जाता तो कितने ही आर्य साधुओ के दर्शन वहां होते थे। पिछले वर्ष तो यह उत्सव हुआ ही नही। इस वर्ष मैं गया तो मच पर दो टूटे हुए साधु बैठे थे—एक मैं, एक स्वामी समर्पणानन्द। मैं पूछता हूँ कि इस तरह वेद का प्रचार कैसे होगा? उपदेशक-विद्यालय तुम खोलते नही; प्रचारक विद्यालय खोलते नही, लोगों को वानप्रस्थी और सन्यासी होने की प्रेरणा देते नही। इसलिए आर्यसमाज के पास उपदेशक, प्रचारक और साधु कम होते जाते हैं। फिर कौन करेगा वेद का प्रचार? मैं निराशावादी नही हूँ। आशावाद का समर्थक हूँ। किन्तु जो वास्तविकता आँखो के सामने दिखाई देती है, उसे कैसे भुला दूं?

मैं हागकाग मे था। वहां भक्त लोगो ने कई लाख रुपया लगाकर लक्ष्मीनारायण का मन्दिर बनवाया है। मैं उस मन्दिर मे गया। अच्छा मन्दिर है, बहुत सुन्दर है। प्रतिदिन सांझ को वहां बहुत-से लोग एकत्र होते हैं; कीर्तन होता है, भजन होते हैं, उपदेश होते है। किन्तु मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि यहाँ जितने भी लोग आते हैं, सब बूढे हैं। नवयुवक कोई भी नही। उस मन्दिर का एक ट्रस्ट है। उसके प्रधान हैं एक सज्जन जेठानन्द। मैंने उनसे पूछा, 'जेठानन्द जी, आपने बेटे-बेटियाँ क्या सब भारत भेज दिये?" वे बोले, "नही स्वामीजी, वे सब तो यही हैं।" मैंने पूछा, "फिर वे सब आपके साथ मन्दिर क्यो नही आते?" वे बोले, 'वे नही आते स्वामीजी, सांझ होते ही वे नाइट क्लब मे चले जाते हैं।"

यह हालत होती है गलत विचारधारा से। पिता ने अपने बच्चो की विचारधारा को बदलने का यत्न नही किया। अच्छे विचार उन्हे नही दिये। पिता मन्दिर बनवाता फिरता है, बच्चे नाइट क्लबो मे

घूमते-फिरते हैं। यह बात मैं आर्यसमाज के नेताओं से, सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा और दूसरी आर्यप्रतिनिधि सभाओं के अधिकारियों से कहना चाहता हूँ कि यह तुम जो बड़े-बड़े मन्दिर बनवाते हो, इन्हें बनवाओ अवश्य किन्तु यदि लोगों की विचारधारा नहीं बदली, यदि आपके बच्चे नाइट क्लबों में जाते रहे तो याद रखो, एक दिन तुम्हारे ये मन्दिर भी नाइट क्लब बन जाएँगे। एक गलत विचारधारा दुनिया में फैल रही है। यह शरीर ही सब-कुछ रह गया है। शरीर के अन्दर बैठा हुआ आत्मा कुछ भी नहीं। शरीर को खिलाओ-पिलाओ, नहलाओ-धुलाओ-सजाओ। इसे सिनेमाघरों, थियेटरों, नाइट क्लबों, नाचघरों में ले जाओ। इसके लिए सब-कुछ हो रहा है। और जो इस शरीर का मालिक है, वह इस तरह भूखा-प्यासा बैठा है जैसे उसका अस्तित्व ही न हो, कोई महत्त्व, कोई मूल्य न हो। इस विचारधारा को बदला न गया तो—

न तुम ही रहोगे न साथी तुम्हारे।
जो डूबेगी किश्ती तो डूबोगे सारे॥

किन्तु अब दस बज गए भाई, शेष कल।

पाँचवाँ दिन

[पूज्य श्री आनन्द स्वामीजी महाराज ने पंजाबी बाग दिल्ली में कथा करते हुए, पाँचवें दिन ऊँचे-लम्बे स्वर में 'ओ३म्' का उच्चारण करने के पश्चात् कहा—]

आओ भाई! सब मिलकर एक बार मस्ती से गायत्री मंत्र का पाठ करें।

[वह स्वयं भी पढ़ने लगे और श्रोता भी। गायत्री मन्त्र पढ़ने के बाद उन्होंने कथा प्रारम्भ की—]

आज पाँचवाँ दिन है। यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय के दो मंत्रों को व्याख्या मैं आपके सामने रख रहा हूँ। पहला मत्र है :

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्य वर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय ॥

इस दुनिया मे जितने भी रोग हैं, शोक है, कष्ट, क्लेश, विपत्तियाँ हैं, पराजय निर्धनता, भुखमरी, वियोग आदि से उत्पन्न होनेवाला दुःख है, उनसे बचने का एक ही मार्ग है :

तमेव विदित्वा।

उसको जानो जो परमब्रह्म है, परमेश्वर है, परमशक्ति है, परम-कल्याण और परमानन्द है। उसको जाने बिना इन सब दु.खों, कष्टों, क्लेशों, विपत्तियो से छुटकारा मिलने का कोई मार्ग नही।

किन्तु उसको जानें कैसे? देखे कैसे? उसका कोई रग नही, रूप नही, शरीर नही, आकार नही। यह भी मालूम नही होता कि वह है कहाँ? बडे-बडे सन्त-महात्मा भी उसे खोजते-खोजते थक गए, तब कैसे देखें उसे? कैसे जानें?

तो यजुर्वेद के इसी अध्याय के नवम मत्र में इसका उपाय बताया गया है कि तीन प्रकार के लोग उसे देखते हैं। तीन गुण हो मनुष्य के भीतर तो उस प्रभु प्रीतम के दर्शन होते हैं। कही दूर या परे, सातवे या चौदहवें आकाश पर नही, किन्तु यही। इस मानव-शरीर के भीतर वह सामने दिखाई देता है। कौन लोग हैं जो उसे देखते है? वेद ने कहा :

देवाः साध्या ऋषयाः

देव, साधक और ऋषि। स्वामी का दर्शन चाहता है तो देव बन। अपने आस-पास दैवी सपत् को एकत्र कर; आसुरी सपत् को नही। देनेवाला बन, विद्वान् बन, स्वाध्याय करनेवाला—अपने-आपको और अच्छे ग्रन्थों को पढ़नेवाला बन। सत्सग और स्वाध्याय से अपने-आपको सत्यमार्ग का यात्री बना। दान कर, झगड़े न कर। मिलकर रह दूसरो के साथ। जो लोग झगड़े करते हैं, वे देवता नही, राक्षस

हैं। देवता कभी झगड़ते नहीं, किसी का बुरा नहीं चाहते। आज यदि दुनिया में इतने बड़े झगड़े नजर आते हैं, विनाशकारी युद्ध की तैयारियाँ दिखाई देती हैं, जगह-जगह घृणा और द्वेष की लपटें भड़क उठती हैं तो क्यों? इसलिए कि आज देवता हार गए। असुर अर्थात् राक्षस जीत गए। यह देवासुर-संग्राम दुनिया में चलता ही रहता है। कभी देवता जीत जाते हैं, कभी राक्षस। आजकल राक्षसों का राज है दुनिया पर। हमारे देश पर भी राक्षसों का राज है। कौन हैं ये राक्षस—यह तो कोई भी देख सकता है।

पिछले दिनों मैं मद्रास में कथा कर रहा था तो देखा कि नगर में जगह-जगह नौजवान बच्चे और बच्चियाँ अपनी पढ़ाई को भूलकर जहाँ कहीं हिन्दी लिखी मिले, उसके ऊपर तारकोल पोत रहे हैं। काला रोगन फेर रहे हैं। और तभी उत्तरी भारत में उत्तरप्रदेश के अन्दर कुछ और नौजवान बच्चे और बच्चियाँ अंग्रेजी के नामपट्टों पर कोलतार पोत रहे हैं। कहीं मील के पत्थरों पर भी अंग्रेजी लिखी है तो वहाँ भी कालिख पोत रहे हैं। यह देवताओं की बात तो है नहीं। निरी राक्षसों की बात है। दक्षिणी भारत में हो या उत्तरी भारत में, ऐसा जान पड़ता है कि यह देश पागलों का देश बन गया है। कभी तैंतीस करोड़ देवता यहाँ रहते थे। अब यह एक विशाल पागलखाना जान पड़ता है जहाँ छोटी-छोटी बातों के लिए बड़े-बड़े झगड़े जाग रहे हैं। भला यह भाषा भी लड़ने की चीज है? वेद भगवान् ने प्रारम्भ में ही कहा कि भाषा लड़ने-झगड़ने की चीज है नहीं। अथर्ववेद के बारहवें कांड के प्रथम सूक्त को कहते हैं पृथिवी सूक्त। बहुत सुन्दर सूक्त है यह। उसके पैंतालीसवें मन्त्र में लिखा है।

जनं बिभ्रति बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।

यह जो पृथिवी है, यह जो देश है तुम्हारा, यहाँ कितनी ही भाषाओं को बोलनेवाले रहते हैं, कितने ही धर्मों को माननेवाले, सबको इस धरती ने धारण कर रखा है।

तब ये लोग रहें कैसे?

क्या इस तरह जैसे उधर मद्रास मे और इधर उत्तरप्रदेश के लोग कर रहे है ? नही, वेद कहता है।

यथौकसम्

जैसे एक ही घर मे सगे भाई रहते हैं, उस तरह रहो.

किन्तु आज वेद की बात कौन सुनता है ? वेद की बात सुनते है देवता। और आज तो हर दिशा मे असुरो का, राक्षसो का बोल बाला है। यह विनाश की तयारी है। विनाश से बचना है तो आवश्यक है कि देवता बनो। फिर साधक बनो। तब ऋषि बनो।

साधक कौन है ? इसके सम्बन्ध म मैंने कल बताया। ज्ञानवान्, श्रद्धावान्, विचारवान् जो मनुष्य है, जो योग के साधनो से ईश्वर को पाने का यत्न करता है, वह साधक है। ज्ञान क्या है ? श्रद्धा क्या है ? यह बता चुका। विचार की शक्ति कल बता रहा था।

याद रखो, दुनिया म सदा विचार ही शासन करता है। तोप, एटम बम, टैंक, बन्दूक, मशीनगन का शासन कभी चलता नही। जैसा विचार होगा वैसी ही दुनिया बन जाएगी।

मुझे याद आता है कि लाहौर मे एक समय था जब चाय की एक दुकान भी वहाँ नही थी। मैं रहता था अपने गाँव मे। गाँव मे तो किसी को चाय का नाम भी मालूम नही था। एक बार मैं अपने पिताजी के साथ आर्यसमाज के उत्सव पर लाहौर आया तो पहली बार चाय का नाम सुना। अनारकली बाजार मे एक आदमी एक मेज के ऊपर स्टोव और उसके पास ग्रामोफोन रखकर खडा था। स्टोव पर वह चाय बना रहा था। ग्रामोफोन पर रिकॉर्ड बज रहा था

पी लो मुफ्त की प्याली है।
यह शक्ति देने वाली है॥

मैं भी खडा हो गया वहाँ। वह आदमी चाय बना-बनाकर लोगो को मुफ्त पिला रहा था। साथ ही कहता जाता था, "गर्मियो मे गर्म चाय ठण्ड पहुँचाती है।" मैंने भी एक प्याली पी ली। एक घूँट ही पिया। इसके बाद फिर कभी चाय नही पी। किन्तु इस प्रचार का

जो प्रभाव हुआ, वह तो सबके सामने है। अब हर जगह चाय है। हर समय चाय। सुबह पियो, दोपहर पियो, शाम को पियो। अब लोगों को चाय के बिना चैन ही नहीं। केवल शहरों में नहीं, गाँवों में भी लस्सी और दूध की जगह चाय ने ले ली है। आप शहरवाले तो कप में चाय पीते हैं, गाँववाले पूरा कटोरा भरकर चाय पीते हैं। एक प्याले से उन्हें सन्तोष नहीं होता। मैं एक बार अमरनाथ की यात्रा पर गया तो देखा कि बर्फानी पहाड़ों पर लिखा है, "गर्मियों में गर्म चाय ठण्डक पहुँचाती है।" मैंने हँसते हुए कहा, यहाँ ठण्डक की आवश्यकता किसे है ? यहाँ तो लिखना चाहिये, 'सर्दियों में गर्म चाय गर्मी पहुँचाती है।' किन्तु वह विज्ञापन लिखनेवालों की इच्छा है। और कुछ वर्षों में चाय का प्रचार कहाँ-से-कहाँ पहुँच गया, यह तो कोई भी देख सकता है। एक विचार दिया गया लोगों को, कोई तोप नहीं चलाई गई, बन्दूक नहीं दागी गई। और आज वह प्रचार करोड़ों लोगों के जीवन में समा गया है। चाय के बिना उनका काम ही नहीं चलता। चाय के आठ हजार फार्म हैं इस देश में। सैंतीस करोड़ अठानवे लाख किलो चाय इस देश के लोग पी जाते हैं। इस तरह कार्य करता है विचार !

और आज किस विचार का प्रचार हो रहा है ?—कि यह धर्म-कर्म सब ढोंग और पाखण्ड है। किन्तु इस विचार के लिए उत्तरदायी कौन है ?

मैं कहता हूँ कि हम लोग उत्तरदायी हैं जो अपने को धार्मिक कहते हैं। धर्म के नाम पर वास्तव में ऐसे-ऐसे ढोंग और पाखण्ड हो रहे हैं कि जो आदमी सच्चे धर्म को नहीं जानता उसके दिल में धर्म के लिए घृणा नहीं तो निराशा अवश्य जागने लगती है। अजीब तमाशा है यहाँ कि दूसरों को उपदेश दिया जाता है—माया चाण्डालिनी है, यह धन-सम्पत्ति सब बन्धन का कारण है, इनका त्याग करो। और महन्तजी महाराज अपने लिए बड़े-बड़े मठ बनवाते चले जाते हैं ; दूसरों को कहते हैं—शरीर कुछ नहीं, इसका विचार छोड़ दो। स्वयं

वादाम का हलुग्रा खाते है, वादाम रगडकर पीते हैं, शुद्ध घी के वने मालपूडे उडाते है। इस तरह धर्म का प्रचार कैसे होगा ? अव मैं भी साधु हूँ। साधुग्रो के सम्बन्ध मे कुछ कहूँ तो ठीक नही। किन्तु इस वात से कौन इन्कार कर सकता है कि भगवे कपडे पहनकर कई लोग ऐसे-ऐसे अनर्थ करते हैं जिन्हे देखकर ग्रादमी का दिल रो उठता है। एक दिन मैं दिल्ली मे था। रणवीर मुझे मिलने ग्राया तो उदास-सा था। मैंने पूछा, "उदास क्यों हो ?"

वह बोला, "एक साधु के विरुद्ध गवाही देकर ग्राया हूँ। जो कुछ कहा, वह सच कहा, किन्तु यह समझ नही पाता कि साधु के विरुद्ध गवाही देना ठीक था या नही ?"

मैंने वात पूछी तो उसने बताया कि कुछ वर्षो से एक साधु दिल्ली मे डेरा डाले बैठा था। धीरे-धीरे उसने ग्रपना एक वडा मकान बना लिया, सव लोगो से पैसे लेकर। कहते यह रहे कि आश्रम का भवन वनेगा। मकान की रजिस्ट्री करा दी ग्रपने वेटे के नाम। एक ग्रादमी से इतना कुछ ले लिया कि उस साधु की प्रेरणा से जहाँ वह काम करता था, वहाँ उसे गवन करना पडा। गवन करने के वाद वह भागा। भागने के वाद कभी मिला नही। उस ग्रादमी की पत्नी ग्रौर वच्चे रोते तो यह साधु महाराज उन्हे कह देते कि मेरे विचार मे उसने ग्रात्महत्या कर ली है। उन्हो दिनो एक विवाहिता नवयुवती ग्रपने घर से गुम हो गई। यह स्त्री इन साधु महाराज के सचिव के रूप मे काम करती थी। उसका पति उसे खोजता हुआ साधु महाराज के पास पहुँचा तो वह बोले, "तुम लोग उसे काम नही करने देते थे। इससे दु खी होकर उसने कही आत्महत्या कर ली होगी।" उसी दिन उस स्त्री का लिखा हुग्रा पत्र उसके पति को मिला जिसमे लिखा था कि मैं यमुना में डूबकर ग्रात्महत्या कर रही हूँ।

पति रोता हुग्रा रणवीर के पास ग्राया। रणवीर उसे साथ लेकर साधु महाराज के पास पहुँचा। साधु ने जिस ढग से वार्ते की, उससे रणवीर को सन्देह हुआ कि ग्रात्महत्या करने की सूचना का पत्र झूठा

है। आत्महत्या की बात भी झूठी है। रणवीर ने क्रोध के साथ कहा, "यदि आज शाम तक यह स्त्री घर नहीं पहुँची तो मैं दिल्ली प्रशासन को सूचना दे दूंगा कि उस स्त्री को तुमने छिपा रखा है। यदि उसकी लाश मिली तो तुमपर हत्या का मुकद्दमा चलेगा।"

साधु महाराज को धमकी देने का प्रभाव यह हुआ कि उसी रात को वह स्त्री अपने घर पहुँच गई। साधु महाराज बाद में बन्दी बने। उनपर और भी कई मुकद्दमे थे। रणवीर को गवाही के लिए बुलाया गया तो जो कुछ उसे मालूम था, वह उसने जाकर बता दिया।

मैंने रणवीर को कहा, "इसमें उदास होने की कोई बात नहीं। तुमने अच्छा काम किया, बुरा नहीं।"

किन्तु धर्म का नाम लेनेवाले लोग ऐसे-ऐसे काम करें, अपने-आप को साधु महात्मा और धर्म-प्रचारक कहनेवाले इस प्रकार पाप के मार्ग पर चलें—भजन तो एक या दो घंटा करें और व्यवहार करें ऐसा जिससे समाज की हानि हो, देश की हानि हो, तो फिर लोगों में धर्म के लिए घृणा न जागे तो और क्या हो? ऐसे लोगों को देखकर ही किसी ने कहा था :

ख़ुदा के बन्दों को देखकर ही ख़ुदा से मुनकर हुई है दुनिया।
कि ऐसे बन्दे हैं जिस ख़ुदा के वो कोई अच्छा ख़ुदा नहीं है॥

हमने ईश्वर को भी बदनाम कर दिया। और यह उल्टा, छोटा, छोटा विचार कि धर्म-कर्म सब ढोंग हैं, दुनिया में पैदा हुआ तो उन्हीं लोगों के कारण जिन्होंने धर्म के नाम पर सचमुच ढोंग और पाखण्ड किया। अब विचार सब जगह है। प्रश्न है कि इसे बदलें कैसे? तो मेरी प्रार्थना है कि इसके लिए बहुत परिश्रम करना पड़ेगा। उन लोगों को अपना कार्य-व्यवहार बदलना होगा जो धर्म को माननेवाले हैं। ऐसा आचरण, ऐसा क्रियात्मक जीवन अपनाना होगा जिससे दूसरों को सुख मिले, शान्ति मिले। सब आपस में मिलकर रहें, उनके प्रेम में बढ़ोतरी हो, झगड़ों में नहीं। उनका भला हो, बुरा नहीं।

लोगों में त्याग की भावना बढे, लालच और स्वार्थ नही।

याद रखिये, यदि माता-पिता का आचरण अच्छा है तो सन्तान का आचरण भी अच्छा होगा।

यदि पिता सिगरेट पीता है, माँ जुआ खेलती है तो वच्चे को यह समझाने से क्या होगा कि सिगरेट पीना बुरा है? यदि माता का आचरण अच्छा है और फिर भी वच्चे के बिगड़ने का भय है तो देखो कि इसकी संगत कैसी है? जैसी संगत होगी, वैसा ही वह भी वन जाएगा। अच्छी संगत से अच्छा, बुरी से बुरा।

अपनी वात सुनाऊँ आपको? मेरे नानाजी हुक्का पीते थे। कई वार मुझे भी कहते थे कि चिलम भर लाओ।

मैं चिलम भरके लाया। वह बोले, "जरा इसे ताजा कर दो।" यह भी वताया उन्होंने कि ताजा करने के लिए नली को मुँह से लगाकर साँस अन्दर को खीचा जाता है। मैंने वैसा ही किया। एक ही वार साँस अन्दर को खीचा कि आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मुँह कड़वा हो गया। गला घुटता-सा मालूम हुआ। मैंने जल्दी से उसे छोड़कर पानी पिया। लम्वे-लम्वे साँस लिये। ठीक हुआ तो नानाजी से पूछा, "यह आप क्या पीते हैं? यह तो वहुत वुरी चीज है।"

वह बोले, "सचमुच बुरी चीज है वेटा! पर मैं क्या करूँ, आदत पड गई है।"

वच्चे और वच्चियाँ विगडते हैं तो क्यों? सवसे पहले अपने माता-पिता के कारण। माता-पिता यदि भले हों, यदि वे वच्चों के सामने अच्छा उदाहरण रखें तो निश्चय ही वच्चे ठीक रहेगे। बच्चा कभी अच्छा या वुरा नही होता। हम ही उसे अच्छा वनाते है, हम ही वुरा भी वनाते हैं। इसलिए हमारे पूर्वजों ने सत्सङ्ग का तरीका चलाया कि लोगों को अच्छे विचार मिलते रहें।

विचार की शक्ति के सम्वन्ध मे हमारे पूर्वजों ने कहा है:

संसार दीर्घ रोगस्य सुविचारो महौषधम्।
कोऽहं कस्यचित् संसारो विवेकेन विलीयते॥

यह संसार क्या है ? जन्म, यौवन, बुढ़ापा, फिर मौत—यह चक्र समाप्त होने का नहीं। बहुत लम्बा रोग है यह। किन्तु कितना भी लम्बा हो मेरे भाई! एक बहुत बड़ी ओषध है, 'सुविचार'—अच्छे विचार। कैसे अच्छे विचार? यह सोचो कि 'मैं कौन हूँ ?' 'क्यों आया हूँ दुनिया में ?' 'किसका है यह संसार ?' इस प्रकार शिव-सङ्कल्प से, अच्छे विचारों से संसार का यह रोग सदा के लिए समाप्त हो जायेगा।

और आज के विज्ञान ने सिद्ध किया कि विचार केवल शब्द नहीं, मनुष्य के मस्तिष्क से, लेखनी से, वाणी से निकलनेवाली ठोस लहरें हैं। ये लहरें दूसरों से जाकर टकराती हैं। हलचल पैदा कर देती हैं। हमारे शास्त्रों ने यह भी कहा कि लहरों में रजोगुण का लाल, तामसिक का काला और सात्विक का श्वेत रंग होता है। फिर इनके आपस में मिलने से कितने ही दूसरे रंग पैदा होते हैं—नीला, पीला, हरा, सुनहरा, बैंगनी, गुलाबी, प्याजी और आसमानी।

यदि हम उस प्रीतम प्यारे के दर्शन करना चाहते हैं जो अन्दर बैठा है तो इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं कि पहले विचारों को शुद्ध करें। विचार से विचार बनता है, आचार से व्यवहार। व्यवहार का फल मिलता है।

किन्तु कौन है जो चाहता है कि उसके मन में खोटे विचार आएँ ? कोई नहीं चाहता न ! फिर भी आ जाते हैं ये खोटे विचार। तो घबराओ नहीं। हमारे पूर्वजों ने इन्हें परे हटाने का उपाय भी बताया है। माँ बैठी है, रसोईघर में रोटी बना रही है। कुत्ता आ गया रसोईघर के भीतर। माँ कहती है, "हट, परे हट जा यहाँ से !"

कुत्ता फिर आ जाता है। माँ ज्यादा क्रोध से कहती है, "हट जा यहाँ से, बाहर निकल जा !"

कुत्ता तीसरी बार फिर आता है। तब माँ क्या करती है ?—चूल्हे से जलती हुई लकड़ी निकालकर उसके ऊपर दे मारती है। वह भागता है तो फिर दोबारा नहीं आता।

यह है बुरे विचार को परे हटाने का उपाय। आया कोई बुरा विचार तो उसी समय कहो, "निकलो, निकलो बाहर!"

फिर आ गया तो कहो, "चलो जाओ, यहाँ से हटो! तुम पाप हो! मैं पापी नही। दूर हटो, गेट आउट!"

और अथर्ववेद मे ठीक ऐसा ही एक मत्र आता है

परो पेहि मनस्पाप कि अश स्यात शंससि।

परे हि न त्व कामये वृक्षानि वनानि सचर गृहेषु गोषु मे मन ॥

'परे चला जा मन के पाप! अरे ओ खोटे विचार! कहाँ घुसा आता है तू? हट जा यहाँ से! मुझे तेरी इच्छा नही। तुझे चिपटना ही है तो जगल के वृक्षो से जाकर चिपट। मैं अपने मन के घर को स्वच्छ करने मे लगा हूँ।'

यह है, आत्म-निर्देशन (Auto Suggestion) के द्वारा अपने-आपको समझाने का उपाय।

किन्तु आजकल खोटे विचारो से बचना कौन चाहता है? लोग पैसे दे देकर इन्हे प्राप्त करते है। पिछले दिन मैंने आपको बताया कि हमारे देश मे ७७ करोड आदमी प्रतिवर्ष सिनेमा देखते हैं। एक आदमी यदि एक बार सिनेमा देखने में दो रुपए भी औसतन खर्च करता हो तो १५४ करोड रुपया यहाँ ऐसे विचारो को प्राप्त करने मे व्यय होता है, जो अच्छे नही हैं। इतना रुपया यदि दूसरे अच्छे कामो मे खर्च हो तो सोचो कि यह देश कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाएगा। एक बडा पुल यदि किसी बडी नदी पर बनाना हो तो एक करोड रुपया खर्च होता है। १ अर्ब ४ करोड रुपए से १५४ बडे-बडे पुल प्रतिवर्ष बन सकते हैं। दो वर्षो मे भाखडा-जैसा एक बडा बाँध तैयार हो सकता है। प्रतिवर्ष सैकडो मील लम्बी नई नहरे खोदी जा सकती हैं। यह न किया जाय तो सैकडो नए महाविद्यालय खोले जा सकते हैं, जिनमे लाखो नए लोगो को तकनीकी ज्ञान और शिल्प की शिक्षा दी जा सके। सैकडो नए अस्पताल बन सकते हैं जिनमे लाखो लोगो को जीवन और स्वास्थ्य का दान दिया जा सके। हजारो विधवाओ और

अनाथों का जीवन सुखी बनाया जा सकता है। और हम इस रुपए को गँवा देते हैं बुरे विचार खरीदने के लिए।

मैं जब ऐसी बातें कहता हूँ तो कई नवयुवक मन-ही-मन कहते हैं—यह बुड्ढा मूर्ख साधु तो पागल हो गया है। इसे क्या मालूम कि सिनेमा देखने में कैसा आनन्द मिलता है। मैं कहता हूँ शराब मत पियो। वे कहते हैं, तूने कभी पीके देखी है? मैं कहता हूँ, मैंने तो कभी पी नहीं। तो वे कहते हैं, फिर दूसरों से क्यों कहता है कि वे न पियें?

यह है आजकल की दुनिया।

जान-बूझकर विष पीती है और अभिमान करती है कि विष पिये जाती है।

एक हैं स्वामी रामानन्द जी। बहुत बूढ़े हैं। गंगोत्तरी में नंग-धड़ंग रहते हैं—एक गुफा के भीतर। गर्मी वहाँ होती नहीं। सर्दी बहुत होती है। सर्दियों में हर ओर बर्फ के पर्वत जाग उठते हैं। तब भी वे वहीं रहते हैं। मैं गंगोत्तरी में गया, उनसे मिला। उन्हें बताया कि मैं दुनिया का सुधार करना चाहता हूँ। लोगों की विचार-धारा को बदलकर उन्हें विनाश से बचाना चाहता हूँ। तो वे बोले, "तेरी सुनेगा कौन? दुनिया पतन की ओर जा रही है। जाने दे इसे। तू इसे रोक नहीं सकेगा। तूने अमृत पी लिया, अब आराम से यहाँ बैठकर इस आनन्द को देख। यह दुनिया तो पहाड़ की ऊँची चोटी से लुढ़कती गेंद की तरह है। लुढ़क पड़ा है यह गेंद। अब गहरी खड्ड में पहुँचने से पहले रुकेगा नहीं।"

स्वामी रामानन्द जी का विचार था कि १९८५ ई० से पहले इस दुनिया को और भारत को चैन मिलेगा नहीं। कौन जाने कि इस समयावधि में कुछ और बढ़ोतरी हो जाए।

इस महान् योगी की शिक्षा को भुलाकर मैं चला आया इस दुनिया में। जगह-जगह घूमता हूँ। सात-आठ दिन से अधिक कहीं ठहरता नहीं। देश के कोने-कोने में गया हूँ, गाँव-गाँव में, देश से बाहर भी कितने ही देशों में। किन्तु कई बार विचार आता है कि मैं ये टक्करें

क्यों मार रहा हूँ ? कोई सुनता है नही । जो सुनते हैं वे भी एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल देते है । फिर क्यो यह प्रयत्न करता हूँ ? क्यो न वापस चला जाऊँ गगोत्तरी में और उस आनन्द में मग्न हो जाऊँ जिससे वडा आनन्द कोई है नही । किन्तु तभी विचार आता है कि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने भी तो ऐसा ही किया था । घोर कठिन तप के बाद सच्चे शिव के दर्शन हो गए उन्हे, मोक्ष का अधिकार मिल गया । यह सब-कुछ होने पर भी आराम से नही बैठे । उत्तराखण्ड की हिमाच्छादित चोटियों से नीचे आए इस दुनिया में । जगह-जगह घूमने लगे । विष के प्याले पीकर भी लोगों का कल्याण करते रहे । गालियां खाईं, पत्थर खाए, फिर भी प्रेम के मार्ग से हटे नही ।

और मन-ही-मन मैं कहता हूँ, 'मुझे भी इसी मार्ग पर चलना है । कोई सुने या न सुने । मैं सुनाऊँगा अवश्य ।'

रस्मे उल्फ़त जिस तरह होगा निबाहेंगे जरूर ।
तुम हमें चाहो न चाहो, हम तो चाहेंगे जरूर ॥

हम तो सुनाते चले जाएँगे भाई ! आज नही सुनते तो कल सुनोगे, कल नही तो परसो, परसो नही तो वर्षो के बाद, नही तो अगले जन्म में, उससे अगले जन्म मे ।

और मैं दृढतापूर्वक कहता हूँ कि जबतक वेद की विचारधारा का प्रचार नही होगा, इसे अपनाया नही जाएगा, तबतक ससार का कल्याण नही होगा, शान्ति नही मिलेगी, चैन नही मिलेगा ।

एक सज्जन कहने लगे, "स्वामीजी, कैसी पुरानी बाते करते हैं आप ! यह विज्ञान का युग है । आज यह वेद कैसे चलेगा ?"

मैंने पूछा, "क्यो नहीं चलेगा ?"

वह बोले, "आप कहते हैं न कि इस दुनिया को बने लगभग दो अर्ब वर्ष हो गए हैं । यह भी कहते हैं कि वेद का ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में आया था । तब यह बताइये कि दो अर्ब वर्ष पुराना ज्ञान आज कैसे काम आएगा ?"

मैंने कहा, "सभी पुरानी चीजें क्या अनुपयोगी हो जाती हैं ? वे

काम नहीं देतीं क्या ?"

वह बोले, "सभी पुरानी चीजें व्यर्थ हो जाती हैं। वे काम नहीं देतीं। मशीनें, मोटर, मकान, कपड़े—सभी चीजें।"

मैंने कहा, "ठीक कहते हो तुम। किन्तु यह सूर्य पुराना है या नहीं? बताओ कितना पुराना है यह ? दो अर्ब वर्ष से भी पहले का। दो अर्ब वर्ष के बाद भी यह प्रकाश देता है। गर्मी देता है। खेतों में अन्न को पकाता है। बागों में फलों को पकाता है। धरती पर प्रत्येक जीव-धारी को जीवन देता है, स्वास्थ्य देता है। यदि दो अर्ब से अधिक वर्ष पहले का यह सूरज आज भी काम देता है, यदि उसके बिना तुम्हारा एक दिन भी काम नहीं चलता, तो वेद क्यों काम नहीं दे सकता ?"

और केवल सूरज ही क्यों ? यह धरती, यह चन्द्रमा, यह पानी, यह वायु—ये सब भी तो दो अर्ब वर्ष पुराने हैं। इनमें से किसी एक के बिना भी गुजारा नहीं। आज जो दुःख है, जो अशान्ति है, उसे दूर करने का एक ही साधन है—वेद का प्रचार, धर्म के मार्ग पर चलना।

धर्म क्या है ? जो धारण किया जाय, अपनाया जाय ; जिसपर आचरण किया जाय, उसका नाम धर्म है।

एक सज्जन ने मुझे कहा, "मैं तो धर्म की पूरी बात मानता हूँ।" वे सज्जन मुसलमान थे। 'मिलाप' दैनिक में किताबत किया करते थे। मैंने पूछा, "क्या मानते हो ?"

वह बोले, "कुरान शरीफ में लिखा है—मत पढ़ो नमाज़, इसलिए मैं नमाज नहीं पढ़ता।"

मैंने कहा, "भले आदमी, कुरान शरीफ में यह लिखा है कि 'मत पढ़ो नमाज़ जब तुम नशे की हालत में हो'।"

वह बोले, "देखिये, पहली बात मैंने मान ली, दूसरी बात कोई दूसरा मान ले। मैं किसी को रोकता थोड़े ही हूँ।"

किन्तु यह तो धर्म के मार्ग पर चलना नहीं है।

भारत के महान् राजनीतिज्ञ महात्मा चाणक्य हुए हैं जिन्होने कटे-फटे देश का एक महान् और सगठित देश बना दिया। उस युग मे जब रेल-गाड़ियाँ नही थी, मोटरे, लारियाँ और हवाई जहाज नही थे, केवल सात वर्षों मे पराजित भारतवर्ष को संसार का सबसे महान् और शक्तिशाली देश बना दिया। ईरान से अराकान तक उस समय यह देश फैला हुआ था। जो यूनानी सारे दक्षिणी यूरोप और पश्चिमी एशिया पर छाए हुए थे, जिन्होने भारत में आकर महाराज पुरु को झुका दिया था, उन्ही को महात्मा चाणक्य ने ऐसी हार दी कि फिर कभी उन्होंने इस देश की ओर बुरी आँख से देखने का साहस भी नही किया। सेल्यूकस ने न केवल अपनी बेटी सम्राट् चन्द्रगुप्त को दे दी अपितु ईरान और अफगानिस्तान का विस्तृत भू-भाग भी। इन्ही महात्मा चाणक्य ने कुछ सूत्र लिखे है। उनमे सबसे पहले सूत्र में वह कहते हैं :

सुखस्य मूलं धर्मः। धर्मस्य मूलं अर्थः।
अर्थस्य मूल राज्यः। राज्यस्य मूलं इन्द्रियजयः॥

सुख का आधार धर्म है। धर्म के बिना सुख कभी मिलता नही। धर्म का धर्म आधार धन है। धन न हो तो धर्म को पालना करोगे कैसे? दान कैसे करोगे? यज्ञ कैसे करोगे? दूसरों की सहायता कैसे करोगे? धन का आधार राज्य है और राज्य का आधार इन्द्रियों को वश में करना है। और यही योग-मार्ग है। आज कुछ लोग कहते हैं कि महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के छठे समुल्लास मे राजनीति का उल्लेख किया है, इसलिए आर्यसमाज को राजनीति में भाग लेना चाहिये। अरे भले लोगो! यह भी तो देखो कि उस पूज्य महर्षि ने कौन-सी राजनीति का उल्लेख किया है? महर्षि कहते हैं, 'जिस आदमी ने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है, विजय प्राप्त कर ली है, जो योग के यम-नियम का पालन करता है और योग के मार्ग पर चलकर योग-साधन करते हुए जिसने बाहर और भीतर का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, वह राज्य को चलाने और शासन को सम्मति देने के लिए संसद् या पार्लियामेण्ट मे जाए।'

यह है राजनीति की बात जो महर्षि ने कही। इसे कोई कहता या सुनाता नहीं। केवल अपने स्वार्थ की बात सुनाते हैं। 'नमाज नहीं पढ़ो' तो बताते हैं, यह नहीं बताते कि 'कब मत पढ़ो।'

याद रखो, आर्यसमाज एक आन्दोलन नहीं, एक मिशन है। इसका मिशन है वेद का प्रचार करना ; आज यूरोप तरस रहा है। भौतिक उन्नति में बहुत आगे बढ़ा वह। अब उससे तंग आ गया है। बाइबल और ऐसे ही दूसरे ग्रन्थों से उन्हें शान्ति नहीं मिलती। क्योंकि उनमें ऐसी बातें लिखी हैं, जिन्हें आज के विज्ञान ने असत्य सिद्ध कर दिया है। एक समय था जब ईसाई धर्म-प्रचारक लोगों को बताते थे कि धरती के चारों ओर सूर्य घूमता है। यह भी बताते थे कि धरती चपटी है ; यह भी कि सारी सृष्टि ईश्वर ने छः दिन में बनाई ; सातवें दिन विश्राम किया। उस समय जो लोग कहते थे कि सूर्य धरती के चारों ओर नहीं घूमता अपितु धरती ही सूर्य के चारों ओर घूमती है और जो कहते थे कि धरती गोल है, उन्हें 'धर्मभ्रष्ट' कहकर जीवित जला दिया जाता था। अब विज्ञान में इतना आगे बढ़ने के बाद यूरोप के लोग इन बातों को कैसे मानेंगे? कुछ लोग खुल्लमखुल्ला कहते हैं, 'नहीं मानते।' दूसरे कहते नहीं, अनुभव करते हैं। किन्तु कोई कहे या केवल अनुभव करे, सन्तोष तो होता नहीं। एक अशान्ति उत्पन्न हो रही है सारे यूरोप में। सारे अमेरिका में लोग पूछते हैं कि मार्ग किधर है? लक्ष्य कहाँ है? उनके मत में योग सीखने की अभिलाषा है। किन्तु हमारे देश से जो लोग वहाँ पहुँचते हैं, वे केवल योग के आसन सिखाकर चले आते हैं। मैं जब वहाँ गया तो उन्हें बताया कि केवल आसन योग नहीं है, यह शारीरिक व्यायाम की एक विधि है। शरीर स्वस्थ-सबल रहना चाहिए अवश्य, किंतु योग कुछ और ही चीज है। क्या है, किस प्रकार साधा जाता है, यह केवल वेद में बताया गया है। किसी दूसरे धर्मग्रन्थ में उस का उल्लेख नहीं है। और जब मैंने उन्हें बताया कि:

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयं कोषः स्वर्गो ज्योतिषावृत्तः ॥

आठ चक्र हैं उस नगरी के और नौ द्वार हैं। प्रत्येक द्वार पर देवता पहरा देते हैं। यह 'अयोध्या' नगरी है मानव का शरीर। इसी के भीतर स्वर्ण की भाँति चमकता हुआ एक कोश है। उसके भीतर अनन्त ज्योति मे लिपटा हुआ वह स्वर्ग रहता है।

इस स्वर्ग को पाने के बाद मानव को ऐसा आनन्द मिलता है, जैसा इस दुनिया मे या किसी भी दुनिया मे और कहीं है नही। जिससे बडा कोई आनन्द नही, जिसे प्राप्त करने के बाद कुछ भी प्राप्त करना शेष नही रहता, सब दुख मिट जाते है, चिन्ताएँ मिट जाती है, अशान्ति मिट जाती है, यो अनुभव होता है कि सैकडो मील से दौड-दौडकर आता हुआ नदी का पानी अनन्त सागर के अथाह जल मे मिलकर शान्त हो गया हो।

यह सब-कुछ मैंने उन्हे बताया। दूसरी बातें भी बताई। अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजी मे उन्हे बताया कि यथार्थ योग क्या है? वेद क्या है? और वह कहता क्या है? तो कितने ही लोग मेरे पास आए। बोले, "वेद क्या अग्रेजी भाषा मे मिलता है?"

तो मैं क्या उत्तर देता उनको?

यह काम था आर्यसमाज का। कहने को नारे लगाए गए

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।

सारी दुनिया को आर्य बनाओ। किन्तु सौ वर्ष हुए हैं आर्यसमाज की स्थापना हुए और अभी तक वेद का अग्रेजी अनुवाद ही नही हुआ। कुछ इक्के-दुक्के लोगो ने थोडा-बहुत परिश्रम किया है अवश्य, किन्तु यह है बहुत बडा काम। आर्यसमाज को एक संस्था के रूप मे काम करना चाहिए था। आर्यसमाज की शिरोमणि सभाओ को वह काम करना चाहिए था, किन्तु सौ वर्षों मे किसी ने यह काम किया ही नही।

बाइबल का अनुवाद दुनिया की सभी भाषाओ मे है।

रणवीर अमेरिका गया तो वापस आकर उसने एक बात सुनाई। फिलाडेल्फिया एक बहुत बडा नगर है, अमेरिका का। इस नगर मे

अमेरिकावालों ने स्वतंत्रता की घोषणा की थी। इसी नगर में रणवीर एक अमेरिकन सज्जन के यहाँ भोजन करने गया, तो उन्होंने रणवीर को अपना निजी पुस्तकालय दिखाते हुए कहा, "इस पुस्तकालय में केवल बाइबल की पुस्तकें पड़ी हैं। प्रत्येक बाइबल भिन्न-भिन्न भाषा में है।" इस सज्जन ने रणवीर को बताया कि प्रतिवर्ष वह एक भाषा की बाइबल का अनुवाद कराता, उसे छपवाता, एक प्रति अपने पास रखता और शेष प्रतियाँ बिना मूल्य बाँट देता है। रणवीर ने बताया कि वहाँ भारत की ऐसी-ऐसी बोलियों में बाइबल के अनुवाद विद्यमान हैं, जिनमें हमारे देश में सम्भवत: एक भी पुस्तक लिखी या छापी न गई हो। पश्तो में, पोठोहारी में, मुलतानी भाषा में, डोगरी भाषा में, पहाड़ी भाषा में, हरयानवी में, मारवाड़ी में और ऐसी कितनी ही बोलियों में।

अब बताइये कि हम अंग्रेज़ी में भी वेद का अनुवाद नहीं कर सके तो वेद-प्रचार के सम्बन्ध में हमारा दावा कहाँ तक ठीक है?

मैं मद्रास में था। वहाँ कई लोग मुझे मिले। बोले, "हम वेद को पढ़ना चाहते हैं, किन्तु वह तमिल भाषा में हो, तभी पढ़ सकते हैं। तमिल भाषा में वेद हों तो हमें भेजें।"

दुनिया के दूसरी ओर बैठे ईसाइयों ने बाइबल का अनुवाद इस देश की प्रत्येक भाषा और बोली में कर दिया है, और हम अपने ही देश की प्रमुख भाषाओं में भी वेद का अनुवाद नहीं कर सके। यह कार्य आर्यसमाज को करना चाहिए था। और आर्यसमाज हिन्दी के कुएँ में गिरकर गोते खा रहा है। देखो भाई! इससे हिन्दी का प्रचार तो हो जाएगा, वेद का प्रचार कभी होगा नहीं। और वेद का प्रचार हुए बिना वह विचारधारा पैदा नहीं होगी जो दुनिया को बचा सकती है, मनुष्य को सच्चा सुख दे सकती है, शान्ति दे सकती है।

विचार की शक्ति महान् है। इसलिए साधक के लिए आवश्यक है कि वह जहाँ ज्ञानवान्, श्रद्धावान् और तपस्वी हो, वहाँ सद्विचार-वान् भी हो। साधक के लिए पाँचवीं आवश्यक बात यह है कि वह

प्रेमी हो। उसके दिल मे प्रेम का अथाह सागर उमड़ता हो। यह प्रेम क्यो आवश्यक है ? इसलिए कि जबतक किसी आदमी को दूसरे आदमी से, आदर्श से, सिद्धान्त से प्यार न हो, तबतक वह उसके लिए यत्न करने मे अति नही करता। और जबतक प्रयत्न मे अति न हो तबतक उस प्रेमशक्ति के दर्शन नही होते। मजनूं ने किया था प्रेम। लोग उसे पागल कहते रहे। शहर से निकाल दिया उसे। तपते हुए मरुस्थलों में वह घूमता रहा। वहाँ भी लोग उसे देखते तो पत्थर मारते, किन्तु इन सभी दु खों के बावजूद वह कभी लैला को नही भूला। इससे कुछ लोगो को तरस आया। यह विचार भी आया कि इस दीवाने को कुछ देने से भगवान् प्रसन्न होगे। किसी ने उसके फटे हुए कपड़े उतरवाकर उसे नए कपड़े बनवा दिये, मजनूं थोडी देर वह कपडे पहने रहा। फिर 'लैला-लैला' कहता हुआ कपड़े फाडकर चला गया। इस बात को देखकर कई लोग अपने-आपको मजनूं कहने लगे। लोगों ने उन्हे कपडे दिये, खाना दिया ; लैला का नाम लेकर वे मोटे होने लगे। किसी ने लैला को कहा, "लैला। तेरा मजनूं तो खूब खाता-पीता, अच्छे कपड़े पहनता है। मोटा हो गया है।" लैला बोली, "ऐसा हो नही सकता। तुमने किसी दूसरे को देखा होगा।" उस आदमी ने कहा, "नही, वह कहता है कि वही मजनूं है। मैं स्वयं उसे दूध पिलाकर आया हूँ।"

लैला बोली, "जिसे दूध पिलाकर आए हो, उसे जाकर बोलो कि लैला तुम्हारा खून माँगती है। यह है प्याला, इसमे उसका खून ले आओ। किन्तु देखो, यदि वह सचमुच खून निकालने का प्रयत्न करे तो उसे रोक देना।"

वह आदमी प्याला लेकर उस मोटे-ताजे मजनूं के पास पहुँचा। बोला, "तुम मजनूं हो न ?"

उस मोटे-ताजे मजनूं ने कहा, "हाँ, मजनूं हूँ।"

वह आदमी बोला, "लैला तुम्हारा खून माँगती है, इस प्याले मे।"

उस मोटे मजनूं का रंग उड गया। फीकी-सी हँसी हँसते हुए वह बोला, "अजी, वह मजनूं तो मैं नही, मैं तो ऐसे ही मजाक कर रहा

था। वह मजनूँ तो परले गाँव के पास वाले जंगल में है।"

वह आदमी उस जंगल में पहुँचा। वहाँ एक और मोटा-ताजा आदमी मिला। उसने भी कहा, "मैं ही मजनूँ हूँ।"

किन्तु जब खून माँगा गया तो बोला, "नहीं श्रीमन्! वह मजनूँ तो अमुक जंगल में है।" ऐसे ही कई लोगों के पास वह पहुँचा। सब खा-नाकर मोटे हो रहे थे। सबने यह कहकर खून देने से इन्कार कर दिया कि मैं तो मजनूँ नहीं।

और जब आदमी वापस आता हुआ मरुस्थल से गुजरा तो फटे कपड़े पहने, दुबला-पतला, सूखा हुआ एक आदमी उसे एक वृक्ष के नीचे बैठा मिला। उसके समीप से गुजरते हुए उसने कहा, "कौन हो तुम?"

दुबले-पतले आदमी ने आँख उठाकर पूछा, "मैं? किंतु तुम कौन?"

लैला के पास से आए हुए आदमी ने कहा, "मुझे लैला ने भेजा है मजनूँ के पास।"

दुबला-पतला मजनूँ एकदम खड़ा हो गया और पागलों की तरह बोला, "सन्देश लाए हो उसका? क्या कहा है लैला ने?"

उस आदमी ने कहा, "उसने कहा था, 'मजनूँ से उसके खून का एक प्याला ले आओ', लैला को आवश्यकता है।"

मजनूँ ने आव देखा न ताव, पास रखे तेज चाकू से अपनी बाँह को लहूलुहान करता हुआ बोला, "ले जाओ यह खून। लैला को आवश्यकता है तो सब-का-सब ले जाओ।"

लैला के पास से आए हुए आदमी ने घबराकर कहा, "नहीं-नहीं, खून नहीं चाहिए। बन्द करो बाँह को काटना! मैं तो केवल परीक्षा ले रहा था।"

यह है प्रेम की पराकाष्ठा! जो प्रेम करता है, वह अपने लिए सोचता नहीं। प्रीतम की तुलना में उसे प्रत्येक वस्तु तुच्छ दिखाई देती है। वह न दिन देखता है, न रात। बड़े-से-बड़ा संकट उसे खेल मालूम होता है। तुलसीदास जी ने भी तो प्यार किया था। रत्नावली

से हुआ उनका विवाह। अपनी पत्नी से वह पागलों की तरह प्यार करने लगे। पत्नी मायके गई तो उनके लिए जीना दूभर हो गया। अँधेरी रात में एक उफनती नदी को पार करके रत्नावली के मायके पहुँचे। एक रस्से को पकड़कर रत्नावली के कमरे में पहुँचे। रत्नावली ने चकित होकर पूछा, "आप इस समय, इस भयंकर रात में!"

तुलसीदास बोले, "तुम्हारे बिना जी नहीं लगा। इसीलिए चला आया।"

रत्नावली ने पूछा, "किन्तु किस तरह आए? नदी में बाढ आई हुई है। रात के समय नाव भी नहीं पडती। और फिर इस कमरे में इस खिडकी से कैसे आए?"

तुलसीदास बोले, "नदी में एक लट्ठा बहता जा रहा था, उसे पकड़-कर तैरता हुआ किनारे लगा। और तुमने जो रस्सा लटका रखा है, उसे पकडकर इस कमरे में।"

रत्नावली ने कहा, "रस्सा? मैंने तो कोई रस्सा नहीं लटका रखा। देखूं तो!" और दीपक लेकर उसने देखा कि खिडकी से वास्तव में एक रस्सा-जैसा लटक रहा है। किन्तु वह रस्सा नहीं, एक काला साँप था। घर से बाहर, नदी के किनारे जाकर उसने देखा कि जिसे लट्ठा समझकर तुलसीदास जी नदी पार कर आए वह एक शव है।

वापस आकर उसने कहा, "यह क्या किया आपने? जिसे आप लट्ठा समझे वह एक शव था और जिसे रस्सा समझे वह भयंकर विषधर साँप। यदि वह आपको काट लेता?"

तुलसीदास हँसते हुए बोले, "प्रेम भय को नहीं देखता। वह मृत्यु से नहीं डरता।"

रत्नावली ने कहा, "ऐसा प्यार आपका भगवान् से हो तो बेड़ा पार हो जाय।"

तुलसीदास चौंक उठे; बोले, "क्या कहा?"

रत्नावली बोली, "यह कि ऐसा प्यार भगवान् से हो तो आपका बेड़ा पार हो जाय।"

तुलसीदास जी ने कहा, "एक बार फिर कहो रत्नावली !"

रत्नावली ने फिर वही बात दोहराई। तब तुलसीदास हाथ जोड़कर बोले, "आज से तू मेरी गुरु है। मेरी पत्नी नहीं। आज से मैं भगवान् राम को प्यार करूँगा। किसी दूसरे को नहीं।"

और यह प्यार इतना बढ़ा कि तुलसीदास वृन्दावन में पहुँचे। भगवान् कृष्ण की मूर्ति को देखा तो हँसकर बोले :

कर मुरली कटि काछनी, भले बने हो नाथ !
तुलसी मस्तक तब नवे जब धनुष-बाण लो हाथ ॥

प्यार करनेवाले को दूसरी बात सूझती नहीं। जिसे वह प्यार करता है उसके लिए अपना सब-कुछ न्योछावर कर देता है। अपने-आपको उसके अर्पण कर देता है। इस आत्म-समर्पण की बात ही गायत्री मंत्र में कही गई है :

धियो यो नः प्रचोदयात् ।

आदमी को फल मिलता है कर्म से। कर्म होता है विचार से। विचार उत्पन्न होता है बुद्धि से। इसलिए गायत्री मंत्र को पढ़ता हुआ भक्त कहता है, 'प्रभु, मेरी इस बुद्धि को जैसे तू चाहता है, वैसे ही प्रेरित कर। जिस मार्ग पर तू ले-जाना चाहे, उस मार्ग पर ले चल। मेरी अपनी कोई इच्छा नहीं, कुछ भी मुझे सोचना नहीं है। मैंने अपने-आपको तुझे समर्पित कर दिया। अब तू जैसे चाहे वैसे कर।'

सपुर्दम बतो माय: ख़्वीशरा ।
तू दानी हिसाबे कमो-बेशरा ॥

सौंप दिया मैंने अपने-आपको तुझे, अब कम और अधिक का हिसाब तू कर। यह है प्रेम ! यह वणिक्-वृत्ति नहीं, अपना सब-कुछ दे देना है। तन-मन, सिर-धड़-सब-कुछ।

प्रेम न बाड़ी ऊपजे, प्रेम न हाट विकाय ।
सिर ही इसका मोल है, सिर देदे ले जाय ॥

और हम चाहते हैं कि देना कुछ न पड़े, मिल जाए सब-कुछ। कैसे मिलेगा भाई ? महात्मा तो कहते हैं :

जो तोहे प्रेम करन का चाव।
सिर धर तली गलीमोरी आव॥

और सिर देने की बात तो अलग, तुम तो लोभ की गठरी भी सिर से नही उतारते तो इस कुएँ से बाहर कैसे निकलोगे ? एक आदमी गिर गया कुएँ मे। लोभी बहुत था। लेना हीं जानता था, देना नही। कुछ लोगो ने उसे कुएँ मे गिरा देखा तो कहा, "हाथ दे, हम तुझे ऊपर खीच लेते हैं।"

वे कहते रहे किन्तु वह हाथ ऊपर नही करता था। एक स्याना वृद्ध निकला उधर से। उसने पूछा, "क्या बात है ? क्या कर रहे है आप यहाँ ?"

किसी ने कहा, "एक आदमी गिर गया है कुएँ में। हम उसे कहते है कि हाथ दे, तुझे ऊपर खीच लेते है किन्तु हाथ ही नही देता।"

उस बूढे ने कुएँ मे गिरे व्यक्ति को देखा तो हँसता हुआ बोला, "एक ओर हो जाओ, मैं निकालता हूँ इसे।"

और वह कुएँ मे हाथ नीचे करके बोला, "ले भाई, मेरा हाथ ले।"

और कुएँ मे गिरे आदमी ने तत्काल उसका हाथ पकड़ लिया। बाहर आया।

स्याने ने हँसते हुए कहा, "तुम लोग समझे नही, यह आदमी लोभी है। लेना ही जानता है। देखा नही आपने ? आप उससे हाथ माँग रहे थे, उसने जीवनभर कुछ दिया नही। फिर आपको वह अपना हाथ कैसे देता ?"

ऐसे हैं आजकल के प्रेमी ! देना कुछ नही, लेना-ही-लेना।

प्रियतम दर्शन तब मिले, जो शीश दक्षिणा दे।
लोभी शीश न दे सके, नाम प्रेम का ले॥

ऐसे नही होते दर्शन, इसे नही कहते प्रेम। प्रेम का अर्थ है त्याग। जिसके लिए प्यार है, उसके लिए सब-कुछ त्याग देना। सीता जी को प्रेम था भगवान् राम से। उनके लिए उन्होने राजमहल का सुख छोड़ दिया। वनवासिनी होकर जगलों, निर्जन प्रदेशो मे घूमती फिरी।

जंगलों में रेंगनेवाले साँपों, गर्जनेवाले हिंसक जानवरों, उमड़ते तूफानों, अँधेरी रातों, चिलचिलाती दोपहरियों, और हज़ारों कष्टों की उन्होंने चिन्ता नहीं की। आजकल की प्रेम करनेवाली होती तो कहती, "अच्छा मिस्टर, वनवास तुम्हें मिला है, मुझे नहीं। तुम चौदह वर्ष जंगल में मौज मनाओ, मैं घर में आराम करूँगी।" किन्तु सीताजी ने जो कुछ किया, वह तो इतिहास के पृष्ठों में लिखा है। रावण ले गया, बन्दी बना दिया। एक ओर वनवासी राम, जिनके पास रात को सोने का ठिकाना नहीं, दिन को खाने का जुगाड़ नहीं। जंगल के फल, कन्द-मूल इकट्ठे करो तो खाओ। न मिले तो उपवास रखो। दूसरी ओर सोने की लंका का स्वामी रावण। कितने ही राजा-महाराजा उसका नाम सुनकर थर-थर काँपते थे। कितने ही प्रलोभन उसने सीता जी को दिये। किन्तु सीता जी ने एक ही उत्तर दिया—सीता के लिए राम के अतिरिक्त दुनिया के सभी पुरुष पिता, पुत्र और भाई हैं। राम के अतिरिक्त सीता के लिए कोई पति नहीं।

कारावास के कष्ट स्वीकार किये सीता ने, अपने प्यार को कलंकित नहीं होने दिया।

और उस प्रेम दीवानी मीरा ने भी तो कहा था :

जाके सिर मोर मुकट मेरो पति सोई।
अब तो बात फैल गई, होनी हो सो होई॥

विष के प्याले ने उसे भयभीत नहीं किया। विषधर सर्पों ने भी भयभीत नहीं किया। लोगों की आलोचनाओं ने भी नहीं।

और भी ऐसे कितने ही उदाहरण हैं। किन्तु आजकल का प्यार कुछ दूसरे प्रकार का है। भगवान् बचाए इस प्यार से। कुछ पढ़े-लिखे लड़कों के नखरे, कुछ पढ़ी-लिखी लड़कियों के। रिश्ते-नाते में जरा कठिनाई आने लगी तो नवयुवक लड़के और लड़कियों ने कहना प्रारंभ कर दिया, 'अब हम अपने रिश्ते-नाते आप ही कर लेंगे। बड़ों को बीच में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं।' और किस तरह होते हैं ये रिश्ते-नाते? लड़के 'गर्ल फ्रेंड' बनाए फिरते हैं, और लड़कियाँ 'ब्वॉय-

फ्रेंड'। एक-एक नही, कई-कई। और फिर—

जिस जगह पर जा लगो वो ही किनारा हो गया।

जहाँ बात पक्की हो गई, वही शादी हो गई। ऐसी शादी का नाम इन लोगो ने रखा है, 'लव मैरिज'। मैं कहता हूँ जिसके बाद शादी हो जाए और शादी के लिए प्रेम किया जाए, वह प्रेम नही, मात्र काम-वासना है और काम-वासना स्वार्थ का दूसरा नाम है। जिस प्रेम का लक्ष्य ही स्वार्थ है, उसे प्रेम कौन कह सकता है ? प्रेम तो त्याग के आधार पर होता है, स्वार्थ के आधार पर नहीं। किन्तु आजकल ऐसा ही स्वार्थ का प्रेम होता है, शादियाँ होती हैं। कभी निभ जाती हैं, कभी नही भी। ऐसे ही एक विवाहित जोडे की बात एक सज्जन ने मुझे बताई। शादी के कुछ ही महीनों के बाद पति का मुँह उधर, पत्नी का मुँह इधर। पत्नी ने क्रोध मे जलकर कहा, 'वे दिन याद हैं तुम्हें, जब दीवानों की तरह मेरे पीछे-पीछे फिरते थे ? कहते थे मैं पागल हो गया हूँ।" पति ने चिढकर कहा, "ठीक ही तो कहता था, पागल न होता तो तुम्हारे साथ शादी क्यो करता ?"

सुनो मेरे भाई ! यह प्रेम नही, कोरा स्वार्थ है।

'सत्यार्थ प्रकाश' मे महर्षि दयानन्द ने जगह-जगह पर प्रेम-भक्ति का उल्लेख किया है।

नारद ने इसको 'अनन्य भक्ति' कहा है।

योगदर्शन ने इसको 'ईश्वर प्रणिधान' कहा है।

नाम कुछ भी हो, अभिप्राय यह है कि ईश्वर को पाना है तो पहले उससे प्रेम करो, इतना उत्कट प्रेम कि उसके सिवा दूसरी कोई वस्तु अच्छी न लगे। कई सज्जन मुझे कहते हैं, "स्वामीजी, हम ध्यान में बैठते तो हैं, किंतु मन टिकता नहीं। इधर-उधर भागता फिरता है।"

अरे भाई ! भागता न फिरे तो और क्या करे ? जिस प्रेम से ध्यान लगता है, जिसके कारण प्रेम के अतिरिक्त दूसरी कोई बात अच्छी नहीं लगती, सूझती नही, वह तुम्हारे पास है नहीं, और दोष देते हो मन को ! यह मन तो जड़ है। इसका क्या दोष ? इसे वश करना है

तो प्रियतम से प्रेम उत्पन्न करो।

मन पंछी तब लग उड़े, विषय-वासना माहिं।
प्रेम बाज की झपट में, जब लग आया नाहिं॥

मन में प्रेम हो तो मन केवल प्रीतम की ओर देखता है। इधर-उधर कहीं जाता नहीं। इस प्रेम को मन में जगाओ। फिर देखो, ध्यान लगता है या नहीं। प्रेम है नहीं, बैठ गए भजन करने। तब मन बेचारा इसके सिवा क्या करे कि जिन चीजों से आपको प्रेम है, उनकी ओर भागता फिरे! प्रेम के बिना ध्यान लगता नहीं और प्रेम हो तो ध्यान हटता नहीं। यह अनन्त श्रद्धा, अनन्त प्रेम जाग उठे तो फिर बेड़ा पार हो जाता है:

ज्यों तिरिया पीहर बसे, और सुरत रहे पी माहिं।
ऐसे नर जग में रहे, और प्रभु को बिसरे नाहिं॥

अभी मजनूँ की बात सुनाई न आपको। एक बार वह बहुत बीमार हो गया। हकीम आया, उसने देखा, अच्छी तरह परीक्षा करके उसने कहा, "इसका कुछ खून निकालना होगा। नस काटनी होगी इसकी।"

मजनूँ के दोनों हाथ बाँध दिये गए।

हकीम जी अपनी छुरी तेज़ करने लगे।

मजनूँ बोला, "उस्ताद, यह क्या करते हो?"

हकीम ने कहा, "तेरा खून निकालना है। इस छुरी से नस काटकर तेरा खून निकालूँगा। तू अच्छा हो जाएगा।"

मजनूँ बोला, "उस्ताद! तुझे दो रुपए लेने हैं न! मुझसे ले-जा। खून निकालने का विचार छोड़ दे और अपने घर जा।"

हकीम ने कहा, "मैंने सुना था कि मजनूँ तो बहुत बहादुर है। जंगलों और मरुस्थलों में घूमता फिरता है, सिंहों और सर्पों से भी डरता नहीं। और आज इस छोटी-सी छुरी को देखकर डर गया?"

मजनूँ बोला, "सुनो, मैं न छुरी से डरता हूँ न खून निकालने से। लैला माँगे तो खून की एक-एक बूँद उसके लिए दे सकता हूँ। किन्तु

मेरी छाती में, दिल में, मेरी नस-नस में, नाडी नाडी में, रग-रग में बसी हुई है लैला। मुझे डर है कि तुम छुरी लगाओगे तो कहीं उसको यह छुरी न लग जाय, उसको कष्ट न हो।"

यह होता है प्रेम!

अकबर बादशाह चला गया शिकार को। उसके पास अनेक मन्त्री, दरबारी और सरकारी कर्मचारी थे। किन्तु कभी-कभी वह अकेला भी चल पडता था। इस बार भी अकेला चल पडा। जगल मे पहुँचा। नमाज़ का समय हुआ तो घोडे से उतरा। उसे एक वृक्ष से बाँधा, नमाज़ के लिए कपडा बिछाया और नमाज़ पढने लगा।

मुसलमानो से यह बात सीखनी चाहिए। नमाज़ का समय आ जाए तो कुछ भी वह करते हो, सब छोड-छाडकर पहले नमाज़ मे बैठ जाते हैं। और ये हिन्दू? न सध्या का समय है इनके लिए, न भजन का। सध्या का समय हुआ तो ये मीटिंग शुरू कर देते हैं, क्लब को चल देते हैं। बाकी सब बातो के लिए उनके पास समय है, भगवान् का भजन करने के लिए नही। किन्तु इसे छोडो, यह दूसरी बात है।

अकबर बैठा था नमाज़ मे, तभी एक नवयुवती, नवविवाहिता ग्रामीण लडकी दूसरी ओर से आई। पास के किसी गाँव में रहती थी वह। पति गया खेत में काम करने को। देर हो गई, घर वापस नही लौटा। नवयुवती पत्नी उसकी राह देखती रही। जब बहुत देर होने पर भी वह नही आया तो घबराकर घर से चल पडी। इधर-उधर देखती हुई तेजी से आगे बढी। उसकी निगाहें अपने पति को खोज रही थीं। अकबर को उसने देखा नहीं। उसके जमीन पर बिछे कपडे को भी नही देखा। तेजी के साथ एक ओर से आई, नमाज़ के कपडे पर पाँव रखती हुई दूसरी ओर निकल गई। अकबर को क्रोध तो बहुत आया किन्तु वह नमाज़ पढ रहा था इसलिए उस समय चुप रहा। कुछ ही देर बाद यह लडकी अपने पति को लेकर वापस आई। अकबर नमाज़ पढ चुका था। वह गर्जकर बोला, "उद्दण्ड लडकी, यह तूने क्या किया?"

लड़की ने पूछा, "क्या किया जी ?"

अकबर बोला, "मैं यहाँ नमाज पढ़ रहा था, तू उधर से आई, मेरे नमाज के कपड़े पर गन्दे पैर रखती हुई चली गई।"

लड़की ने फिर पूछा, "आप नमाज पढ़ रहे थे ?"

अकबर क्रोध के साथ बोला, "नमाज ही तो पढ़ रहा था, और क्या कर रहा था ?"

लड़की ने कहा, "सुनो महाराज !

नर राची सूझी नहीं, तुम कस लख्यो सुजान ?
कुरान पढ़त बौरे भए, नहीं राच्यो रहमान।"

'अरे, मैं तो अपने पति के प्रेम मे दीवानी हो रही थी। उस प्रेम के कारण मुझे तुम्हारी नमाज की चादर दिखाई नहीं दी। और तुम ईश्वर को याद कर रहे थे, तुमने मुझे कैसे देख लिया ? कुरान पढ़ा तुमने बहुत, किन्तु अभी तक रहमान के लिए गहरा प्रेम नहीं रचा तुम्हारे मन में।'

यह बात कि प्रियतम के सिवा दूसरा सूझे नहीं, केवल प्रेम से पैदा होती है। और बात पैदा हो जाए तो भक्त मस्ती में भरकर कहता है :

प्रभुजी, तुम चन्दन हम पानी।
जाकी अँग-अँग बास समानी॥
प्रभुजी, तुम घन बन हम मोरा।
जैसे चितवत चन्द चकोरा॥
प्रभुजी, तुम दीपक हम बाती।
जाकी जोत जले दिन-राती॥
प्रभुजी, तुम मोती हम धागा।
जैसे सोने मिला सुहागा॥
प्रभुजी, तुम स्वामी हम दासा।
ऐसी भक्ति करे 'रैदासा'॥

यह भक्त रैदास जी का शब्द है। यह दशा हो तो मन क्यों नहीं लगेगा ? ऐसा दशा में सब ओर प्रभु प्रियतम ही दिखाई देता है।

दादू महाराज ने गलत नही कहा है :

आज्ञा अपरंपार की, वसी अंबर भरतार।
हरे पीताम्बर पहर कर, धरती करे सिंगार ।।
वसुधा सब फूले फले, पृथ्वी अन्त अपार।
गगन गर्ज जल-थल भरे, 'दादू' जै-जैकार ।।

'बरसात आ गई। आकाश मे वादल गर्ज उठे। मूसलाधार वर्षा होने लगी। हर ओर हरियाली छा गई और प्रभु के भक्त को ऐसा लगा कि वादल प्रभु प्रियतम है। धरती उसे प्यार करती है। वादल का पानी नीचे आया, धरती जलमयी हो गई। इसलिए धरती ने हरा सिंगार कर लिया। हर ओर जय-जयकार होने लगी।'

ऐसे प्रेमी के सम्बन्ध मे कबीर जी ने कहा था :

अँखड़ियाँ तो झाईं पड़ी, पंथ निहार-निहार।
जीभड़ियाँ तो छाला पड़ा, नाम पुकार-पुकार ।।

इसलिए मेरे भाई! प्रभु का दर्शन पाना है तो प्रभु से प्रेम करो। प्रेमी बनो।

इसके बाद आवश्यक है कि प्रसन्न-चित्त बनो। हर घड़ी रोते न रहो। एक बूढी माता मेरे पास आई; बोली, "और तो कोई चिन्ता नही, किन्तु यह चिन्ता अवश्य है कि प्रभु के दर्शन नही होते।"

मैंने हँसकर कहा, "यह भी अजीब तमाशा है! तुम्हे यह चिन्ता लग गई। अरे भई, यह चिन्ता भी छोड़ दो। तुम्हारा काम यत्न करना है। फल देना उसके हाथ मे है। वह देगा अवश्य! कब देगा? यह वही जानता है। यत्न करते रहो। एक-न-एक दिन दर्शन भी हो जाएँगे। बाहर की आँख से नही, भीतर की आँख से।"

और सुनो, यह बात कि दर्शन होंगे या नही, इसकी चिन्ता भी न करो। मैं नही कहता, भगवान् कृष्ण कहते है :

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय!
सिद्धचसिद्धचो समं भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।

'योग के मार्ग पर चलते हुए कर्म करते जाओ। फल की इच्छा को

छोड़ दो। असफलता और सफलता, दोनों को बराबर समझकर आगे बढ़ो। यह दोनों का बराबर समझना ही योग है।'

एक और सज्जन मिले। उन्हें देश की चिन्ता ही खाए जाती है; बोले, "देखो न स्वामीजी, क्या होगा देश का? हर ओर अशान्ति, कानून तोड़ना, शान्ति-भंग करना, घूसखोरी, मिलावट, स्वार्थ, हिंसा, घृणा......"

मैंने कहा—देश की दशा सुधारने के लिए चिन्ता की नहीं, पुरुषार्थ की आवश्यकता है। आँसुओं की नहीं, कर्म करने की आवश्यकता है। तुम्हारा काम है, पुरुषार्थ करना। सच्चे दिल से, पूरे परिश्रम से पुरुषार्थ करो और इस चिन्ता को छोड़ दो कि क्या होगा या क्या नहीं होगा। यह दुनिया है न! यहाँ सुख-दुःख, अच्छा-बुरा सदा रहे हैं और सदा रहेंगे।

या खून पसीना करके बहा,
यह तान के चादर सोता जा॥
या नाव तो चलती जाएगी।
तू हँसता रह या रोता जा॥

यह तो ऐसे ही चलता रहा है। सदा यह बीमारी, यह वियोग, यह हार-जीत, ये तो सदा ही रहते हैं।

देह धरे का दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान कर, मूर्ख भुगते रोय॥

मूर्ख बनना है तो रोओ। ज्ञानी बनना है तो पुरुषार्थ करो। रोना बन्द करो, प्रसन्न रहो कि तुम अपने कर्तव्य को पूरा कर रहे हो।

याद रखो, हँसने से दिमाग की बारीक-से-बारीक नसें खुल जाती हैं। ये नसें बाल से भी अधिक बारीक हैं। इन्हें खोलने, मस्तिष्क और बुद्धि को स्वस्थ रखने का दूसरा कोई उपाय नहीं। इसलिए महर्षि व्यास ने कहा है:

प्रसन्नं एकाग्रं स्थितिपदं लभ्यते।

जो प्रसन्न है, उसका मन एकाग्र होता है। जिसका मन एकाग्र

होता है, वह समाधि की अवस्था को प्राप्त करता है।'

जो प्रसन्न है नहीं, जिसके मन मे दु.ख, द्वेष, ईर्ष्या, चिन्ता के ववण्डर उठ रहे हैं वह प्रभु का ध्यान कैसे करेगा ? और ध्यान नही करेगा तो उस आनन्द को कैसे पाएगा जिसके सम्बन्ध में दादू ने कहा है :

प्रेम लहर की पालकी, आतम बैठे आई।
दादू खेले पियत सों, यह सुख कह्या न जाई।।

'प्रभु का झूला है। आत्मा उसके ऊपर विद्यमान खेलती है अपने प्रियतम परम पुरुष परमेश्वर से। तब जो सुख होता है, जो आनन्द मिलता है, उसका वर्णन कोई नही कर सकता।'

और फिर महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी तो कहा है :

सर्वचिन्ता परित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते।

'जो हर समय प्रसन्न रहता है, जिसने सब चिन्ताओ का त्याग कर दिया है, वह चिन्ताओ से ऊपर उठा हुआ मनुष्य ही योगी है। उसी को योग की सिद्धियाँ प्राप्त होती है।'

एक घर मे मैं गया। अच्छा-भला घर, बहुत अच्छा पति, बहुत अच्छी पत्नी। पति थे दफ्तर मे। पत्नी दिनभर प्रसन्न रही। शाम हुई तो एकदम मुँह लटक गया। चेहरा ऐसा हो गया जैसे उदासी की घोर घटाएँ उमडी पडती हो, बस, रोने ही वाली हो। मैंने आश्चर्य से पूछा, 'बेटी, यह तुझे क्या हुआ ? अभी तो तू बहुत प्रसन्न थी ?"

वह बोली, "उनके आने का समय हो गया न !"

मैंने और भी आश्चर्य से पूछा, "उनके आने का समय हो गया तो प्रसन्न हो। तू उदास क्यो हो गई ?"

वह बोली, "मुझे उदास और दु.खी देखकर वे अच्छी साड़ी ला देंगे।"

मुझे हँसी आ गई। पति महाराज आए तो मैंने कहा, "क्यो जी, आप इन्हे वैसे ही अच्छी साडी क्यों नही ला देते ? केवल साडी के लिए यह उदास होती हैं। वैसे प्रसन्न रहती है।"

वह बोले, "वह तो ऐसी ही बातें करती रहती है, स्वामीजी ! ऐसी ही है वह।"

उधर उसका मुँह फूला हुआ, इधर इनका। पत्नी लाड़का, पति है मेरे भगवान् ! जिन परिवारों में यह हालत रहती है, वहाँ नरक जाग उठता है। जहाँ प्रसन्नता है, प्यार है, वहाँ स्वर्ग जाग उठता है।

और फिर यही नहीं, चिन्ता से शरीर भी बिगड़ता है। जिनके मन में चिन्ता है, ईर्ष्या, घृणा, और शत्रुता के भाव हैं वे कुढ़-कुढ़कर हड्डियों का पिंजर बन जाते हैं। उन्हीं लोगों का शरीर ठीक रहता है जो प्रसन्न रहते हैं और कहकहे लगाकर हँसते हैं। मानव-शरीर में बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दस हज़ार दो सौ एक नाड़ियाँ हैं। योगी लोगों ने योग के द्वारा उनकी गिनती की। कुछ इतनी मोटी हैं कि उनके भीतर से बड़ा बाँस निकल जाए, कुछ इतनी सूक्ष्म कि उनके भीतर एक बाल भी न घुस सके। शरीर को स्वस्थ रखना हो तो आवश्यक है कि सब-की-सब नाड़ियाँ प्रतिदिन साफ हों। किन्तु कैसे साफ हों ? शरीर के भीतर कोई नगरपालिका, कोई नगरनिगम, कोई सफाई का महकमा तो है नहीं। उन नाड़ियों को साफ रखने का एक ही उपाय है कि दिल खोलकर हँसो। यह है प्रसन्न रहने और हँसने का लाभ !

तो फिर हँसा करो न !

किन्तु नहीं भाई ! कुछ लोग कहते हैं कि बहुत जोर से हँसना सभ्यता के विरुद्ध है। यह सभ्यता हमें अंग्रेज सिखा गए कि सभा में बैठो तो बहुत जोर से हँसो नहीं। मैं तो इसे सभ्यता नहीं कहता ; पागलपन कहता हूँ। किन्तु तुम यदि इसी को सभ्यता समझे हो कि सभा में बैठकर हँसना नहीं तो मेरे भाई ! अपने स्नानागार में जाकर हँसा करो। अपने कमरे को बन्द करके हँसा करो। कोठे की छत पर चढ़कर हँसा करो। जंगल में जाकर हँसा करो। हँसा तो करो! प्रसन्न-चित्त रहोगे तो शरीर अच्छा रहेगा, बुद्धि तीव्र होगी, प्रभु का दर्शन मिलने में सरलता होगी।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसोह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।

'जो आदमी प्रसन्नचित्त रहता है उसके सभी दु ख स्वयमेव समाप्त हो जाते हैं। जो प्रसन्नचित्त है, उसकी बुद्धि बहुत शीघ्र एकाग्रता को प्राप्त कर लेती है।'

यह है प्रसन्नचित्त रहने का लाभ।

और चिन्ता से क्या लाभ है ?

चिता ज्वरो मनुष्याणां क्षुधां निद्रां बलं हरेत्।

'चिन्ता का ज्वर हो जाय तो उस आदमी की भूख मिट जाती है। नीद मिट जाती है। शक्ति का अन्त हो जाता है।'

अब बताओ, हँसना अच्छा है या चिन्ता ? क्यों भाई ! चिन्ता अच्छी है न ? कितना लाभ होता है उससे ? भूख समाप्त—खाने-पीने के पैसे बचे। नीद समाप्त—बिछौने-चारपाई की आवश्यकता नही। शक्ति समाप्त और जीवन को राम-राम करके श्मशान-भूमि मे पहुँच जाओ। कितनी अच्छी है चिन्ता ! है न ?

(किसी ने कहा, 'नही स्वामीजी! 'स्वामीजी बोले, 'तो हँसना अच्छा है न ?')

तो फिर हँसा करो न भाई ! छोड़ दो इन चिन्ताओ को। इनसे कुछ होनेवाला नही।

कुछ लोग मुझे मिलते हैं तो कहते हैं, "स्वामीजी, आप चले गए दुनिया से बाहर ! दुनिया मे तो चिन्ता होती ही है।"

मैं कहता हूँ, "दुनिया से बाहर कैसे चला गया मैं ? गगोत्तरी इसी दुनिया मे तो है ! होगी तुम्हारी दिल्ली से कोई तीन सौ मील दूर। दुनिया से बाहर कैसे हो गई वह ?"

वे कहते हैं, "जी, आप हैं संन्यासी, हम तो गृहस्थी हैं।"

किन्तु मेरी माँ, मेरे भाई, मेरे बच्चे ! यह सब-कुछ मैं गृहस्थी के लिए तो कहता हूँ ! गृहस्थ मे रहकर प्रसन्न रहो। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, शत्रुता, इन सबको छोड़ दो तो तुम्हारा जीवन सुखी हो जाएगा।

याद रखो! गृहस्थ आश्रम वह आश्रम है, जिसमें मनुष्य की पग-पग पर परीक्षा होती है। गृहस्थी के लिए आवश्यक है कि वह अपने लिए भी कमाए, परिवार के लिए, समाज के लिए, देश के लिए,—उनके लिए जो दुःखी है, सहायता के पात्र हैं, जो काम करने के अयोग्य हैं; सबके लिए। यह छोटी बात नहीं है। बहुत बड़ी बात है। और फिर उसे अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखना है, दूसरों के स्वास्थ्य का भी। अपनी रक्षा भी करनी है और दूसरों की भी। उसके लिए दुःख आते हैं, सुख आते हैं; रोग आते हैं, स्वास्थ्य आता है; अच्छे और बुरे अवसर आते हैं। इनमें से निकलते हुए उसे प्रभु के पास पहुँचना है। सब-कुछ करते हुए भी प्रभु को भूलना नहीं है। इन अनन्त परीक्षाओं से वह पार उतरना चाहता है तो सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि अपने-आप को प्रसन्न रखे।

अब कई लोग कहते हैं, खुश रहना कौन नहीं चाहता जी? कौन चाहता है कि उसे चिन्ताएँ चिमटी रहें? किन्तु क्या करें! चिन्ता आ जाती है।

मैं मानता हूँ कि चिन्ता आ जाती है। किन्तु वह आकर भी न आए, आए और वापस चली जाए, ऐसा उपाय बताऊँ आपको? सोचकर देखो, किसी को भी आना हो तो कहाँ आता है? जहाँ जगह खाली हो। अब आर्यसमाज का यह मण्डप है। पूरा भरा है। कुछ और भर जाय तो नए आनेवाले के लिए स्थान नहीं रहेगा। जो आएगा उसे विवश होकर बाहर खड़ा होना पड़ेगा, नहीं तो वापस जाना पड़ेगा। यही हाल मन के मण्डप का भी है। उसमें जगह खाली होगी, तभी तो चिन्ता अन्दर आएगी। इसे भरकर रखो, किन्तु किस चीज़ से से भरकर रखो? ईश्वर-विश्वास से। मन में यदि ईश्वर-विश्वास और ईश्वर-प्रेम भरा होगा तो चिन्ता आएगी, बाहर खड़ी होकर, चीख-चिल्लाकर चली जाएगी। यह अटूट विश्वास उत्पन्न करो मन में कि ईश्वर जो कुछ करता है, वह तुम्हारे भले के लिए करता है। वह तो ममताभरी माँ है। बच्चे का बुरा कभी चाहती नहीं। उसे नहलाती है,

धुलाती है, सजाती है, खिलाती है, पिलाती है, छाती से लगाकर लोरियाँ देती है, प्यार करती है, चूमती है और कभी-कभी जब बच्चा बुरे मार्ग पर चल पडे तो चपत भी लगा देती है। यह मैला हो जाए तो उसे रगड-रगडकर धोती भी है। यह सब-कुछ वह बच्चे के भले के लिए करती है। ऐसे वह प्रभु प्रियतम जगन्माता भी करती है। किसी का बुरा नही चाहती वह। सबको कल्याण की ओर ले जाती है। यह विश्वास उत्पन्न करो अपने मन मे—अमीरी हो या गरीबी, रोग हो या स्वास्थ्य, जीत हो या हार, मान मिले या अपमान, सबके बावजूद इसके लिए प्रसन्न-चित रहो कि यह सब तुम्हारे भले के लिए है। एक बार ऐसा विश्वास उत्पन्न करके तो देखो, फिर पता लगेगा आपको कि जीवन मे कितना आनन्द, कितनी मस्ती भर जाती है :

सारी दुनिया से हाथ धोकर देखो।
जो कुछ रहा-सहा है खोकर देखो॥
क्या अर्ज करूँ उसमे क्या लज्जत है।
इक बार किसी के होकर देखो॥

अरे! उसका पल्ला पकडो तो सही। यह अथाह अपार भवसागर, तूफान गर्जते हैं यहाँ, लहरें उठती हैं, भँवर पडते हैं, किन्तु उस ईश्वर में विश्वास का जहाज भी तो है। आ जाओ उस जहाज़ मे। तूफान गर्जेंगे फिर भी, लहरें उछलेंगी तब भी, भँवर घूमेगे तब भी, किन्तु तुम्हे उनसे कष्ट नही होगा। वे आएँगे, चले जाएँगे और तुम आगे बढते जाओगे। इसलिए मन मे मीठी मुस्कराहट लिये कि भगवान् का सहारा मेरे साथ है।

(और वे मस्ती-भरी आवाज़ मे गाने लगे—)

इन्साँ की अज़्म और हिम्मत से जब दूर किनारा होता है,
तूफाँ मे टूटी किश्ती का भगवान् सहारा होता है।

यत्न करो अवश्य, पसीना बहाओ, परिश्रम करो, पुरुषार्थ के मार्ग पर तप की भावना से आगे बढते जाओ। किन्तु फल क्या होना है और क्या नही होता, यह भगवान् पर छोड़ दो। फिर कोई चिन्ता नहीं

जाएगी।

महात्मा हंसराजजी ने एक बार अपने जीवन की एक बात सुनाई। अपना जीवन उन्होंने डी० ए० वी० कॉलेज को दान कर दिया था। माता-पिता धनवान् नहीं थे। निर्धनता की हालत में पढ़े। बजवाड़ा से होश्यारपुर पढ़ने के लिए आते। गर्मी के दिनों में बजवाड़ा के पास की बरसाती नदी सूख जाती और उसकी रेत आग की तरह तपने लगती। प्रतिदिन जलती दोपहरी में वह उसे पार करते। पाँवों में छाले पड़ जाते। इस तरह वह पढ़ते रहे। बड़े हुए तो लाहौर में आकर पढ़ने लगे। पढ़-लिखकर बहुत अच्छी नौकरी कर सकते थे। बहुत रुपया कमा सकते थे। पर वह सब-कुछ उन्होंने नहीं किया। अपना जीवन आर्यसमाज को और डी० ए० वी० कॉलेज को दान कर दिया। उनके बड़े भाई श्री मुल्कराज भल्ला ने यह हालत देखी तो उन्हें पचास रुपये प्रतिमास देने लगे। इन पचास रुपयों से महात्माजी और उनके सारे परिवार का खर्च चलता था। किन्तु घरों में कई बार ऐसी-वैसी बातें भी तो हो जाती हैं। ऐसी ही कोई बात हो गई। लाला मुल्कराजजी ने पचास रुपए देने बन्द कर दिए। अब महात्मा-जी क्या करते? पास कोई पूंजी तो थी नहीं। जेब में केवल छः आने थे। और घर में खाने को कुछ भी नहीं। शाह आलमी दरवाजा (लाहौर) के अन्दर एक आदमी भुने चने बेचता था। उसके पास पहुँचे। उन छः आनों के भुने चने ले आए। तीन दिन सारे परिवार ने भुने चने खाकर और पानी पीकर गुजारा किया। चौथे दिन यह चने भी समाप्त हो गए।

उन दिनों हालत यह थी कि महात्मा हंसराजजी का सब ओर विरोध हो रहा था। हर ओर से गालियाँ पड़ रही थीं। सभा-मंचों से इनके विरुद्ध भाषण हो रहे थे। पत्रों में इनके विरुद्ध लेख लिखे जा रहे थे और खूब गालियों से भरपूर।

याद रखो, जो लोग आर्यसमाज का काम करते हैं, उन्हें गालियाँ अवश्य पड़ती हैं।

मैंने आर्यसमाज का काम प्रारम्भ किया तो महात्माजी ने मुझे एक दिन अपने पास बुलाकर कहा, "देखो, तुम नवयुवक हो। आर्यसमाज का काम तुमने बडी तेजी से प्रारम्भ कर दिया है। तुम्हें यह बताना चाहता हूँ। यह काम करना है, तो रोटी खाओ घर से और गालियाँ खाना बाहर से, और काम करते रहना आर्यसमाज का।"

यह था उपदेश जो उन्होने दिया। और मैंने पल्ले बाँध लिया। अब आपको कैसे बताऊँ कि ये गालियाँ खाने मे भी एक मजा है—आत्मविश्वास और ईश्वर-विश्वास का मजा कि मैं अपना कर्तव्य कर रहा हूँ। गालियाँ पडती हैं तो पड। कठिनाइयाँ आती हैं तो आएँ।

किन्तु उस समय एक ओर बाहर की गालियाँ, दूसरी ओर घर की, यह हालत थी। महात्माजी ने मुझे बताया कि एक दिन मैं घबरा गया, सोचा कि मैंने तो सब-कुछ मन की शान्ति के लिए किया था, किन्तु यह तो विपत्ति बन गया।

घबराहट की स्थिति मे वह अपने छोटे-से कमरे मे जल्दी-जल्दी टहलने लगे। कमरे में एक ओर लकडी की एक अलमारी रखी थी। उसमे महात्माजी की पुस्तकें थी। एक पुस्तक निकाली, उसको ऐसे ही खोला। सबसे पहले जिन शब्दो पर दृष्टि पडी, उन्हे पढा। पुस्तक थी भगवद्गीता और शब्द थे .

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

'कर्म करने मे तुम्हारा अधिकार है। उसके फल के सम्बन्ध मे तुम्हारा कोई अधिकार नही।'

इन थोडे से शब्दो को पढते ही महात्माजी को ऐसे लगा कि मन का सारा बोझ उतर गया है। अँधेरे मे प्रकाश की किरण जाग उठी है। सब ओर शान्ति फैल गई।

इस प्रकार साधना के द्वारा अपने-आपको बनाओ।

ये सब बाहर की बातें कही मैंने। अब अन्दर लिये चलता हूँ आपको, जहाँ सत्य वस्तु है, जहाँ प्रभु के दर्शन होते हैं। भक्त कबीर ने कहा था :

मन मथुरा दिल द्वारका, काया काशी जान।
दसवाँ द्वारा देहरा, ता में ज्योति पछान ।।
कबीर दुनिया देहरे, शीश झुका दिन जाई।
पर्दे भीतर हरि बसे, ता से लौ ले लाई ।।

किन्तु कैसे जगती है यह ज्योति ? कैसे देखी जाती है ? आठ मंजिलें तय करने के बाद। ये आठ मंजिलें हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि।

कई लोग मेरे पास आते हैं। कहते हैं, "स्वामीजी, ध्यान लगाना सिखा दो।"

मैं हँसकर कहता हूँ, "मेरे भाई, यह तो सातवीं मंजिल है। एकदम सातवीं मंजिल पर कैसे पहुँचोगे ? पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, एक-एक करके सब मंजिलें पार करो, फिर सरलता हो जाएगी। और यदि छलाँग ही मारना चाहते हो तो मारो। सम्भवतः सातवीं मंजिल पर पहुँच जाओ।"

पिछले दिनों मैं देहरादून में था। प्रतिवर्ष योग का शिविर लगता है वहाँ। प्रातः तीन बजे लोगों को योग सिखाया जाता है। यम-नियम बताए जाते हैं। आसन लगाने की विधि सिखाई जाती है। प्राणायाम का ढंग और उसके बाद धीरे-धीरे ध्यान लगाने की विधि बताई जाती है। ध्यानावस्था में पहुँचकर ही मालूम होता है कि मानव-जीवन क्या है ? किसलिए है ? मानव-शरीर का महत्त्व क्या है ?

आपके इस दिल्ली नगर में रहती थी भक्त दयाबाई। आज से कोई तीन सौ वर्ष पहले उसने ध्यान के आनन्द को देखा और कहा :

बिन रसना, बिन माल कर, अन्तर सिमरन होय।
'दया' दया गुरुदेव की, बिरला जाने कोय ।।
हृदय-कमल में सुरत धर, अजप जपे जो कोय।
विमल ज्ञान प्रगटे तहाँ, कलमख डाले खोय ।।
जहाँ काल और ज्वाल नहीं, शीत, आसन न वैर।
'दया' देख निज धाम को, पायो भेद गंभीर ।।

पी को रूप अनूप लखी, कोटि भानु उजियार ।
'दया' सकल दुख मिट गयो, प्रगट भयो सुखसार ।।
बिना दामिनि उजियार अति, बिन घन परत फुहार ।
मगन भयो मनुआँ तहाँ, 'दया' निहार-निहार ।।

'जीभ नही हिलती, हाथ मे माला नही फिरती, फिर भी जाप होता है। हृदय-कमल मे ध्यान लगाकर, वह जाप जो जपा नही जाता, जिससे अनन्त ज्ञान जाग उठता है, सभी बुराइयाँ, सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, जहाँ काल स्थिर हो जाता है, जहाँ आग नही, गर्मी नही, सर्दी नही, वह है हमारा अपना धाम। इसका भेद पा लेता है ध्यान करनेवाला। वहाँ प्रियतम का परम सुन्दर, अनूप रूप दृष्टिगोचर होता है। जैसे एक साथ करोडो सूर्य चमक उठे हो। सब दु ख मिट जाते हैं तब। सुख का सागर जाग उठता है। वहाँ बिजली नही, किन्तु बिजली-जैसा अनन्त प्रकाश है। बादल नही, किन्तु यो लगता है जैसे बहुत मधुर शीतल फुहार पड रही है। तब मन मग्न हो जाता है, देखता रहता है उसे जिससे अधिक सुन्दर कुछ भी नही।'

यह स्थिति होती है ध्यान मे जाकर। इसीलिए कहा है .

भवतप्तेन तप्ताना योग परमसाधनम् ।

ऐ दुनिया की आग मे जलनेवाले लोगो, निराश मत होओ। तुम्हारे दु खो की, तुम्हारे कष्टो की, चिकित्सा है। वह स्रोत विद्यमान है जो इस ताप को शान्त कर देता है, जो अमृत की तरह मधुर और शीतल है, दुनिया के सभी दु खो की परम औषध है, परम साधन है, वह योग है।

तुम्हारे शरीर के भीतर तीन स्थान है—हृदय, आज्ञाचक्र और ब्रह्मरन्ध्र। तीनो मे से किसी एक जगह ध्यान लगाओ। हृदय है छाती के ऊपरवाले बाएँ भाग मे। आज्ञाचक्र है माथे मे, दोनो भौंहो के बीच। ब्रह्मरन्ध्र है तालु के ऊपर—मस्तिष्क की चोटी पर, सिर की हड्डी के नीचे।

भगवान् ने मानव-शरीर मे ये तीन विशेष स्थान बनाए है, जहाँ

चित्त की शक्तियों को टिकाया जा सकता है। ये वृत्तियाँ जब टिक जाती हैं तब कमाल होने लगता है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि एकड़-भर धरती पर उगी घास में, उसके एक-एक तिनके में इतनी बिजली विद्यमान है कि यदि उसे इकट्ठा किया जा सके और एक बड़े इंजन में पिस्टन पर केन्द्रित कर दिया जाय तो दुनिया-भर की मोटरें इस एक इंजन से चल सकती हैं। इतनी बिजली है केवल एक एकड़ धरती पर उगी घास में। किन्तु यह बिजली क्योंकि तिनके-तिनके में बिखरी पड़ी है, इसलिए किसी काम नहीं आती।

ऐसे ही चित्त की वृत्तियाँ बिखरी रहें, तो व्यर्थ हैं। एक स्थान पर केन्द्रित हो जायँ तो चमत्कार होने लगता है।

यह हृदय, यह आज्ञाचक्र, यह ब्रह्मरन्ध्र—तीनों में से किसी एक स्थान पर इन वृत्तियों को केन्द्रित करो, टिकाओ। इसका सरल उपाय है :

द्युमन्तं धीमहे।

किसी चमकती हुई वस्तु का, सूर्य का, चन्द्रमा का, बिजली के बल्ब का, धूप का, किसी भी वस्तु का ध्यान करो। आँखें मूँदकर उसे भीतर की आँखों से देखने का प्रयत्न करो। और तब :

ओ३म् इत्येतत् ध्यायेत आत्मनः ।

ओ३म् का ध्यान करो। किस प्रकार? कल्पना से—हृदय, आज्ञा-चक्र, ब्रह्मरन्ध्र में ओ३म् लिखो। वह मिट जाय तो फिर लिखो। फिर मिटे तो फिर लिखो, फिर लिखो, फिर लिखो। प्रतिदिन बीस-तीस मिनट तक ऐसे ही करते रहो। कुछ दिनों, सप्ताहों या महीनों के बाद तुम्हारी कल्पना से लिखा ओ३म् मिटेगा नहीं। तब आत्मा की आँख से टकटकी लगाकर उसे देखो, देखते रहो। थकान अनुभव हो तो थोड़ी देर के बाद फिर देखो, फिर देखो, फिर देखो।

तब एक समय आएगा, जब उससे ज्योति निकलती हुई दिखाई देगी। पहले यह ज्योति धुंधली, मैली-सी होगी—नीली, पीली, हरी,

कई रंग की ; कभी फीकी, कभी तेज। देखते रहो उसको, लगातार टकटकी लगाकर देखते रहो।

फिर एक समय आएगा, जब यह प्रकाश बिल्कुल शुभ्र, श्वेत, चमकता हुआ जगमगा उठेगा। बहुत तीव्र हो जाएगा। जैसे करोड़ों, अर्बों सूर्य एक-साथ चमक उठे हों। इसको भी देखते रहो। अभ्यास को छोड़ो नहीं।

तब एक दिन आएगा, जब यह प्रकाश तुम्हे हृदय से उठकर, कण्ठ के मार्ग से होता हुआ आज्ञाचक्र को लाँघकर, ब्रह्मरन्ध्र पहुँचता दिखाई देगा।

यह सब-कुछ मैंने आपको कुछ मिनटों में बता दिया। किन्तु इसका अभ्यास करने मे कम-से-कम डेढ वर्ष लगता है, कभी-कभी इससे अधिक भी।

कुछ लोग दो-तीन मास के बाद ही कहते हैं, "स्वामीजी, अभी तो कुछ हुआ नहीं। इतने मास हो गए। डेढ़-दो वर्ष कौन प्रतीक्षा करे?"

मैं कहता हूँ, "प्रतीक्षा नहीं कर सकते तो छोड दो भाई ! जाओ, दुकान पर बैठो, नमक, तेल, दाल, आटा, हल्दी बेचो।"

अरे, तुम डेढ-दो वर्ष की बात कहते हो, कई-कई जन्म बीत जाते हैं, इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए। इसके लिए जीवन देना पडे तो सस्ता सौदा है :

सिर दित्तिआँ जे प्रभु मिले,
ताँ वी सस्ता जान ॥

किन्तु सिर देता कौन है जी,

प्रेम-प्रेम सब कोई कहे, प्रेम न जाने कोय।
जा मारग साहब मिले, प्रेम कहावे सोय ॥

पहले अगनी बिरह की, पाछे प्रेम पियास ।
कहे कबीर तब जानिये, प्रभु मिलन की आस ॥

पहले यह सब-कुछ करो तब वह पवित्र प्रकाश मिलेगा । कभी इसतरह जैसे जुगनू जगमगाता हो, छिप जाता हो, फिर चमकने लगता हो ; कभी ऐसे जैसे आकाश में बिजली कौंध गई हो,—प्रकाश की एक रेखा दिखी और अन्धकार छा गया, फिर प्रकाश, फिर अन्धकार । कभी ऐसे जैसे बिजली के कितने ही बल्व जल उठे हों, और तब धीरे-धीरे वह समय आएगा, जब यह ज्योति टिकने लगेगी । लो भाई, सवा दस बज गए । अब शेष बात कल । ओ३म् शुभ !

छठा दिन

[आर्यसमाज पंजाबी बाग में पूज्य श्री महात्मा आनन्द स्वामीजी महाराज की कथा का आज अन्तिम दिन था या अन्तिम रात । क्योंकि कथा रात को सवा नौ बजे प्रारंभ होती और सवा दस बजे तक चालू रहती । पूज्य स्वामीजी महाराज की कथाओं के सम्बन्ध में मनोरंजक बात यह है कि कथा के पहले दिन सुननेवाले जितने लोग होते हैं, अन्तिम दिन उससे कई गुणा अधिक । इसका कारण सम्भवत: यह है कि जहाँ पूज्य स्वामीजी कथा करते हैं, वहाँ उतना प्रचार नहीं किया जाता, जितना किया जाना चाहिये । जनसाधारण समझते हैं कि दूसरी धार्मिक कथाओं की भाँति यह भी एक कथा है । कोई साधु आएगा, गाएगा नहीं, कीर्तन नहीं करेगा, उठ-उठकर नाचेगा नहीं ; केवल भाषण करेगा और चला जाएगा । इसलिए पहले दिन हज़ार-डेढ़-हज़ार लोग आते हैं । किन्तु जब वे देखते हैं कि यह दूसरे प्रकार की कथा है, इससे

दिल के दरवाज़े खुलते हैं, मन मे मस्ती आती है, तो वे स्वय कुछ दूसरे लोगो से कहते हैं। एक से दूसरे को और दूसरे से तीसरे को, इससे लोगों को सदेश मिलता है कि एक साधु आया है जिसने अपनी लाखो रुपये की सम्पत्ति को हंसते-खेलते, परिवार के लम्बे-चौडे व्यापार को इसलिए छोड दिया कि प्रभु का दर्शन पा सके, और जो प्रभु का दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् इसलिए जगह-जगह घूमता-फिरता है कि लोगों के मन को शान्ति दे सके, तो कुछ और लोग कथा मे आते हैं। तब और, फिर और, फिर और, और अन्तिम दिन इतनी भीड होती है कि उसका प्रबन्ध करना कठिन हो जाता है। आज का अन्तिम दिन था। आज श्रोताओं की सख्या बहुत अधिक थी। पूज्य स्वामीजी ने कथा को प्रारभ करने से पूर्व कहा—]

आओ भाई! एक बार मेरे साथ मिलकर गायत्री मन्त्र को पढ़ो :

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

ऐ प्रभु! तू जो इस पृथिवी पर, इसके चारों ओर फैले अन्तरिक्ष में, और उस अन्तरिक्ष से चन्द्रमा, सूर्य, तारो और नक्षत्रों से परे इस अनन्त-असीम आकाश मे सर्वत्र विद्यमान है, जिसके सम्बन्ध मे मानव और विज्ञान दोनो कुछ नही जानते, हे प्रभु! तू सब-कुछ उत्पन्न करनेवाला, सबको पालनेवाला, सबका अन्त करनेवाला है। हे स्वामी! तू भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनो कालों मे विद्यमान रहता है, और तू जो सविता की तरह, उस सूय की तरह पूज्य आदरणीय है, जो सब अर्बों-खर्बों महासूर्यो को प्रेरणा देता है, तू जो प्रत्येक मानव को कल्याण के मार्ग पर चलाता है, तू जो प्रत्येक प्रकाशमान् की ज्योति, प्रत्येक स्थितिवाले की शक्ति, प्रत्येक धनवान् का धन, प्रत्येक सम्मानवाले का सम्मान, प्रत्येक महत्त्वपूर्ण वस्तु का महत्त्व है, तुझे मैं धारण करता हूँ, प्यार करता हूँ, तेरा ध्यान करता हूँ। तू मेरी इस बुद्धि को जिस ओर चाहे ले चल। मेरी अपनी इच्छा कोई है नही।

जहाँ तू चाहता है, वहाँ ले चल। मैंने अपने-आपको तुझे समर्पित कर दिया, मैं तेरा हो गया। तेरे सिवा मेरा कोई नहीं।

(मंत्र पाठ के बाद उन्होंने कहा—)

मेरी प्यारी माताओ और सज्जनो !

आज अन्तिम दिन है इस कथा का। यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय का आठवाँ मन्त्र कहता है कि इस संसार के दुःख, कष्ट, शोक, क्लेश, निर्धनता, अज्ञान, पराजय, अपमान, बीमारी, अशान्ति, चिन्ता और बार-बार मृत्यु के जबड़ों में पिसने, फिर उत्पन्न होने, फिर पिसने, बार-बार उत्पन्न होने और पिसने का केवल एक इलाज है—प्रभु-दर्शन, प्रभु का ज्ञान, प्रभु को प्राप्त करना।

तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति
नान्या पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

उसको जानकर, प्राप्त करके ही मृत्यु से पार पा सकते हो! दूसरा कोई मार्ग नहीं। और सच तो यह है कि 'प्रश्नोपनिषद्' के ऋषि ने ठीक ही कहा है :

भिद्यन्ते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराऽवरे ॥

खुल जाती हैं हृदय की गाँठें, टूट जाते हैं संशय और सन्देह, और समाप्त हो जाते हैं सब-के-सब कर्म, जब उस परम पुरुष के दर्शन होते हैं। कोई दुःख शेष नहीं रहता है। कोई निर्बलता, कोई कमी नहीं। हाँ, वे चीजें भी नहीं जिन्हें हम सुख का कारण समझते हैं—जो शुभ कर्म से मिलती हैं, किन्तु जो केवल कुछ समय के लिए सुख का कारण बन जाती हैं। धन-सम्पत्ति, शासन-अधिकार, परिवार, सम्मान और पद, सब-कुछ। परम पुरुष का दर्शन हो जाए, मनुष्य उसे प्राप्त कर ले, तो यह सब-कुछ भी नहीं रहता। एक परम आनन्द, परम शान्ति जाग उठती है जो कुछ सप्ताहों, महीनों या वर्षों के लिए नहीं होती किन्तु सदा-सदा के लिए होती है।

कठोपनिषद् के ऋषि के शब्दों में :

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानाम्
एको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः
तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥

जो नाशवानों में अनाशवान् है, नित्य है, इस जड दुनिया मे एक-मात्र चेतन तत्त्व है, जो बहुतों के बीच एक है, जिसके कारण सब कामनाएँ पूर्ण होती है, उस आत्मा के भीतर बैठे परम पुरुष को धीर-जन निरन्तर तप के मार्ग पर श्रद्धा और विश्वास के साथ, धैर्य के साथ परिश्रम करनेवाले देखते हैं। उनके लिए शाश्वत—सदा रहनेवाली शान्ति, सदा रहनेवाला परमानन्द जाग उठता है; दूसरों के लिए नही।

किन्तु यह तो सुन लिया भाई, कि उसे जान लेने, उसका दर्शन पाने और उसे प्राप्त कर लेने से सब-कुछ होता है किन्तु उसे प्राप्त कैसे करें?

कठोपनिषद् का ऋषि कहता है:

अणो रणीयान् महतो महीयान्
आत्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतु पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान् महिमानमात्मनः ॥

जो सूक्ष्म से भी अधिक सूक्ष्म है, महान् से भी अधिक महान् है, उस आत्मा के भीतर गुफा मे छिपे हुए महादेव को वही देखता है, जो आत्मज्ञानी है, जिसपर प्रभु की कृपा हो गई है और जिसने सभी चिन्ताओ का त्याग कर दिया है। इस मत्र में चिन्ता को छोडने और प्रसन्नचित्त रहने का उल्लेख है जिसके सम्बन्ध मे मैंने कल कहा था कि प्रभु को पाना हो तो ज्ञानवान् बनो, श्रद्धावान् बनो, तपस्वी बनो, प्रेमी बनो और प्रसन्नचित्त बनो। किन्तु इन सब बातों के बाद भी प्रश्न उत्पन्न होता है कि उसे पाएँ कैसे? देखें कैसे?

कठोपनिषद् का ऋषि कहता है:

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।

यह तो विचित्र बात है—वहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता, इन चाँद-तारों का भी नहीं। इस बिजली की चमक भी नहीं पहुँचती वहाँ तो फिर यह बेचारी आग कैसे पहुँचेगी ? उसके अपने प्रकाश से ही ये सब प्रकाशित होते हैं। वह प्रकाशमान् है इसलिए ये सब प्रकाशमान् हैं।

तब क्या करें ? जहाँ कोई भी प्रकाश नहीं पहुँचता, काम नहीं देता वहाँ दर्शन कैसे हों ? केनोपनिषद् के ऋषि ने तो कमाल ही कर दिया ! उसने कहा :

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति
न मनो न विद्मो न विजानीमो ।।

वहाँ आँख नहीं पहुँचती, वाणी भी नहीं पहुँचती, मन नहीं पहुँचता ; वह कैसा है और कैसा नहीं है, पता नहीं।

इस बात को और स्पष्ट करने के लिए ऋषि ने कहा :

"सुनो भाई ! जो वाणी से बोला नहीं जाता और जिससे वाणी बोलती है। जो मन से समझा नहीं जाता और जिससे मन समझता है। जो आँख से देखा नहीं जाता और जिससे आँख देखती है। जो कान से सुना नहीं जाता और जिससे कान सुनते हैं। जो प्राणों से अनुभव नहीं किया जाता और जिससे प्राण चलते हैं। वह है परम ब्रह्म परमेश्वर। वह नहीं जिसे दुनिया-वाले समझे बैठे हैं।"

तब कैसे पाएँ उस परम पुरुष परमेश्वर को ? कहाँ ढूँढें उसे ? कठोपनिषद् और इसी प्रकार केनोपनिषद् के ऋषि ने कहा :

इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्थाः
अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिः
बुद्धेरात्मा महान् परः ॥
महतः परमव्यक्तम्
अव्यक्तात् पुरुषः परः ।
पुरुषात् न परं किञ्चित्
सा काष्ठा सा परा गतिः ॥

'ये जो तुम्हारे शरीर के अंग हैं—हाथ, कान, नाक, आँख आदि, इनसे बडी वे कामनाएँ हैं जिनके कारण इन्द्रियाँ सब कार्य करती हैं। किन्तु इन कामनाओ से, विषय-वासनाओ से बडा मन है। क्योकि वह इनपर नियन्त्रण कर सकता है। इस मन से बडी बुद्धि है। वह मन को वश मे कर सकती है। इस बुद्धि से बडा, इससे परा आत्मा है जो महान् है। बहुत शक्तिशाली है। किन्तु इस आत्मा से परे वह शक्ति है जो विद्यमान है किन्तु प्रकट नही होती। इस प्रच्छन्न शक्ति से परे वह पुरुष है, वह परम परमेश्वर जिससे बडा कोई नही, जिससे परे कुछ नही; जो पराकाष्ठा की सीमा है, जो परमगति है।'

इस परम पुरुष, पुण्य प्रियतम परमेश्वर के दर्शन की बात मैं कल आपसे कह रहा था। यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय का नौवाँ मन्त्र कहता है कि उस परमपुरुष को देव, साधक और ऋषि लोग देखते हैं। उनका उल्लेख करने के बाद मैं आपसे योगदर्शन की बात कह रहा था कि प्रभु के दर्शन कही बाहर नही, इसी मानव-शरीर मे होते हैं:

कोई दौड़े द्वारका, कोई काशी जाहीं।
कोई मथुरा को चले, साहिब घट ही माहीं॥

जो घट-घट मे विद्यमान है उसके दर्शन होते हैं, इस मानव-शरीर में। इसमे तीन ऐसे विशेष स्थान हैं जहाँ यत्न के साथ ध्यान लगाने से कम से-कम डेढ वर्ष या अधिक समय मे एक देदीप्यमान, जगमगाता

हुआ, इतना तीव्र प्रकाश दृष्टिगोचर होता है, जैसे करोड़ों अर्बों सूर्य एक-साथ चमक उठे हों। किन्तु यह प्रकाश जलाता नहीं, चुँधियाता नहीं, झुलसाता नहीं। एक विचित्र मधुर-शीतल स्वाद है उसमें। एक विचित्र कोमलता, एक विचित्र आनन्दातिरेक, जैसे प्रियतम के प्यार का सागर चारों ओर से उमड़कर किसी प्रेमी को लिपटाए लेता हो।

उस समय ब्रह्मरन्ध्र के भीतर—इधर आत्म-मण्डल, उधर ब्रह्म-मण्डल ; इधर आत्मा, उधर ब्रह्म—दोनों का मिलन होता है। दोनों एक-दूसरे के सम्मुख, प्रेमी और प्रियतम, निपट एकान्त है क्योंकि प्रेमी एकान्त में मिलते हैं। हर ओर आनन्द का सागर, ज्योति का सागर, मधुरता का सागर! आत्मा को ऐसे लगता है कि जन्म-जन्म से उसका बिछुड़ा हुआ प्यार उसके पास आ गया है। अमृत मिल गया है। वह वसन्त ऋतु आ गई है जो कभी समाप्त नहीं होती। तब एक भावना जागती है कि मेरा प्रियतम कहीं चला तो नहीं जाएगा? आए वह और झाँककर ही लौटकर जाने लगे? मैंने कहा आँचल पकड़, क्यों लौटकर जाने लगे?

परमात्मा तो सर्वत्र है, वह कहीं आता नहीं, कहीं जाता नहीं। किन्तु यह कवि की कल्पना है न! और फिर सामवेद के प्रारंभ में भी तो लिखा है :

अग्न आ याहि वीतयेगृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि।

हे मेरे जाज्वल्यमान, देदीप्यमान, सौन्दर्य-सिन्धु प्रियतम! आओ, मेरे पास आओ! मेरे प्रेम को, समर्पण को स्वीकार करो। वेद में 'आयाहि' (आओ) लिखा है। किन्तु भगवान् आएँगे कहाँ से? वह तो घट-घटव्यापी, सर्वान्तर्यामी, कण-कण, तृण-तृण में विद्यमान हैं। किन्तु वेद भी तो कवियों के कवि परमात्मा की वाणी है। इसलिए उसमें 'आओ' कह दिया गया। ऐसे :

आए वह और झाँककर ही लौटकर जाने लगे।
मैंने कहा दामन पकड़, क्यों लौटकर जाने लगे ?
मैं कभी से जोहती थी बाट शुभ-आगमन की।
फिर क्यों चले हो प्रियतम, शोभा बढ़ाओ सदन की ॥

किन्तु तभी

दामन झटककर चल दिये वह और यों कहते हुए,
बैठूं कहाँ तेरे सदन में, ग़ैर हैं बैठे हुए॥

ये ग़ैर, ये पराए कौन हैं ? ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार। अरे ! इनका जमघट लगा रखा है तूने। प्रियतम आएँगे तो बैठेंगे कहाँ ? तुझसे बातें कैसे करेंगे ? निकाल दे इन परायों को, स्वच्छ कर दे अपना अन्तरात्मा ! तब भगवान् के दर्शन भी होंगे, उनसे बातचीत भी होगी।

कई लोग मुझसे पूछते है, "क्यों जी ! भगवान् तो निराकार है, उनके दर्शन कैसे हो सकते हैं ? उनके जीभ नही, कान नही, उनसे बातचीत कैसे हो सकती है ?"

किन्तु मैं ही नही कहता, वेद भगवान् भी कहता है कि उसके दर्शन भी होते हैं। उससे बातचीत भी होती है। ऋग्वेद का एक बहुत सुन्दर मंत्र है :

उत् स्वया तन्वा सं वदे तत्।
कदा न्वन्तर्वरुणो भुवानि ॥

'ओ मेरे प्रियतम ! मेरे परमपिता परमेश्वर ! कब वह समय आएगा, कब वह शुभ घड़ी आएगी, जब मैं तेरे साथ बातचीत करूँगा ?

मंत्र में शब्द हैं—'बातें करूँगा।' यदि ईश्वर के साथ बातचीत नही हो सकती तो वेद इस शब्द का प्रयोग क्यों करता ? पूरा मंत्र यह है :

उत् स्वया तन्वा सं वदे तत्,
कदा न्वंतर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत,
कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥

'हे मेरे प्रियतम ! मेरे प्रभु ! कब आएगा वह समय, कब वह शुभ घड़ी आएगी, जब मैं तेरे शुभ दर्शन करूँगा ? जब तू मेरी भेंट को, मेरी प्यारभरी पूजा को, स्वीकार करेगा ? जब मैं तेरा अन्तरंग, तेरे हृदय में बैठा हुआ तेरा मित्र बन जाऊँगा और अपनी आत्मा से तुम्हारे साथ बातें करूँगा ।'

चार अभिलाषाएँ हैं भक्त के मन में—प्रभु का दर्शन हो; प्रभु भेंट को स्वीकार करें; प्रभु से मिलन हो; और प्रभु के साथ बातचीत हो ।

अब बताओ, कौन कहता है कि उस प्रियतम के दर्शन नहीं होते ? उससे बातचीत नहीं होती ? यह सब-कुछ होता है भाई ! मिलन भी होता है, दर्शन भी होते हैं, बातचीत भी होती है । किन्तु यह सब-कुछ होता है साधना से—बहुत कठिन तप के बाद ; उस समय जब आत्मा के भीतर बैठे हुए सभी पाप, सभी मल समाप्त हो जाते हैं । जब इस-के भीतर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, सबका अन्त होकर केवल प्रभु-मिलन की, प्रभु-दर्शन की प्रबल इच्छा जाग उठती है ।

और यह सब-कुछ कैसे होता है ? साधना करनेवाला या साधना करनेवाली कैसे इस पद को प्राप्त करते हैं, इसके सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द 'ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका' में कहते हैं :

'जब-जब मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना करना चाहें, तब-तब अपनी इच्छा के अनुसार एकान्त स्थान में बैठकर अपने मन को शुद्ध और आत्मा को एकाग्र करें, और सभी इन्द्रियों और मन को सच्चिदानन्द, अन्तर्यामी अर्थात् सबमें व्यापक और न्याय-कारी परमात्मा की ओर भली प्रकार लगाकर, पूरी तरह उसका चिन्तन करें । उसमें अपनी आत्मा को जोड़ दें । फिर उसी की

स्तुति, प्रार्थना और उपासना को वार-वार करके अपनी आत्मा को पूरी तरह उसमे लगा दे। इसका उपाय पातञ्जलि मुनि के बनाए योगशास्त्र और इन्ही सूत्रों के वेदव्यास मुनिजी के किये हुए भाष्य के आधार पर लिखते है।'

यह है उपाय—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि। इन आठ स्थितियो पर आधृत है 'अष्टागयोग'।

लोग कहते हैं, यह बहुत कठिन मार्ग है। मैं मानता हूँ कि यह कठिन मार्ग है। जितनी बडी उपाधि लेनी हो, उसके लिए उतनी ही बड़ी परीक्षा देनी पड़ती है। पहली, दूसरी या तीसरी कक्षा की परीक्षा सरल है किन्तु इसे उत्तीर्ण करके बहुत-कुछ होता नही। दसवी या हायर सैकण्डरी की परीक्षा कठिन है। इसमे विद्यार्थी को महाविद्यालय मे प्रवेश का अधिकार मिल जाता है। एम० ए० की परीक्षा और भी कठिन है, किन्तु इसे उत्तीर्ण किये बिना विद्यार्थी अपने विषय का ज्ञाता तो कहला नहीं सकता। उस विषय का विशेषज्ञ, डॉक्टर वनना हो तो और भी अधिक कठिन परीक्षा देनी होती है। यह तो दुनिया की रीति है भाई! जितनी अच्छी वस्तु लोगे, उतना ही अधिक मूल्य देना पड़ेगा। किन्तु 'सस्ता रोए वार-वार, महँगा रोए एक वार'। यदि उस लक्ष्य तक पहुँचना है, जहाँ भगवान् के दर्शन होते है, सभी दुःख, कष्ट, क्लेश, दुर्बलताएँ समाप्त हो जाती हैं तो इसके अतिरिक्त कोई उपाय नही कि 'अष्टाग योग' के मार्ग को अपनाओ। कम-से-कम एक घंटा प्रतिदिन अपने चित्त की वृत्तियों को रोककर ध्यान लगाओ। अरे भाई! इस शरीर को प्रतिदिन भोजन देते हो न, आत्मा को क्या देते हो? शरीर का भोजन है अन्न, और पानी; आत्मा का भोजन है ध्यान।

ध्यान ही इस आत्मा का 'उपहार', इसका भोजन है, इसका महान् अर्चन है। जब चित्त की वृत्तियां को एक जगह केन्द्रित करके मनुष्य ध्यान लगाता है, तो एक महान् ज्योति जागती है। इस ज्योति से वैसे

ही आत्मा को शक्ति मिलती है, जैसे 'पॉवर-हाउस' में 'प्लग' लगा देने से नगरभर के भीतर बिजली पहुँच जाती है। इस ज्योति में ही आत्मा को अपने कल्याण का मार्ग मिलता है। इसी में उसे प्रभु के दर्शन होते हैं। किन्तु यह सब-कुछ होता है एकान्त में। यदि आप कहो कि मधुशाला के शोर-शराबे में जाकर ध्यान लगा लो तो ऐसा होगा नहीं। ध्यान के लिए एकान्त की आवश्यकता है। शान्त वातावरण की आवश्यकता है। या फिर ऐसी ध्वनि कि जैसे दौड़ती हुई नदी, गिरते हुए झरने से निरन्तर उत्पन्न होती है। आप किसी मन्दिर में जाइये, किसी पवित्र स्थान पर जाइये, वहाँ बिना कारण के आपका जी चाहेगा कि थोड़ी देर बैठकर ईश्वर का स्मरण कर लें। स्थान का बहुत बड़ा प्रभाव होता है मन पर। श्मशान-भूमि में जाकर प्रत्येक आदमी के मन पर वैराग्य जागने लगता है, क्योंकि वहाँ वह मृत्यु दिखाई देती है जिसे मनुष्य साधारणतया भूला रहता है। किसी तीर्थ पर जाइये तो मन में स्वयमेव अच्छी भावनाएँ जागने लगती हैं, क्योंकि वहाँ आपसे पहले लाखों लोग भक्ति की भावना के लिए आते रहे हैं। कितने ही ऋषि और महात्मा वर्षों तक बैठकर भगवान् का स्मरण करते रहे हैं। उनके विचारों से उठनेवाली लहरों ने उस स्थान के कण-कण पर प्रभाव डाला है। वे ऋषि नहीं, महात्मा नहीं, अब नहीं हैं। वे भक्त आए और चले गए। किन्तु उनके विचारों का प्रभाव अब भी उस पवित्र स्थान में है। इसलिए वहाँ पहुँचते ही आपके मन में भक्ति और प्रभु-प्रेम की भावना उमड़ पड़ती है। स्थान का बहुत प्रभाव होता है मनुष्य पर। इसीलिए कहा है :

उपह्वरे गिरीणाम्, संगमे च नदीनाम्, धिया विप्रोऽजायत।

पर्वत की गुफा में, जहाँ दो नदियाँ मिलती हैं उनके संगम-स्थल पर, साधक पहुँचे तो उसकी बुद्धि में सात्विक भावना, आध्यात्मिक भावना उत्पन्न होने लगती है।

और देखो, साधु का पहनावा भी सात्विक होना चाहिये ; पहनावे की बात इसलिए कहता हूँ कि साधु बनना बहुत कठिन है। कंकर बहुत

छोटा होता है न ! उसमे कोई वडप्पन नही, अभिमान नही ।

कबीर से किसी ने पूछा, "कबीरजी ! साधु क्या ककर बन जाए ? रोडा बन जाए ?" कबीर जी ने उत्तर दिया

रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दु.ख दे ।

रोडा कितना भी छोटा हो, किसी के पाँव के नीचे आ जाय तो उसे कष्ट देगा । इसलिए कबीर ने कहा :

रोडा भया तो क्या भया, पंथी को दु:ख दे ।
साधु ऐसा चाहिए ज्यो पैंडे की खेह ।।

जैसे धूल होती है, ऐसा होना चाहिए साधु को । तभी कबीर जी ने फिर कहा :

खेह भया तो क्या भया, उड़-उड़ लागे अग ।
साधु ऐसा चाहिए जैसे नीर उप लग ।।

साधु को ऐसा होना चाहिए जैसे निर्मल नीर । पवित्रता दे दूसरे को, कष्ट न दे । अपने लिए नही, दूसरे के लिए जिये :

उदर समाता अन्न ले, तन ही समाता चीर ।
अधिक नहीं सग्रह करे, ताका नाम फकीर ।।

जितनी भूख है, उतना भोजन, जिससे तन ढक जाए उतना कपडा, इससे अधिक लेना और अपने लिए जोडकर रखना साधु के लिए उचित नही । किन्तु यह सब-कुछ, उस स्थिति का ठीक से वर्णन करना जिससे साधु को गुजरना पडता है ·

पग-पग औखी घाटियाँ, छिन-छिन मरना होय ।

वाली बात होती है साधु के साथ । कितने ही उपायो से उसे अपने-आपको मारना पडता है । खाने-पीने, सोने-चलने, बात करने, प्रत्येक कार्य मे उसे जीते जी मरना होता है । आप कहेगे, "तुम तो जीते हो आनन्द स्वामी !" किन्तु आपको कैसे बताऊँ कि मैं मरा हुआ खाता हूँ, मरा हुआ पीता हूँ, मरा हुआ चलता हूँ, मरा हुआ

बोलता हूँ। एक-एक क्षण में अपने मन को, अभिलाषाओं को, इच्छाओं को, अभिमान को, मोह को, ममता को, क्रोध को, अहंकार को मारना पड़ता है। इसलिए मैं कहता हूँ कि मैंने साधु का भेस धारण किया तो उन स्थानों को देखने के लिए चल पड़ा, जहाँ मेरे गुरु स्वामी दयानन्द ने घोर तप किया था। हृषिकेश के आगे बूढ़े केदार के मार्ग में मल्लाचट्टी एक जगह है, उससे बहुत आगे स्वामी दयानन्द जी, स्वामी गंगागिरि के पास रहकर घोर तप और योग-साधन करते रहे हैं। मैं भी उस मल्लाचट्टी की ओर चल पड़ा। पहले इतने घोर घने जंगल में से गुजरना पड़ा कि दोपहर के समय भी कई जगह टॉर्च के प्रकाश से मार्ग देखना पड़ता था। रात हुई तो उस घने जंगल में एक खुली जगह पर आग जलाकर सो गया। दूसरे दिन उठा, फिर चल पड़ा। काफी दूर जाकर एक साधु मिला। मैंने उससे पूछा, "क्यों बाबाजी, क्या आप जानते हैं कि स्वामी गंगागिरिजी का स्थान कहाँ है ?"

साधु बोला, "आप क्या करेंगे उस स्थान को ?"

मैंने कहा, 'उनके पास कभी स्वामी दयानन्द रहते थे। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि स्वामी दयानन्द किस जगह बैठकर समाधि लगाते थे ?"

वह बोला, "यह बात बिल्कुल ठीक है। स्वामी गंगागिरि का तो शरीर छूट गया। वह मेरे गुरु थे। मुझे उन्होंने कई बार बताया कि स्वामी दयानन्द यहाँ रहते थे। उन्होंने वह स्थान भी दिखाया जहाँ वह समाधि लगाते थे।"

मैंने कहा, "और आप कहाँ रहते हैं ?"

वह बोला, "यहाँ पास ही मेरी कुटिया है।"

मैंने कहा, "तो फिर चलिये, बाकी बातें वहीं होंगी।"

और कुटिया में पहुँचकर मैंने पूछा, "स्वामी दयानन्दजी कहाँ रहते थे ?"

साधु ने बताया, "यही रहते थे, इस कुटिया मे।"

मैंने पूछा, "ध्यान के लिए कहाँ बैठते थे ?"

साधु ने बताया, "वह सामने जो बडी चट्टान है, उसके ऊपर बैठकर ध्यान लगाते थे।"

मैंने पूछा, 'और सोते कहाँ थे ?"

साधु ने हँसकर कहा, "सोते कहाँ ? यहाँ कोई पलँग या बिछौने रखे हैं क्या ? यही धरती पर सो जाते थे, सिर के नीचे पत्थर का सिरहाना रखकर। भोजपत्र का कोपीन पहनते थे। कोई बिछौना उनके पास था नही। पहनने का कोई कपडा भी नही था।"

इस प्रकार तप तपा उन्होने। इसलिए कि प्रभु-दर्शन पा ले।

तलाशे यार मे जो ठोकरें खाया नहीं करते।
कभी वो मंजिले मकसूद को पाया नहीं करते॥

मैंने उस चट्टान को देखा तो कहा, 'अच्छा बाबाजी, शेष बातें फिर होगी, मैं पहले इस चट्टान पर बैठने का आनन्द ले लूं।"

गया उस चट्टान के पास, आसन लगाकर बैठ गया। सोचा था कि केवल थोडी देर बैठूंगा। किन्तु बैठा, ध्यान लगाया तो फिर बैठा ही रहा। समय का पता नही लगा। यात्रा की थकान भूल गई। आस-पास का जगल भूल गया। आँख खुली तो अँधेरा हो रहा था।

यह है स्थान का प्रभाव! इसलिए महर्षि ने लिखा, "उत्तर-काशी ध्यानियो के लिए ध्यान लगाने का उत्तम स्थान है।"

दिल्ली या कलकत्ता का नाम क्यो नही लिखा उन्होने? उत्तर काशी का नाम ही क्यो लिखा ? इसलिए कि वहाँ हजारो लाखो महात्माओ ने वर्षो तक कठोर तप किया है। उनकी पवित्र भावनाओ का प्रभाव आज भी वहाँ विद्यमान है। उनके पवित्र विचारो की तरगें आज भी वहाँ थरथराती हैं।

जब मैंने कैलास पर्वत की यात्रा की तो नौ बगाली साधु मेरे साथ थे? दसवाँ एक मद्रासी और ग्यारहवाँ मैं। वे सब नवयुवक थे।

मेरी अवस्था सबसे अधिक थी। अठारह हजार फीट ऊँचे कैलास पर्वत के पास पहुँचे तो मालूम हुआ कि कैलास की यात्रा तब पूरी होती है जब उसकी परिक्रमा करो। चल पड़े हम इस परिक्रमा के लिए। साढ़े तीन दिन में यह परिक्रमा पूरी हुई। रास्ते में ठहरने के लिए कोई मकान तो है नहीं, कैलास पर्वत पर ही ठहरना पड़ता है। हर ओर हिम या काली जली हुई चट्टानें और तीखी हिमानी वायु। सोने के लिए समतल जगह भी कठिनाई से मिलती है। थककर लेटते तो ऊँचाई के कारण ऐसे जान पड़ता कि प्राण निकलने लगे हैं। उठकर बैठ जाते ; फिर लेटते, फिर बैठ जाते।

मैंने तो इन प्राणों से कहा, "भाई, निकलना है तो निकलो। तंग क्यों करते हो ?" किन्तु ये तंग ही करते रहे, निकले नहीं। संभवतः आपके यहाँ पंजाबी बाग में कथा करने लिए आना था, इसलिए नहीं निकले।

साढ़े तीन दिन के बाद पहुँचे हम उस झील के किनारे जिसे 'गौरी-कुण्ड' कहते हैं और जिसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वहाँ माता पार्वती स्नान करती थीं। सब ओर बर्फ-ही-बर्फ। कुण्ड का पानी जमा हुआ और हवा इस तरह तीखी और ठंडी कि जैसे बर्फ ; रोम-रोम में घुसी जाती हो। वहाँ नहाने का प्रश्न उठा तो मैंने अपने साथियों से कहा, "चलो भाई, नहाओ सब लोग।"

वे बोले, "नहीं जी, पहले आप स्नान करो।"

मैंने कहा, "तुम सब नवयुवक हो, मैं बूढ़ा हूँ।"

वे बोले, "फिर भी आप ही स्नान करो। हम बाद में देख लेंगे।"

मैंने कहा, "अच्छा भाई ! पहले मैं ही स्नान करता हूँ। किन्तु आप पंजाब के भक्त की तरह न करना।"

वे बोले, "भक्त ने क्या किया था ?"

मैंने उन्हें सुनाया कि पंजाब के गाँवों के बाहर जोहड़ होते हैं। उन्हीं में लोग नहाते भी हैं। सर्दियों के दिन थे। पंजाब में सर्दी पड़ती है कड़ाके की। सर्दी से शरीर के रोंगटे खड़े हो रहे थे। ऐसे समय में

एक भक्तजो जोहड पर स्नान करने पहुँचे। कपडे उतारे तो सर्दी लगी। भक्तजी ने सोचा, पहले जरा पाँवो को पानी मे डालकर देखें, बहुत ठडा न हो तो स्नान करूँ।—और वडी सावधानी से भक्त-जी ने पाँव आगे किया। सारा पाँव नही डाला; केवल अगले भाग को—अर्थात् पाँव के पजे को पानी मे डाला। पर ज्योही हिम-जैसे शीतल पानी मे पाँव डाला, छूने ही तेज़ी के साथ पाँव बाहर निकाल लिया। कपडे पहन लिये। बोले, "पब स्नान तो सब स्नान।" 'पब' पजाबी मे पाँव के पजे को कहते है। दूसरे भक्तजी ने कहा, "यह बात है तो मैं भी वापस जाता हूँ।"

पहले भक्त ने पूछा, "क्या स्नान नही करोगे ?"

दूसरे भक्त ने पहले को हाथ लगाकर कहा, "तुद स्नान, अस स्नान। आपने नहाया तो मैने भी नहा लिया। मैंने आपको हाथ तो लगा दिया है।"

मैने अपने साथियो से हँसते हुए कहा, "आप लोग भी कही मुझे हाथ लगाकर 'तुद स्नान, अस स्नान' वाली बात न करना।"

किन्तु यह तो हँसी की बात थी। मैंने कपडे उतारे, फावडे से एक जगह बर्फ को तोडा, नीचे के पानी से कमण्डल भरा और अपने ऊपर डाल लिया। शरीर सुन्न हो गया, जैसे है ही नही।

जल्दी से मैं कम्बल लपेटकर बैठ गया। कैलास पहुँचने से पहले कितनी ही प्रार्थनाएँ सोची थी कि देश के लिए यह प्रार्थना करूँगा, जाति के लिए यह प्रार्थना करूँगा। आर्यसमाज के लिए यह प्रार्थना करूँगा, किन्तु वहाँ कम्बल लपेटकर ध्यान मे बैठा तो याद करने पर भी कोई प्रार्थना याद नही आई। केवल एक शब्द याद आया। उसी को ध्यान मे बोलता चला गया

ओ३म् ! ओ३म् ! ओ३म् !

यह है स्थान का प्रभाव ! उस परम पुरुष प्रभु प्रियतम के सिवा किसी का ध्यान ही नही रहा। बस, एक ध्यान, एक प्रार्थना।

हे गोविन्द ! तुम ही मेरे गुरु, तुम ही मेरे ज्ञान।
तुम ही मेरे देव, तुम ही मेरा ध्यान।
तुम ही मेरी पूजा, तुम ही मेरी पाती।
तुम ही मेरे तीर्थ, तुम ही मेरी जाति।
तुम ही मेरे शील, तुम ही मेरे सन्तोष।
तुम ही मेरी मुक्ति, तुम ही मेरे मोक्ष।
'दादू' हिरदे हरि बसे, दूजा नाहीं और।
कहियो कहाँ पर राखिये, नहीं और को ठौर।

इस तरह ध्यान लगा। कितना आनन्द था उसमें यह कौन बताए!

कहिया कुछ नहीं जात है, अनुभव आत्म सुख।
सुन्दर आवे कण्ठ नूँ, निकसत नाहीं मुख॥

किन्तु यह सब क्यों हुआ? इस स्थान के प्रभाव के कारण। स्थान का बहुत प्रभाव होता है मनुष्य पर। रणवीर जब पंजाब के गवर्नर पर गोली चलाने का प्रबन्ध करने के आरोप में गिरफ्तार हुआ तो पुलिसवालों ने उसे कई दिन लाहौर के शाही किले में रखा। फिर लाहौर बोरस्टल जेल में भेज दिया। वहाँ एक कमरे में बन्द कर दिया गया उसे। कमरे के सीखचोंवाले दरवाज़े पर बाहर से ताला लगा दिया गया। रणवीर शाही किले में भी प्रसन्न था। जेल में पहुँचकर भी हँसता रहा। रात को खाना खाया और मिट्टी के थड़े पर सो गया जिसे कैदी का पलँग कहते हैं। किन्तु आधी रात के समय एक भयानक स्वप्न देखकर जाग उठा। जागकर समझ आया कि यह तो स्वप्न था। किन्तु ऐसी चिन्ता उस स्वप्न ने पैदा की कि फिर प्रयत्न करने पर भी बाकी रात सो नहीं सका। पौ फटी तो जेल के एक दरोगा बख्शी लालचन्द रणवीर का हाल पूछने लगे। उन्होंने पूछा, "क्यों भई, नींद तो ठीक से आई?"

रणवीर ने कहा, "रात के पहले भाग में तो मैं खूब सोया किन्तु फिर सो नहीं सका। आप मेरे घर पर टेलीफोन करके मुझे बताइये

कि मेरी माताजी का क्या हाल है ? वह कहीं बीमार तो नही हैं ?"

बख्शी लालचन्द बोले, "यह तुम्हें माताजी के सम्बन्ध मे चिन्ता क्यों उत्पन्न हो गई ? कल तो मैंने तुम्हारे घर टेलीफोन किया था। उस समय सभी लोग ठीक थे। रात-ही-रात मे तुम उदास क्यों हो गए ?"

रणवीर ने कहा, "उदास नही हुआ। एक बड़ा भयानक सपना देखा है मैंने, अपनी माता जी के सम्बन्ध में। उसीसे चिन्ता हो रही है। सोचता हूँ उन्हें कोई कष्ट न हो ?"

बख्शीजी ने पूछा, क्या सपना देखा है ?"

रणवीर ने कहा, "बहुत भयानक सपना था। देखा कि एक देहाती मकान है। कच्ची दीवारें, एक ओर कुछ कमरे और सामने आँगन। कमरों के बाहर मिट्टी का घडा। आँगन की दीवार मे एक दरवाज़ा। तब देखा कि मैं अपने हाथ मे छुरा लेकर आँगन के दरवाजे में प्रविष्ट हुआ हूँ। आँगन मे पहुँचा हूँ। फिर एक कमरे के भीतर गया हूँ जहाँ मेरी माताजी अपने बालों में कघी कर रही थी। उन्हें बालो से खीचता हुआ कमरे से बाहर थडे पर लाया हूँ। वह चीख रही हैं, चिल्ला रही हैं और मैं छुरे को बार-बार उनकी छाती मे घोप देता हूँ। सब ओर लहू फैल गया है। तभी मेरी नीद खुल गई। इसके बाद मैं सो नही सका।"

बख्शी लालचन्द बोले, "यह तो विचित्र सपना है और बिल्कुल सच्चा है।"

रणवीर ने आश्चर्य से पूछा, "सच्चा कैसे है ?"

बख्शी लालचन्द ने कहा, "तुमसे पहले यहाँ एक कैदी रहता था। कल प्रातः ही उसे फाँसी के दण्ड की आज्ञा हुई है। उसे दूसरी जेल में भेज दिया गया है। वह गाँव मे वैसे ही मकान मे रहता था जैसा तुमने सपने में देखा। ठीक वैसे ही उसने अपनी माँ को कत्ल किया जैसा तुमने सपने मे देखा। उसके बाल पकडकर वह उसे घसीटता हुआ कमरे से बाहर लाया। थडे पर उसकी छाती पर कई बार छुरा घोपा। माँ का चीखना-चिल्लाना सुनकर लोग दौड़े आए। वह भागना

चाहता था पर भाग नहीं सका। मुकद्दमा चला। कल उसे फाँसी का दण्ड सुनाया गया। किन्तु तुमने उस आदमी को देखा नहीं, उससे बात नहीं की, उसके अपराध की कहानी नहीं सुनी, फिर तुम्हें यह सपना कैसे आया ?"

रणवीर ने एक लम्बा साँस लेकर कहा, "अब मेरे घर पर टेली-फोन करने की आवश्यकता नहीं। मैंने समझ लिया कि जिस माँ को मैंने मरते हुए देखा, वह मेरी नहीं, उस कैदी की माँ थी। पता नहीं वह कितने महीने इस कोठरी में रहता रहा। पता नहीं कितनी बार उसने अपने अपराध के सम्बन्ध में सोचा। माँ की हत्या करने का सारा चित्र कितनी बार उसके मन की आँखों के सामने आया। उसके विचार अब भी इस कोठरी में विद्यमान हैं—इसकी दीवारों में, छत में, फर्श में, हर जगह। उसके इन विचारों के कारण ही मैंने यह सपना देखा।"

दूसरे दिन मैं रणवीर को जेल में मिलने गया तो उसने यह सारी बात मुझे सुनाई। मैंने कहा, 'ठीक समझा है तूने। तेरी माँ अच्छी-भली है। यह स्थान का प्रभाव था जो तुझे ऐसा सपना आया।"

उस दिन जेलवालों ने रणवीर की कोठरी बदल दी। फिर उसे ऐसा सपना नहीं आया।

ऐसा होता है स्थान का प्रभाव! अच्छे स्थान पर जाइये, वहाँ बैठिये तो अच्छा प्रभाव होगा। बुरे स्थान पर जाइये तो बुरा प्रभाव होगा।

और आप लोग जो पंजाबी बाग में रहते हैं, आप तो बड़े भाग्य-शाली हैं। यहाँ का वातावरण दिल्ली के अन्य क्षेत्रों से अधिक अच्छा है। इसलिए मैंने सोचा कि यहाँ दूसरी बातों की अपेक्षा योग-ध्यान की बात कहूँगा। किन्तु सुनो भाई! ध्यान लगता है सर्दी में। मई की गर्मी में तो लगता नहीं। बार-बार पसीना बह रहा हो, आप आसन लगाकर बैठ भी जाएँ, तो ध्यान कैसे लगेगा? इसलिए मैंने सोचा कि कभी सर्दियों में यहाँ आकर क्रियात्मक रूप में ध्यान लगाने की विधि

बताऊँगा। यदि उससे पूर्व यह शरीर छूट गया तो अगले जन्म मे आकर बताऊँगा। निश्चय कर लिया तो अब कभी-न-कभी पूरा होगा अवश्य। और इस ध्यान के लिए सबसे पहली आवश्यकता है, एकान्त-अभ्यास।

कई लोग मुझे कहते है, "स्वामीजी, आप है सन्यासी। घर-बार है नही। जगल मे चले जाओ या पहाड पर, कैलास या गगोत्तरी। किन्तु हम तो गृहस्थी है। घर मे दूसरे लोग भी है। शोर भी है, बच्चे की चीं-पीं भी है। हमे एकान्त स्थान कहाँ मिलेगा ?"

किन्तु ऐसी बात तो नही है मेरे भाई! आपके इस पजाबी बाग मे मैंने देखा, बहुत सुन्दर कोठियाँ बनी है। उनमें कई-कई कमरे हैं। उन्ही में से कोई साफ-सुथरा कमरा ध्यान के लिए निश्चित कर लो।

आज मैं एक सज्जन के घर गया। बहुत अच्छा परिवार है। बहुत अच्छा बँगला। सत्सग के लिए एक बडा हाल बना है। मैंने उसे देखा तो उस सज्जन से कहा, "यह तो बहुत सुन्दर जगह है। मेरा जी चाहता है कि इस हाल मे कथा करूँ। अभी तो नही, कभी सर्दियो मे आया तो इसी घर मे योग का शिविर लगाऊँगा।"

अब कौन जाने, यह इच्छा पूरी होती है या नही? हो जाय तो अच्छा, न हो तो भी अच्छा।

राजी है हम उसी मे, जिसमे तेरी रजा है।
यहाँ यूँ भी वाहवा है और वूँ भी वाहवा है।।

किन्तु जैसा घर मैंने देखा, वैसे दूसरे घर भी तो है यहाँ। उनमे कोई कमरा निश्चित कर लो, कमरा नही तो कोई कोना निश्चित कर लो। वही बैठकर प्रतिदिन ध्यान करो।

एक सज्जन आए मेरे पास, बोले, 'स्वामीजी, अभी तो ध्यान-वान की बात होती नही। घर छोड दूँ तो ध्यान करूँगा।"

मैंने कहा, "बच्चू, तुमसे घर छोडकर भी ध्यान नही होगा। जो घर मे ध्यान नही लगाता, वह बाहर जाकर क्या लगाएगा? घर मे सुख पैदा करो। शान्ति का वातावरण बनाओ। घर मे बैठकर ही

ध्यान लगाओ। बार-बार यत्न से लगाओ तो लगेगा अवश्य।"

एक सज्जन मेरे पास आए, बहुत दुःखी थे वह। मैंने पूछा, "क्यों दुःखी हो भाई ?"

वह बोले, "चित्त नहीं लगता।"

मैंने पूछा, "क्यों नहीं लगता ?"

वह बोले, "मेरी पत्नी पूरी ताड़का है। हर समय गर्जती रहती है। हर समय उबलती रहती है। हर समय धधकती रहती है।"

अब ऐसे आदमी का चित्त कैसे लगेगा? कई लोगों को ऐसी ही पत्नियाँ मिल जाती हैं। निरी ताड़का-जैसी। और कई देवियों को ऐसे पति भी मिल जाते हैं जो 'हे मेरे भगवान्!' होते हैं। किन्तु सुनो, ऐसी स्थिति हो तो पहले पति या पत्नी को ठीक मार्ग पर लाने का प्रयत्न करो। यदि लड़-झगड़कर घर से बाहर चले जाओगे तो भी ध्यान नहीं लगेगा। मैं एक बार था हृषिकेश में। वहाँ स्वामी रामतीर्थजी की स्मृति में 'राम आश्रम' बना है। काफी अच्छा पुस्तकालय है वहाँ। मुझे एक पुस्तक की आवश्यकता थी, उसे देखने के लिए वहाँ गया। रास्ते में देखा, एक सन्तजी बैठे रो रहे हैं। मैंने उन्हें रोते देखा तो उनके पास जाकर पूछा, "सन्तजी, क्या हुआ आपको ?"

वह बोले, "कुछ नहीं, ऐसे ही।"

मैंने कहा, "तो फिर रोते क्यों हो ?"

वह बोला "यों ही रोना आ गया।"

मैंने कहा, "किन्तु कोई कारण तो होना चाहिये ?"

वह बोला, "नहीं, कुछ नहीं।"

मैं उसके पास बैठ गया। रोनेवाले के पास बैठ जाता हूँ मैं। जबतक उसका रोना समाप्त न हो जाए, उठता नहीं। पास बैठकर ज्यादा प्यार के साथ उससे बातें कीं। बहुत पूछने पर उसने रोने का कारण बताया कि पत्नी की याद आ रही है।

मैंने कहा, "हत् तेरे की! अच्छा साधु है तू? तुझे पत्नी याद आ रही है, उसे याद ही करना था तो छोड़कर क्यों आए ?"

उसने बताया, "एक दिन झगडा हो गया था। मैं क्रोध मे आकर घर छोडकर चला आया। अब सोचता हूँ कि क्यो झगडा किया और रो रहा हूँ।"

इस तरह झगडा करके घर को मत छोडो मेरे भाई! ऐसा करोगे तो ध्यान लगेगा नही। ध्यान लगाना है तो पहले घर मे रहकर तैयारी करो। प्रतिदिन अपने घर के भीतर ही किसी एकान्त-शान्त स्थान पर कम से-कम एक घण्टा बैठकर प्रभु-चिन्तन और आत्म-चिन्तन करो। घर के दूसरे लोगो को भी अपने साथ बिठाओ। अपने घर के वातावरण को शुद्ध करो। कोई एक कमरा निश्चित कर लो। किसी कमरे का कोई एक भाग ही निश्चित कर लो। वहाँ बैठो सब लोग। जो लोग कहते हैं कि घर म कमरा कहाँ से लाएँ ? उनसे मैं पूछता हूँ कि तुम्हारे घर म खाने का कमरा है या नही। क्या कहते है उसे ?

[एक बच्चे ने कहा, 'डाईनिंग रूम।' स्वामीजी बोले—]

हाँ, डाईनिंग रूम है कि नही ? ड्राइंग रूम है कि नही ? बैठने का, उठने का, बच्चो के पढने का, खाना बनाने का—ये सब कमरे हैं कि नही ? और कमरे भी तो होते हैं ?

[उस बच्चे ने हँसते हुए कहा, 'बाथरूम।' स्वामीजी भी हँसते हुए बोले—]

हाँ, बाथरूम, बेडरूम, यह रूम, वह रूम। अरे, ये कमरे तुम्हारे पास हैं। जिस भगवान् को पाने के लिए यह जन्म मिला, उसका रूम कहाँ है ? प्रत्येक घर मे एक भगवान्-रूम भी बनाओ भाई! उसे अच्छे-अच्छे चित्रो से सजाओ और अगरबत्तियाँ जलाओ कि वहाँ कमरा सुगन्ध से भरा रहे। धूप जलाओ, उसे खूब साफ सुथरा रखो। वहाँ वेद रख दो। दूसरे अच्छे ग्रन्थ रख दो। घी का एक दीपक जला दो वहाँ जो निरन्तर जगा रहे। प्रात, साय या दोपहर, जब भी समय मिले इस कमरे मे चले जाओ। अपने बच्चो और परिवार के लोगो को भी अपने साथ बिठाओ। प्रभु के भजन गाओ वहाँ। ओ३म् का कीर्तन करो। खूब अच्छी तरह मस्त-मग्न होकर गायत्री

मन्त्र का कीर्तन करो। स्वयं न कर सको तो किसी अच्छे गायक से कीर्तन कराकर उसे टेपरिकॉर्ड कर लो। यह टेपरिकॉर्ड प्रतिदिन सुनो।

मैं गया था राजकोट। वहाँ मालूम हुआ कि यहाँ एक गायत्री-मन्दिर है और वहाँ गायत्री मन्त्र का बहुत मधुर कीर्तन होता है। मैं भी गया उस मन्दिर में। वह कीर्तन सुना तो ऐसे लगा जैसे समाधि लगी जाती है। बहुत आनन्द आया। मेरे साथ एक सज्जन थे। उन्होंने यह कीर्तन रिकॉर्ड कर लिया। दिल्ली में आकर भी उसे सुना। देहरादून के 'वैदिक साधन आश्रम' में भी सुना। इस तरह करके देखो कि घर का वातावरण सुधरता है या नहीं। आपके बच्चे 'बोल, राधा बोल, संगम होगा कि नहीं' की अपेक्षा गायत्री मन्त्र और प्रभु-भजन गाना प्रारम्भ कर देंगे। आपकी पत्नी का स्वभाव बदल जाएगा। आपके घर में एक मधुर जीवन जाग उठेगा। तब झगड़े नहीं होंगे। किन्तु मेरे भाई! मेरी माँ! एक घण्टा प्रतिदिन बैठो तो सही। और कुछ नहीं तो घण्टा-भर हिले-जुले बिना एक आसन पर बैठना ही सीख जाओगे। आसन पर बैठने का अभ्यास दृढ़ हो जाए तो ध्यान लगाना सरल हो जाता है।

और जानते हो कि आसन किसका दृढ़ होता है? कौन घण्टा-दो घण्टा एक ही आसन पर हिले-डुले बिना बैठ सकता है? वह मनुष्य जिसने अपने भीतर से रजोगुण और तमोगुण बहुत कम कर दिया है। लाल मिर्चें खाओगे, करेले खाओगे, उड़द की दाल में खूब घी और मसाले डालकर खाओगे, चाट-चटनियाँ, अचार खाओगे, खूब मिर्चोंवाले पापड़ खाओगे तो ध्यान लगेगा न आसन जमेगा। और भी ऐसी कई चीज़ें हैं।

[एक बच्चे ने कहा, 'रसगुल्ले।' स्वामीजी ने हँसते हुए कहा—]

नहीं; ऐसी चीजें जिनसे शरीर में उत्तेजना उत्पन्न होती है, उन्हें खाते रहो और कहो कि आसन नहीं जमता, ध्यान नहीं लगता तो कैसे लगेगा भाई? इनका बहुत प्रभाव पड़ता है मन पर। जैसा अन्न खाओगे, वैसा मन बनेगा। और कैसा अन्न खाओ, कैसा नहीं,

यह व्यवस्था घर मे रहकर ही हो सकती है ; घर को छोड़कर नही।

मैंने जब हठ-योग सीखना प्रारम्भ किया तो मेरे गुरुजी ने कहा, "नमक खाना छोड़ दो।"

मैंने कहा, "छोड़ दूंगा, मीठे से खाना खा लिया करूंगा।"

गुरुजी बोले, "नही, मीठा खाना भी छोड़ दो। बिना नमक के, बिना चीनी के खाना खाओ। दो वर्ष तक ऐसा ही करो।"

मैंने ऐसा ही किया। किन्तु ऐसा खाना घर से बाहर तो मिलता नही। घर मे रहकर ही मिलता है। मैं घर मे रहता था उस समय। इसलिए यह व्रत पूरा हो गया। अब घर छोड़ने के बाद कोई कहे कि ऐसा खाना खाओ जिसमे नमक न हो तो कैसे खाऊँगा? अब तो मैं भिक्षा करके खाता हूँ। जैसा कोई दे दे, वैसा ही खाना पड़ता है। केवल यह देख लेता हूँ कि इसमें कोई बुरी चीज तो नही?

इसलिए मैं कहता हूँ कि जबतक घर मे हो, साधन करो, भजन करो। प्रतिदिन कम-से-कम एक घण्टा किसी शुद्ध, पवित्र, एकान्त-शान्त स्थान में अपने मन को टिकाओ। आत्म-चिन्तन और प्रभु-चिन्तन करने के लिए ध्यान लगाओ। फिर जब घर छोडने का समय आएगा तो ध्यान लगाने में कष्ट नही होगा।

पिछले दिनों देहरादून मे योग-शिक्षा का शिविर लगा तो मैंने कहा, "केवल वे लोग ध्यान लगाने के लिए बैठें, जो घण्टे-भर तक एक आसन पर बिना हिले-डुले बैठ सकें।"

सबने कहा, यह कौन-सी कठिन बात है!

किन्तु उनके बैठने के बाद मैंने दस ही मिनट के बाद देखा कि कोई सज्जन टाँग बदल रहे है, कोई बाँह हिला रहे हैं। किसी को खाँसी आ रही है, किसी को जम्हाइयाँ आ रही हैं। इसका कारण क्या है? घर मे जो अभ्यास करना चाहिए वह उन्होंने किया नही। अभ्यास से, तप से और परिश्रम से बहुत-कुछ होता है।

करत-करत अभ्यास तें, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत-जात तें, सिल पै पड़े निशान॥

अब तो जगह-जगह नलके लग गए हैं। उनमें कभी पानी आता है, कभी नहीं भी आता। न आए तो उनके सामने हाथ जोड़ दो, माथा टेको, तो भी नहीं आता। किन्तु यह कुओं की बात है। कुओं पर लगाई जाती हैं पत्थर की सिलें। बाल्टी या गगरी रस्सी से बाँधकर लोग पानी निकालते हैं। रस्सी बार बार पत्थर की सिल पर नीचे जाती है और ऊपर आती है तो इन सिलों पर भी निशान बन जाते हैं; नालियाँ-सी बन जाती हैं। अभ्यास से बहुत-कुछ होता है। यह अभ्यास किया नहीं, एकदम घर को छोड़कर चल पड़े तो उससे एकदम कुछ होनेवाला नहीं। इसलिए घर छोड़ने का विचार हो या न हो, घर में अभ्यास करो जरूर। कम-से-कम एक घण्टा। अधिक जितना हो सके। ऐसा नहीं हुआ तो हृषिकेश के उस सन्त की तरह तुम भी रोते रहोगे। कभी पत्नी याद आएगी, कभी बच्चे, कभी व्यापार याद आएगा, कभी धन-सम्पत्ति।

किन्तु जब मैं कहता हूँ कि प्रतिदिन एक घण्टा या कुछ अधिक समय ध्यान में लगाओ, उस आत्मा को भोजन दो जिसे तुम भूल बैठे हो, तो कुछ सज्जन कहते हैं, "स्वामीजी, आप कहते ठीक हैं किन्तु समय कहाँ से लाएँ? अवकाश ही नहीं मिलता। फिर करें क्या?"

कमाल है यह भी! अरे, तुम्हें मियादी बुखार हो जाए तो उसके लिए समय मिल जाता है, सिनेमा देखने को समय मिल जाता है, क्लब जाने का समय मिल जाता है, बस की प्रतीक्षा करनी हो तो उसके लिए समय मिल जाता है। बेसिर-पैर की गप्पें हाँकनी हों तो उसके लिए भी समय मिल जाता है। दुनिया-भर की राजनीति पर व्यर्थ वाद-विवाद करने के लिए समय मिल जाता है, खाने, पीने, सोने का समय मिल जाता है। उस असली काम के लिए ही समय नहीं मिलता जिसके लिए इस दुनिया में आए हो। मैं यह नहीं कहता कि धन न कमाओ, मकान या कोठी न बनवाओ, व्यापार या नौकरी न करो, सिनेमा न देखो, या घर-परिवार का ध्यान न रखो, देश और विदेश की स्थिति पर विचार न करो। यह सब करो भाई! किन्तु

सुनो, यह सब-कुछ रहनेवाला नहीं है; तुम्हारे साथ जानेवाला नहीं है। यह चार दिनों का मेला है। रेलगाड़ी है यह, रेलगाड़ी। तुम तीन टायर के डिब्बे में यात्रा करो या दो टायर के डिब्बे में, तृतीय श्रेणी में यात्रा करो या वातानुकूलित कोच में। तुम्हारा स्टेशन आएगा तो उतर जाओगे तुम। गाड़ी की ओर मुड़कर देखोगे भी नहीं और गाड़ी चली जाएगी। तुम्हारे साथ तुम्हारे घर में यह जाएगी नहीं। वहाँ तुम्हें इसके बिना ही जाना होगा।

तुम्हारे नगर में वह लाल किला है न! कभी शाहजहाँ ने इसे बनवाया था। दिल्ली का नाम रखा था, 'शाहजहानाबाद'। आज कहाँ है वह शाहजहाँ? कौन कहता है इस नगर को शाहजहानाबाद? और फिर वह पुराना किला भी तो है यहाँ। टूट-फूटकर खण्डहर हो गया है। आज किसी को यह भी पता नहीं कि उसे बनवाया किसने था? कौन वहाँ रहता था? क्या बनवानेवाले और रहनेवाले को पता था कि एक दिन लोग उसका नाम भी भूल जाएँगे? और फिर इसी दिल्ली में कभी पाण्डव भी तो रहते थे? कौरव भी तो रहते थे? यहीं-कहीं आस-पास पाण्डवों का वह महल भी बना था, जिसमें दुर्योधन ने दीवार को दरवाजा और दरवाज़े को दीवार समझा; पानी को फर्श और फर्श को पानी समझा। आज कहाँ है वह सब-कुछ? कहाँ है वे सब लोग? उन महलों का आज चिह्न तक नहीं मिलता। उन लोगों के सम्बन्ध में कई लोग कहते हैं कि वे कभी हुए ही नहीं; 'महाभारत' की सारी कथा केवल पुराण-कथा है—केवल एक काल्पनिक कहानी।

मैं यह नहीं कहता कि मकान न बनवाओ, सुख से रहने के दूसरे साधन न जुटाओ, किन्तु उसको भी तो याद करो जिसने यह सब-कुछ दिया है। उसे याद करने के लिए यह मानव-शरीर मिला है। इस शरीर को खिलाओ-पिलाओ, नहलाओ-धुलाओ, सजाओ, सब-कुछ करो। किन्तु यह मत भूलो कि एक दिन यह शरीर और इससे सम्बन्ध रखनेवाली सब वस्तुएँ समाप्त होनेवाली हैं।

\ कबीर नौबत आपनी, दिन दस लियो बजाई ।
यह पुर पट्टन यह गली, फिर नहीं देखन आई ।।

थोड़े दिनों की बात है। फिर यह नगर, ये गलियाँ, ये बाज़ार, ये महल, ये मकान, सब तुम्हारे लिए न होने के बराबर हो जाएँगे। तुम इन्हें देखने नहीं आओगे। सब-कुछ यहीं रह जाएगा। आज मिट्टी और पत्थर को उठाकर ऊँची दीवारें खड़ी करते हो, कुम्हार की तरह मिट्टी को कई प्रकार के रूप देकर कहते हो, "बहुत सुन्दर रूप हैं ये।" किन्तु—

माटी कहे कुम्हार से, तू क्या रौंदे मोहि ।
इक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूँगी तोहि ।।

मकान बनवा सको तो बनवाओ अवश्य। दूसरे काम भी करो, किन्तु यह मत भूलो कि यह सब-कुछ साथ जानेवाला नहीं है। यहाँ से कुछ भी साथ नहीं जाता। धन-सम्पत्ति, संगी-साथी, पत्नी-बच्चे कुछ भी तो नहीं।

इक दिन ऐसा आएगा, कोई काहू का नाहीं ।
घर की नारी को कहे, तन की नारी नाहीं ।।

यह नब्ज़, यह हाथ की नाड़ी, यह भी बन्द हो जाती है, साथ छोड़ देती है आदमी का। दूसरों को कौन कहे ? और फिर जाना तो पड़ता है भाई! जो बनता है, वह टूटता भी है। जो आता है, वह जाता भी है।

आए हैं सो जाएँगे, राजा रंक फकीर ।
इक सिंहासन चढ़ चले, इक बाँधे ज़ंजीर ।।

राजा हो या रंक, गृहस्थी हो या सन्यासी, मोह-माया की ज़ंजीर में बँधा हुआ अभागा या आत्म-दर्शन के सिंहासन पर बैठा हुआ योगी—रहना तो किसी को है नहीं। यह तो चलती चक्की है। दाने पिसे जाते हैं। चक्की रुकती नहीं।

चलती चक्की देख के दिया कबीरा रोय ।
दो पाटन के बीच में, साबत बचा न कोय ।।

माली आवत देख के, कलियाँ करे पुकार।
फूली-फूली चुन लई, काल्ह हमारी बार॥

कौन जानता है, कब जाना पड़े ? कोई भरोसा है इस जीवन का ?

यह तन काचा कुंभ है, लिये फिरे तू साथ।
धक्का लगा टूटेगा, कुछ न आए हाथ॥

यह तो कच्चा घड़ा है भाई ! इधर धक्का लगा, उधर टूटा। इसलिए समय निकालो। उसको याद करो, जिसने यह सब-कुछ दिया है। जिसका यह सारा खेल है। एक कहानी है।

[स्वामीजी ने घड़ी को देखकर कहा—'हाँ, अभी समय है, लो सुनाता हूँ यह कहानी। जान पड़ता है आज यह कथा लम्बी हो जाएगी। सम्भवत ग्यारह बारह बजे तक चलेगी।' कितने ही लोगों ने कहा, 'आप कहिये। हम सुनेंगे।' स्वामीजी ने हँसते हुए पूछा, 'कबतक ?' एक बच्चे ने कहा, 'दो बजे तक।' एक अन्य सज्जन ने कहा, 'तीन बजे तक।' स्वामीजी ने हँसते हुए कहा, 'तीन बजे तो मैं जागता हूँ। मेरा दिन प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु सुनो यह कहानी !'—]

एक थे सेठजी। करोड़ों रुपयों के स्वामी थे। बहुत बड़ी सम्पत्ति थी, बहुत बड़ा कारोबार था। कितने ही मुनीम उनके यहाँ काम करते थे।

एक दिन सेठ जी अपने दफ्तर में बैठे थे, बड़ी-बड़ी वहियों में हिसाब-किताब देख रहे थे। तभी एक योगी वहा पहुँच गया, बोला, 'ओ३म् ओ३म् सेठ जी !"

सेठजी ने न उसकी बात सुनी, न उसकी ओर देखा।

योगी ने फिर कहा, "राम-राम सेठजी !"

सेठजी फिर भी चुप रहे।

योगी थोड़ा आगे बढ़कर बोला, "कुछ धनहीन असहायों के लिए।"

अबकी बार सेठजी गर्ज उठे, "कौन है यह भिखारी जो निर्धनों और असहायों की बात कहता है ? मैं उनके लिए कमाता हूँ यह धन ? कोई है ? निकालो इसे बाहर ! शोर मचा रखा है इसने ।"

योगी ने कहा, "शोर नहीं मचाता सेठजी, भगवान् के नाम पर दान माँगता हूँ ।"

सेठजी चिल्लाए, "अरे कोई सुनते हो ? निकालो इसे, धक्के देकर बाहर निकाल दो !"

योगी ने कहा, "निकालने की आवश्यकता नहीं सेठजी, मैं स्वयं ही चला जाता हूँ ।"

और बिना कुछ कहे, वह सेठजी के दफ्तर से बाहर हो गया । शहर से बाहर बहती थी नदी, उसके किनारे बना था एक छोटा-सा मन्दिर, उसके पास नदी के किनारे जाकर बैठ गया । दूसरे दिन प्रातः सेठजी उस मन्दिर में आए—रेशमी धोती पहने, गले में यज्ञोपवीत, पाँवों में खड़ाऊँ पहने, माथे पर तिलक लगाए और पूजा करने मन्दिर के भीतर चले गए । योगी ने उन्हें दूर से देखा, पहचाना कि यह वही सेठ है जिसने कल मुझे अपने दफ्तर से निकाला था । तभी एक विचार आया उसके मन में और वह मुस्कराने लगा । अपने योग-बल से, अपना चेहरा-मोहरा, शरीर ठीक वैसे बना लिये जैसे सेठजी के थे । वैसे ही कपड़े भी बना लिये, वैसी आवाज़ भी । और उठके चल पड़ा सेठजी के दफ्तर की ओर । दफ्तर में पहुँचा तो चौकीदार ने सिर झुकाकर नमस्कार किया ; बोला, "राम-राम सेठजी !"

योगी सेठ ने कहा, "राम-राम भाई ! किन्तु जरा सावधान रहना, आज एक बहुरूपिया आया है नगर में, बिल्कुल मेरे-जैसी सूरत बना रखी है उसने । मेरे-जैसे कपड़े पहन रखे हैं । मेरी-जैसी ही आवाज़ में बोलता है । वह आए तो धोखे में मत आना । उसे भीतर मत आने देना !"

चौकीदार बोला, "ऐसी की तैसी उस बहुरूपिये की ! मैं उसका सिर न फोड़ दूँगा । मेरे होते वह भीतर कैसे आ सकता है ?"

योगी सेठ ने भीतर जाकर मुनीमो से बात की। उन्होने प्रणाम किया, तो योगी सेठ ने उन्हे भी कहा, "आज जरा सावधानी से रहना भाई! एक बहुरूपिया हूबहू मेरे-जैसी शक्ल सूरत बनाकर शहर म आया है। मेरे-जैसे ही कपडे पहन रखे हैं और मेरे-जैसी ही आवाज मे बोलता है। मैंने उसे देखा तो चकित रह गया। तुम भी चकित हो जाओगे। किन्तु जरा सावधान रहना, कही वह यहाँ आकर तुम्हे धोखा न दे।"

तब वह घर मे गया। वहाँ सेठानी और बच्चो से भी यही बात कही। घर के नौकरो से भी। तब नगर के बडें पुलिस अधिकारी के पास चला गया। अधिकारी ने उसे देखते ही उठकर नमस्ते की, बोला, "आइये सेठजी, विराजिये। कहिये, कैसे आना हुआ? कोई चोरी तो नही हो गई?"

योगी सेठ ने कहा, "आपके रहते चोरी कैसे हो सकती है? किन्तु एक अनोखी विपत्ति आ पडी है। एक बहुरूपिया आ गया है नगर मे। बहुत चतुर बहुरूपिया है वह। मेरे-जैसी शक्ल-सूरत, आवाज, कपडे, सब कुछ बना लिया है उसने। मुझे डर लग रहा है कि कही नगर मे मेरे नाम से कोई रुपया-पैसा या दूसरी चीज उधार न ले ले और बाद में मुझे भरना पडे। इसलिए आपको सूचना देने आया हूँ। आप तो पुलिस अधिकारी है। आपको वह क्या धोखा देगा? किन्तु दूसरो से कहिये कि वे सावधान रहे।"

पुलिस अधिकारी ने कहा, "आप चिन्ता न करें सेठजी, मैं समझ लूंगा उस बहुरूपिये से।"

और योगी सेठ सारा प्रबन्ध करके दफ्तर मे आकर सेठजी की गद्दी पर बैठ गया।

इतने मे असली सेठजी मन्दिर में पूजा करके अपने दफ्तर के बडे फाटक पर आए। अन्दर जाने लगे तो चौकीदार ने रोककर कहा, "अबे, कहाँ घुसा आता है तू?"

सेठ ने कहा, "अरे! तू मुझे पहचानता नही? मैं तेरा सेठ हूँ।

पूजा करके मन्दिर से आया हूँ।"

चौकीदार ने कहा, "जा-जा, यह धोखा किसी दूसरे को दे। मेरे सेठजी तो भीतर बैठे हुए हैं।"

सेठ ने कहा, "अरे! तू पागल तो नहीं हो गया है? तुझे आगरे के पागलखाने में भेजने की व्यवस्था करनी पड़ेगी। मैं यहाँ खड़ा हूँ और तू कहता है, सेठजी भीतर बैठे हैं?"

चौकीदार बोला, "पागल मैं नहीं, तू है। बहुरूपिया कहीं का! चला जा यहाँ से, नहीं तो लाठी मारकर सिर फोड़ दूँगा?"

सेठजी ने ऊँची आवाज में उसे गालियाँ दीं, तो भीतर से मुनीम और कई दूसरे लोग भागे हुए बाहर आए। उन्होंने चौकीदार से पूछा, "क्या बात है?"

चौकीदार ने कहा, "यह बहुरूपिया कहता है, 'मैं सेठ हूँ'। जबर्दस्ती भीतर घुसना चाहता है।"

एक मुनीम ने कहा, "अच्छा, तो यह है बहुरूपिया, जिसकी बात सेठजी ने कही थी। बहुरूप तो खूब भरा है इसने! किन्तु जा भाई यहाँ से। यह हमारे काम का समय है।"

सेठजी ने कहा, "अरे! तुम भी नहीं जानते मुझे?"

मुनीम बनता हुआ बोला, "बहुत अच्छी तरह पहचानते हैं तुझे। सेठजी यदि पहले से कह न देते और वह भीतर गद्दी पर न बैठे होते तो वास्तव में हम धोखा खा जाते। बहुत अच्छा स्वाँग बनाया है तुमने।"

सेठजी क्रोध से गर्जकर बोले, "तुम सबका दिमाग खराब हो गया है या कोई षड्यंत्र कर रखा है तुमने? मैं गद्दी पर कैसे हो सकता हूँ? मैं तो यहाँ खड़ा हूँ। अभी-अभी मन्दिर से आया हूँ।"

सब लोग ठहाका लगाकर हँस उठे।

उस मुनीम ने कहा, "अच्छा, तेरी बकवास बहुत सुन ली। अब चला जा यहाँ से। यह हमारे काम का समय है। हम सेठजी से वेतन लेते हैं तो काम करने के लिए, बहुरूपिये का स्वाँग देखने के

लिए नही।"

सेठजी बोले, "तुम सब गधे हो। मैं तुम सबको डिसमिस कर दूंगा।"

मुनीम ने कहा, "अबे सेठ के स्वांग! सीधी तरह चला जा, नही तो हम पुलिस को बुलाकर उसके हवाले कर देगे। हवालात की हवा खानी पडेगी।"

सेठजी का दिमाग चकराने लगा। जी मे आया कि कही से लाठी लेकर सबको पीट डालूं। किन्तु वे बहुत थे, सेठजी अकेले। कोई लाठी भी पास नही थी। इसलिए दूसरे दरवाजे की ओर गए--अपने घर के दरवाजे की ओर। दरवाजे मे उनके बच्चे खडे थे। उन्हे देखते ही जोर-जोर से बोले, "अरे देखो, अरे देखो! जिसके बारे मे पिताजी ने कहा था। एकदम पिताजी-जैसा लगता है!"

सेठजी ने यह बात सुनी तो रहा-सहा धैर्य भी जाता रहा। काटो तो लहू नही बदन मे। थोड़ी हिम्मत करके बोले, "अरे देखो तो सही, मैं तुम्हारा पिता हूँ।"

बडे बच्चे ने क्रोध से कहा, "जा-जा, पिता बनने चला है! हमारे पिताजी तो भीतर बैठे है। तू हमे धोखा देता है बेईमान?"

अब सेठजी क्या करे?

आंखो के आगे अँधेरा छाने लगा। अपने बच्चे ही नही पहचान सकते तो फिर कौन पहचानेगा? तभी विचार आया, नगर का बडा अधिकारी उनका मित्र है। समझदार भी है। इन लोगो की तरह मूर्ख नही। उसके पास चलूं। वह आकर इन सबको समझाएगा।

और वह पहुँच गए पुलिस के दफ्तर मे।

बडे अधिकारी ने इन्हे दूर से आते देखा। मन-ही-मन मे कहा, 'तो यह है वह बहुरूपिया! किन्तु कमाल किया है इसने! न केवल शक्ल-सूरत सेठजी-जैसी बना रखी है, अपितु चलता भी वैसे ही है।'

इतनी देर मे सेठजी अधिकारी के दफ्तर मे पहुँच गए।

अधिकारी ने व्यग्य के रूप मे कहा, "आइये सेठजी!"

सेठजी की जान में जान आई—"शुक्र है कि तुमने मुझे पहचाना। मेरे दफ्तरवाले, घरवाले तो मुझे पहचानते ही नहीं। मैं तुम्हारी सहायता लेने आया हूँ।"

अधिकारी ने हँसते हुए कहा, "बहुत अच्छा स्वाँग भरा है तुमने भाई! किन्तु यह बहुरूप समाप्त करो, नहीं तो मैं गिरफ्तार करके हवालात में दे दूँगा। तुम्हारे इस स्वाँग से किसी को धोखा भी लग सकता है।"

सेठजी फिर घबराए; बोले, "क्या कहते हो तुम? तुम भी नहीं पहचानते मुझे?"

अधिकारी ने कहा, "खूब पहचानता हूँ श्रीमन्! सेठजी मुझे सब बता गए थे। तुम चाहो तो मैं उन्हें कहकर दस-बीस रुपये पुरस्कार दिला सकता हूँ। अपनी कला के ऊँचे कलाकार हो तुम।"

सेठजी पागलों की तरह उठे, दफ्तर से बाहर चले गए। जब कोई भी उन्हें नहीं पहचानता तो क्या करें!

अन्त में एक वकील से सलाह करके उन्होंने कचहरी में मुकद्दमा कर दिया। मजिस्ट्रेट ने इन सेठजी को भी बुलाया और योगी सेठजी को भी। दोनों को देखकर उसे आश्चर्य हुआ कि दोनों की शक्ल-सूरत, आँख, नाक, कान, मुँह, आवाज़ सब एक-जैसे हैं। दोनों ने कहा, "मैं असली सेठ हूँ।"

योगी सेठ की गवाही सेठ की पत्नी और बच्चों ने दी, मुनीमों और दूसरे नौकरों ने दी।

सेठजी की गवाही उनके वकील ने दी।

मजिस्ट्रेट ने कहा, "इस तरह निर्णय नहीं हो सकता। मैं कुछ प्रश्न पूछता हूँ। उनके उत्तर दो।" और सेठजी से उसने पूछा, "तुम कहते हो कि तुम वास्तविक सेठ हो। यह दूसरा आदमी बहुरूपिया है।"

सेठजी बोले, "यही कहता हूँ सरकार! मेरा रूप बनाकर इसने सबको मूर्ख बनाया है।"

मजिस्ट्रेट ने कहा, "वह भी तो यही कहता है कि तुम बहुरूपिये हो। इसलिए बताओ कि तुम जिस कमरे मे सेठ के काम करते हो, उसमे कितनी अलमारियाँ हैं। उनमे कितनी लकडी की हैं और कितनी लोहे की।"

सेठजी बोले, "यह मैं कैसे बता सकता हूँ ? अलमारियो को देखना तो मेरे मुनीमो का काम है।"

मजिस्ट्रेट ने पूछा, "अच्छा यह बताओ, जहाँ तुम बैठते हो, वहाँ से दाएँ हाथ की ओर जो चौथा सदूक रखा है, उसके भीतर क्या है ?"

सेठजी बोले, "आप भी कैसी बाते पूछते है ! यह सब-कुछ मैं देखता नही। यह तो मेरे मुनीम देखते है।"

मजिस्ट्रेट ने कहा, "अच्छी बात है। उधर बैठ जाइये आप। अब मैं इनसे प्रश्न पूछूंगा।"

और उसने योगी सेठ से पूछा, "आप जिस कमरे मे बैठते हैं, वहा कितनी अलमारियाँ है ? उनमे लकडी की कितनी हैं और लोहे की कितनी ?"

योगी सेठ ने योग-बल से अपने ध्यान मे देखने के बाद उत्तर दिया, "उस कमरे छ अलमारियाँ हैं। चार लकडी की हैं और दो गॉदरेज की। पाँच वर्ष पूर्व वे खरीदी गई थी।"

मजिस्ट्रेट ने पूछा, "अच्छा यह बताओ, जहाँ तुम बैठते हो वहा स दाईं ओर जो चौथा सदूक है, उसके भीतर क्या है ?"

योगी सेठ ने फिर ध्यान की शक्ति से देखा, उत्तर दिया "उसमे मलिका विक्टोरिया की तस्वीरवाले तीन हजार रुपये है। हिसाब-किताब की दो प्रकार की किताबे है—एक इकम-टैक्सवालो के लिए सरासर झूठी और बनावटी और दूसरी अपने लिए ठीक और सच्ची।"

मजिस्ट्रेट ने कोर्ट-इन्स्पेक्टर और अहलमद को भेजा कि इसी समय सेठ के दफ्तर मे जाकर देखो कि ये तीनो बात ठीक हैं या नही।

कोर्ट-इन्स्पेक्टर और अहलमद गए। उन्होंने देखा कि वास्तव में कमरे में छ: अलमारियाँ हैं—चार लकड़ी की और दो गॉदरेज की। और सेठ की गद्दी से दाईं ओर के संदूक में वास्तव में मलिका विक्टोरिया की मुहरवाले तीन हज़ार रुपये हैं। हिसाब-किताब के दो प्रकार के रजिस्टर भी हैं।

वापस आकर उन्होंने यह सारी बात अदालत को आकर सुना दी।

मजिस्ट्रेट ने निर्णय दिया कि योगी सेठ ही असली सेठ है। यह दूसरा आदमी जिसने मुकद्दमा किया है, बहुरूपिया है। इस बार उसे क्षमा किया जाता है। फिर वैसा दावा करे, तो उसपर धोखा देने का मुकद्दमा चलाया जाए।

और सेठजी माथा पीटकर कचहरी से बाहर आ गए। धन-सम्पत्ति, व्यापार, पत्नी और बच्चे सब-कुछ छिन गया। कुछ भी नहीं रहा। असीम निराशा में उसी नदी के किनारे पहुँचे जहाँ वह मन्दिर बना था। बार-बार सोचने लगे कि नदी में डूबकर आत्म-हत्या कर लूँ। अब जीने के लिए बाकी रह क्या गया है? किन्तु मरना इतना आसान तो है नहीं। बार-बार उनकी आँखों में आँसू आ जाते। बार-बार वह सोचते, यह क्या हो गया?

तभी शाम हो गई। योगी सेठ भी इस मन्दिर में आया। दूर से उसने देखा कि सेठजी नदी किनारे बैठे हैं और रो रहे हैं। उनके पास जाकर उसने कहा, "ओ३म्-ओ३म् कहो सेठजी!"

सेठजी रोते हुए बोले, "ओ३म् हरि ओ३म्!"

योगी बोला, "राम-राम भाई जी!"

सेठ बोले, "राम ही राम! अब तो सारा दिन राम ही राम है और है क्या?"

योगी बोला, "निर्धनों और असहायों के लिए।"

सेठजी ने रोते हुए कहा, "उनकी सारी उम्र सेवा हो तो करनी है! अब मुझसे निर्धन और असहाय कौन है?"

योगी बोला, "सुनो सेठ, मैं तुम्हारी, धन-सम्पत्ति, तुम्हारा व्यापार

लेना नही चाहता। मैं सेठ हूँ नही। तू ही असली सेठ है। तेरा सब-कुछ तुझे वापस देता हूँ। केवल यह बताना था तुझे कि जिसने सब-कुछ दिया है उसे भूल न जा। वह यदि सब-कुछ दे सकता है तो छीन भी सकता है।"

और आप कहते हो कि समय नही मिलता। सुनो मेरे भाई! सुनो मेरी माँ! सुनो मेरे बच्चो! समय निकालना होगा। नही तो यह जावन व्यर्थ चला जाएगा और यह मानव-जोवन बार-बार नही मिलता।

मानस जन्म अमोल है, देह न बारम्बार।
तरु से फल ज्यों भरि परा, फिर न लागे डार॥

देखा है कभी कि वृक्ष से गिरा हुआ फल फिर से डाल पर लग जाए? मानव का यह शरोर भी लाखो-लाखों योनियों के चक्कर में पडकर गिर पड़े तो सुगमता से मिलता नही।

एक महात्मा हुए है श्री सुन्दरदास। उन्होने बहुत सुन्दर कहा है:

'सुन्दर' मानुप देह यह, पायो रतन अमोल।
कौड़ो बदल न खोइये, मान हमारा बोल॥
'सुन्दर' साँची कहत है, मत आये मन ओस।
जो तू खोया रतन यह, तो तू ही को दोष॥

यह रत्न खो दिया भाई, तो तुम्हारा दोप है। किसी दूसरे का नही।

बार-बार नहीं पाइये, सुन्दर मानुप देह।
प्रभु-भजन, सेवा, सुकृत, यह सौदा करि लेह॥

इसलिए मिला है यह मानव-शरीर। प्रभु-भजन, दुखियो की सेवा और सुकर्म, यह सोदा करो यहाँ। नही तो बार-बार यह शरीर मिलेगा नही। जैसे यह शरीर कुछ भी नही, आत्मा न हो तो मिट्टी का ढेर है यह, गन्दगी और दुर्गन्ध से भरा। किन्तु,

'सुन्दर' साँची कहत है, जो माने तो मान।
यही देह अति सन्देह है, यही रतन की खान॥

'सुन्दर' पाई देह में, हार-जीत को खेल।
जीतिये तो जगपति, हारे माया मेल॥

इसलिए कबीर ने कहा :

रात गँवाई सोयकर, दिवस गँवाया खाय।
हीरे जैसा जन्म है, कौड़ी बदले जाय॥

अरे, क्यों इस हीरे को कौड़ियों के बदले नष्ट करते हो ? क्यों इस रत्न को गँवाते हो? क्यों लाखों-करोड़ों, संभवतः अर्बों योनियों के जन्म-मरण के चक्कर में पड़ते हो ? एक बार फँस गए इस चक्कर में तो बड़ी कठिनाई से बाहर आओगे। मानव-शरीर दोबारा सुगमता से मिलेगा नहीं।

स्रवन्ति न निवर्तन्ते स्रोतांसि सरितामिव।
आयुरादाय मर्त्यानां रात्रिऽहनि पुनःपुनः॥

नदियों से मिलनेवाले नाले का पानी कभी अपने स्रोत की ओर वापस जाते देखा है ? वैसे ही तुम्हारी आयु के ये दिन और रात जो बीते जाते हैं, फिर कभी वापस नहीं आएँगे।

जेर गई उम्र अपनी दिन-ब-दिन कटती गई।
जिस कदर बढ़ते गये हम जिन्दगी घटती गई॥

बेटा हो गया चालीस वर्ष का। पिता बहुत प्रसन्न है कि बेटे का इकतालीसवाँ जन्म-दिन आ गया। ठीक है भाई ! प्रसन्न होना चाहो तो होते रहो। किन्तु यह भी सोचो कि इस बच्चे की आयु चालीस वर्ष कम हो गई है। कितनी आयु होगी, यह भगवान् जानता है। किन्तु जितनी भी थी, उसमें से चालीस वर्ष कम हो गए। बर्थ-डे मनाने का बहुत रिवाज है। आजकल बच्चों के बर्थ-डे मनाए जाते हैं। कई बूढ़ों के भी मनाए जाते हैं। और वह क्या गाते हैं सब लोग ? हाँ,

हैप्पी बर्थ डे टु यू डियर पप्पू !
हैप्पी बर्थ डे टु यू······

मैं यह नहीं कहता कि बर्थ-डे मत मनाओ। मनाओ अवश्य किन्तु याद रखो यह बर्थ-डे प्रसन्नता मनाने का नहीं, हिसाब करने का दिन

है। सालभर की बैलेन्स-शीट बनाने का दिन है। बर्थ-डे मनाओ तो एकान्त में बैठकर सोचो कि जिस उद्देश्य के लिए यह मानव-शरीर मिला था, वह कितना पूरा हुआ और कितना शेष है। यदि उतना पूरा नही हुआ जितना होना चाहिये था, तो दृढ संकल्प करो कि आगामी वर्ष मे इस घाटे को पूरा करेगे। और उद्देश्य-पूर्ति का एक ही उपाय है, प्रतिदिन कम-से-कम एक घण्टा आत्म-चिन्तन और प्रभु-चिन्तन करो। कम-से-कम एक घंटा दूसरी सभी बातें भूलकर प्रभु के ध्यान मे लग जाओ।

एक बूढी माता आई मेरे पास; बोली, "स्वामीजी, मै ध्यान में बैठती हूँ किन्तु ध्यान लगता नही।"

मैंने पूछा, "क्यों नहीं लगता ?"

वह बोली, "घर मे बच्चे है, पोते है, पोतियाँ है। उनकी चीं-पीं ही समाप्त नही होती।"

मैंने हँसते हुए कहा, "परिवार मे बच्चे होना तो अच्छा है माँ! जिस घर मे बच्चे न हों, वहाँ तो सन्नाटा छाया रहता है। उनकी चीं-पीं के होते हुए भी तुम अपना भजन करो।'

उसे यह बात समझ नही आई, तो मैने उसे घोडेवाले की कहानी सुनाई।

एक था घोड़ेवाला। उसका घोडा चीं-पीं की ध्वनि से बहुत बिदकता था। घोडे को पानी पिलाना था। एक कुएँ पर ले गया। बैल पानी खींच रहे थे। रहट चल रहा था। उससे चीं-पीं की ध्वनि आ रही थी। घोडेवाला घोड़े को पानी की नाली के पास खींचकर ले तो गया, किन्तु घोडा पानी नही पिये। घोडेवाला एक ओर हट कर ठहर गया। कुएँ वाले ने पूछा, "तुम घोडे को पानी पिलाना चाहते थे, अब पिलाते क्यो नही ?"

घोडेवाले ने कहा, "यह चीं-पीं बन्द हो जाए तो पिलाऊँगा।"

कुएँवाला बोला, "अरे भाई! इस चीं-पीं मे ही पिला ले। यह बन्द हो गई तो पानी भी बन्द हो जाएगा।"

इसलिए मेरे भाई ! इस चीं-पीं की चिन्ता छोड़कर ध्यान लगाने बैठो। चीं-पीं होती है तो होने दो। तुम्हारे मन में यदि प्रभु का प्रेम है तो उस चीं-पीं के होते भी तुम्हारा ध्यान लगेगा।

यह सब-कुछ मैं महर्षि दयानन्द के इन पाँच शब्दों के आधार पर बोलता गया कि 'साधक को ध्यान में बैठना चाहिए।' महर्षि पातंजलि के 'योग दर्शन' का उद्धरण देकर इतनी सुन्दर बातें उन्होंने इतने विश्वास के साथ लिखी हैं कि कोई योगी ही उन्हें लिख सकता था। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि—सबका उन्होंने उल्लेख किया है। किन्तु कई भाई कहते हैं, इतना परिश्रम, इतना यत्न करने से होगा क्या ? यही न कि उस ईश्वर को जान लेंगे ? किन्तु यदि न जानें तो क्या हानि है ? सुनो ! हानि तो यह है कि यह मानव-शरीर मिला है तो प्रभु को जान लो, उसका दर्शन पाओ, उसे अपना बना लो। ऐसा नहीं किया तो यह जन्म व्यर्थ गया समझो। किन्तु याद रखो, योगाभ्यास केवल आध्यात्मिक जगत् में ऊपर उठने का मार्ग नहीं। इस दुनिया में सफल होने का भी साधन है। महर्षि दयानन्द 'ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका' में कहते हैं :

"उपासक योगी और सांसारिक मनुष्य जब व्यवहार में संलग्न होते हैं तो योगी का मन सदा दुःख और सुख से ऊपर उठकर, आनन्द से प्रकाशित होकर, उत्साह और मस्ती से भरा रहता है। और सांसारिक व्यक्ति का मन, जिसने योगाभ्यास नहीं किया, सदा प्रसन्नता और अप्रसन्नता के दुःख-सागर में डूबता रहता है। उपासक योगी के चित्त की वृत्तियाँ ज्ञान के प्रकाश में सदा आगे बढ़ती जाती हैं। और सांसारिक मानव के चित्त की वृत्तियाँ सदा अन्धकार में फँसती जाती हैं।"

यह है साधारण संसारी व्यक्ति के लिए योगाभ्यास, ध्यान लगाने का लाभ। अब यह दुनिया है कि इसमें ऊँच-नीच, सुख-दुःख, रोग-स्वास्थ्य, समस्याएँ-उलझनें, संघर्ष, दौड़-धूप यह सब तो लगा ही रहता है। जो योगी है वह अपनी समस्याओं को सरलता से सुलझा

लेता है। वह ध्यान मे जाकर देखता है कि क्या ठीक है और क्या गलत। वह ठीक मार्ग को अपनाता है और गलत मार्ग को छोड देता है। उसे सफलता मिल जाती है। दूसरे व्यक्ति के सामने भी ये समस्याएँ आती हैं। वह सोचता है कि क्या करूँ ? किन्तु उसके मन मे एकाग्र होने की शक्ति नही होती, इसलिए वह कभी भी उलझनो से बाहर नही निकल पाता। कोई निश्चय करता है तो वह प्राय गलत होता है।

किन्तु इस बात को यही छोडिये। मैं आपको बता रहा था कि ईश्वर का दर्शन हो सकता है। यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय का नौवाँ मत्र कहता है कि उसका दर्शन करते हैं—देव, साधक और ऋषि।

देव और साधक की बात आपको बता चुका, अब 'ऋषि' की बात सुनिये। 'ऋषि' कौन है ?

ऋषि. स यो मनुर्हितः।

हमारे पूर्वजो ने कहा, ऋषि वह है जो दूसरो का हित चाहता है, दूसरो का भला चाहता है। उनके सुख के लिए, उनके कल्याण के लिए, उन्हे ऊपर उठाने के लिए यत्न करता है। अच्छा भाई ! तुम्हे 'देव' बनना कठिन जान पडता है, योग-साधन भी तुमसे नही होता तो फिर दूसरो का भला करो। समाज-सेवा, लोक-सेवा, दीन-सेवा, दुखी-सेवा को अपना धर्म बना लो। कोई रोगग्रस्त है तो उसके पास जाकर पूरे यत्न से उसकी सेवा करो। उसे नीरोग करने का प्रयत्न करो। कोई निर्धन है तो उनके घर मे अन्न भिजवा दो, कपडे पहुँचा दो, चीनी पहुँचा दो। यदि किसी विधवा का पुत्र शिक्षा के बिना रहा जाता है तो उसकी शिक्षा का प्रबन्ध करो। उसके लिए कोई छात्रवृत्ति नियत कर दो। उसे पुस्तकें ले दो। उसे विद्यालय की वर्दी सिलवा दो। यदि यदि किसी धनहीन की कन्या विवाह-योग्य है और वह धन न होने से उसका विवाह नही कर सकता तो चुपके-से जाओ उसके घर, चुपचाप उसे कुछ दे आओ। यदि कही भाई-भाई आपस मे झगडते हो तो उनके पास जाओ। दोनो को समझाकर उनका झगडा निपटा दो। मिलाप कराओ लोगो मे, उन्हे आपस मे लडाओ मत। एक-दूसरे से

प्यार करना सिखाओ उन्हें, घृणा करना नहीं। ऐसी बातें करो तो तुम ऋषि हो।

यही है इबादत, यही दीनो-ईमाँ।
कि दुनिया में काम आय, इन्साँ के इन्साँ ।।

वह कहानी तो आपने सुनी है। एक बहुत बड़े भक्त थे। बड़े प्रेम से ईश्वर को याद करते थे। एक दिन एक देवदूत आया उनके पास दो लम्बी-लम्बी नामों की सूचियाँ लेकर। भक्त ने पूछा, "ये सूचियाँ कैसी हैं ?"

देवदूत ने एक सूची दिखाते हुए कहा, "ये उन लोगों के नाम हैं जो भगवान् को प्यार करते हैं।"

भक्त ने पूछा, "मेरा नाम भी है इसमें ?"

देवदूत ने कहा, "हाँ, सबसे ऊपर आपका नाम है।"

भक्त ने पूछा, "और यह दूसरी सूची कैसी है ?"

देवदूत ने कहा, "ये उन लोगों के नाम हैं, जिन्हें भगवान् प्यार करता है।"

भक्त ने पूछा, "इसमें भी मेरा नाम है क्या ?"

देवदूत बोला, "है तो सही किन्तु सबसे ऊपर अमुक व्यक्ति का नाम है।"

भक्त ने आश्चर्य के साथ कहा, "किन्तु वह तो भगवान् का नाम भी नहीं लेता। मैंने कभी उसे सन्ध्या, पूजा, भजन कीर्तन करते हुए नहीं देखा। वह तो सदा दूसरों की सहायता करने, दूसरों के काम करने, बीमारों, धनहीनों, दुःखियों की सेवा करने में लगा रहता है।"

देवदूत ने कहा, "यही कारण है कि भगवान् उसे सबसे अधिक प्यार करते हैं। जो भगवान् के बन्दों को चाहता है, भगवान् भी उसको चाहते हैं।"

ऐसे ही लोगों की भावना को लेकर कहा गया है :

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ।।

ऐ मेरे स्वामी! मेरे प्रभु! सर्वशक्तिमान्! यदि तू मुझसे प्रसन्न है, तो सुन! मुझे राज्य नहीं चाहिये। राजनीतिक सत्ता नहीं चाहिए। स्वर्ग का सुख नहीं चाहिए। मुक्ति का आनन्द नहीं चाहिए। केवल एक इच्छा है, एक ही कामना है मेरी कि दु:खों को आग में जलते हुए, तपते हुए लोगों के कष्ट दूर हो जायँ।

ज़र व हुकूमत की है तमन्ना न आरज़ूए नजातो-जन्नत।
जो ग़मज़दा हैं वो मुस्कराएँ, बस इक यही इल्तजा है मालिक!

याद रखो, मनुष्य उसे कहते हैं जो दूसरों के काम आए। जो केवल अपने लिए सोचता, केवल अपने भले के लिए यत्न करता, केवल अपने में सीमित है वह पशु है।

आहार निद्रा भयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।

खाना, पीना, सोना, डरना, सन्तान उत्पन्न करना, अनाज का संग्रह करना, अपने लिए रहने की जगह बनाना, दु:ख से दूर भागना, सुख के पीछे दौड़ना, यह सब कुछ तो नीचातिनीच पशु भी करता है। मनुष्य भी यदि यही कुछ करे और समझ ले कि उससे अधिक उसे कुछ और करना नहीं है, तो उसमें और पशु में अन्तर क्या है?

नहीं मेरे प्यारे भाई! जो केवल अपने लिए सोचता है, वह पशु है। जो अपने लिए और दूसरों के लिए—दोनों के लिए सोचता है वह मानव है। जो अपने लिए नहीं, केवल दूसरों के लिए सोचता है, वह ऋषि है, वह सन्त है।

तरुवर फले न आपको, नदी न पीवे नीर।
पर-हित कारन जगत में, सन्तन धरा शरीर॥

वृक्ष जैसे अपने फल को आप नहीं खाते, नदियाँ अपने पानी को आप नहीं पीती, ऐसे सन्त वह है, ऋषि वह है, जो दूसरों के लिए जीता है। आवश्यकता पड़े तो दूसरों के लिए प्राण दे देता है।

स्वामी दयानन्दजी महाराज घर से निकले इसलिए कि सच्चे शिव का दर्शन पाना है। नर्मदा के जंगलों में कितने ही योगियों से

कितना-कुछ सीखा उन्होंने। स्वामी विरजानन्द की कुटिया में पहुँचे। उनसे वेद का ज्ञान प्राप्त किया। समझा कि सच्चा शिव क्या है? और पहुँच गए हरिद्वार के कुम्भ मेले में। पाखण्ड-खण्डिनी पताका लेकर खड़े हो गए कि लोगों से सच्ची बात कहेंगे। कितने ही ग्रन्थ उनके पास थे, कितना ही ज्ञान, किन्तु लोगों ने उनकी बात ही नहीं सुनी। एक प्रश्न पैदा हुआ उनके सामने कि अब क्या करूँ? तभी अपने मन से उत्तर मिला। अपना सब-कुछ त्याग दिया उन्होंने। पुस्तकें कपड़े सभी चीजें दूसरों को दे दीं। केवल एक कोपीन पहनकर घोर घने जंगलों और आकाश को छूनेवाले पहाड़ों की ओर चल पड़े। इन जंगलों और पहाड़ों में हाथियों, शेरों, चीतों, रीछों, अजगरों, विषधर सर्पों और दूसरे जंगली जानवरों की चिन्ता किये बिना, भूख और प्यास की चिन्ता किये बिना, कष्टों और क्लेशों की चिन्ता किये बिना घुआँधार गर्जते बादलों और हड्डियों तक में कँपकँपी उत्पन्न करने वाली बर्फानी हवाओं की चिन्ता किये बिना छः वर्ष तक वह घोर तप करते रहे। एक कोपीन के सिवा दूसरा कपड़ा उनके पास नहीं था। जंगल के कन्द-मूल के सिवा खाने को कुछ नहीं। पत्थरों और चट्टानों के सिवा सोने को जगह नहीं। गुफाओं और कन्दराओं के सिवा रहने को जगह नहीं। इन सब बातों से निलिप्त-अनासक्त वह पूरे छः वर्ष कठिन-कठोर भीषण तप में लगे रहे।

इन लम्बे अभ्यास के कारण शरीर जैसे सर्दी-गर्मी के प्रभाव से ऊपर उठ गया।

एक बार फर्रुखाबाद में प्रातः ही वह गंगा के किनारे भजन करने बैठे हुए थे। सर्दी की ऋतु थी। तीखी ठण्डी हवा चल रही थी। स्वामीजी केवल कोपीन पहने रेत पर आसन लगाए हुए थे। तभी फर्रुखाबाद का एक अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर शिकार के लिए जाता हुआ घोड़े पर सवार उधर से निकला। कुछ भारतीय अधिकारी भी उसके साथ थे। स्वामीजी के पास पहुँचकर उसने कड़ाके की सर्दी में बैठे एक नंग-धड़ंग आदमी को देखा तो अपने साथियों से बोला, "देखो उस निर्धन

आदमी को, बेचारे के पास कपडा भी नही। सर्दी में ठिठुरकर मर जाएगा वह। कोई कपडा, कोई कम्बल ले जाओ उसके पास और ऊपर डाल दो, या आग ही जला दो उसके पास।"

उसके एक भारतीय सहयोगी ने कहा, "चिन्ता मत कीजिये, सरकार! ये लोग बहुत माल खाते है।"

स्वामीजी ने यह बात सुनी तो हँसकर बोले, "मैं तो माल नही खाता भाई! भीख मे जो कुछ मिल जाता है, वह खाकर निर्वाह करता हूँ।"

डिप्टी कमिश्नर ने पूछा, "फिर भी आपको सर्दी तो लगती होगी? आज बहुत अधिक सर्दी है।

स्वामीजी बोले, "नही भाई! मुझे सर्दी नही लगती।"

डिप्टी कमिश्नर ने कहा, "यह कैसे हो सकता है? मैंने इतने कपडे पहन रखे हैं, इसपर भी ठिठुरा जाता हूँ। और आपके पास तो कोई भी कपडा नही।"

स्वामीजी बोले, "अपने शरीर पर आपने कपडे पहन रखे हैं। नाक पर कोई कपडा क्यो नही पहना? क्या इसे सर्दी नही लगती?"

डिप्टी कमिश्नर ने कहा, "नाक को तो आदत पड गई है सर्दी सहने की।"

"इसी प्रकार मेरे सारे शरीर को आदत पड गई है। वर्षों मैं बिना कपडे के उन पर्वतो पर रहा हूँ, जहाँ बर्फ के अम्बार लगे है और जहाँ सर्दियो मे पानी जम जाता है।"

इस तरह तप किया स्वामीजी ने। छः वर्ष के तप के बाद लक्ष्य-प्राप्ति हुई। पा लिये सच्चे शिव के दर्शन तो चढ गए एक पहाड की चोटी पर। मन मे सोचा, 'दयानन्द! जिस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तू घर से निकला था, वह पूरा हो गया। अब कूदो इस खड्ड में। इस शरीर को छोड दो।'

तभी मन के भीतर से एक और से आवाज आई 'स्वय तूने आनन्द को पा लिया दयानन्द, किन्तु दूसरो का क्या होगा? सामने विस्तीर्ण

प्रकृति और माया के इस अन्धकार से परे करोड़ों सूर्यों की भाँति चमकते हुए, आदित्य के जैसा वह परम पिता, परम पुरुष, परमेश्वर है। उसको जाने बिना मृत्यु का दु:खों का, कष्टों, क्लेशों, चिन्ताओं का अन्त नहीं होता। हर प्रकार के दु:खों को, चाहे वह निर्धनता का हो, रोग का हो, वियोग का हो, जन्म और मरण का हो, पराजय और अपमान का हो, असफलता का हो या कुछ भी हो, सब प्रकार के दु:खों का और अशान्ति का केवल एक हा औषध है—प्रभु-दर्शन ; उस परम पुरुष को जानना। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं।

तुम विज्ञान में कितनी भी उन्नति कर लो, एटम बम बना लो या हाइड्रोजन बम, धरती पर अन्न उगाओ या सागर के भीतर, तुम फल बदल लो, सब्जियाँ बदल लो, बड़े-बड़े हवाई जहाज़ या रॉकेट बना लो, चन्द्रमा पर पहुँच जाओ या मंगल ग्रह पर, या शुक्र ग्रह पर, परन्तु जबतक उसको नहीं पाते, जो आनन्द और शान्ति का भण्डार है। परम आनन्द, परम शान्ति और परम शक्ति का भण्डार है, तबतक सुख नहीं मिलेगा, शान्ति नहीं मिलेगी।

उसका दर्शन हो जाए, वह मिल जाए, तो फिर कोई दु:ख, कोई कष्ट, कोई क्लेश रहेगा नहीं। यह सारी दुनिया एक खेल, एक तमाशा दिखाइ देगी। इसके सुख और दु:ख दोनों तुच्छ हो जाएँगे। खुल जाएँगी दिल की गाँठ। टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे संशय और सन्देश। दूर हो जाएँगे सभी अन्धेरे। उमड़ उठेगा ज्योति का सागर, उस आनन्द का सागर जिसका दुनिया की कोई भाषा वर्णन नहीं कर सकती।

किन्तु इस आनन्द-ज्योति, अनन्त शक्ति, अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द से भरे प्रभु को देखें कैसे भाई ?

इसके लिए भी मैंने आपको वेद भगवान् से बताया कि तीन प्रकार के लोग उस प्रभु को देखते हैं, उसे प्राप्त करते हैं—एक 'देव', दूसरे 'साधक', तीसरे 'ऋषि'। कौन 'देव' है ? कौन 'साधक' है ? कौन 'ऋषि ? यह भी बताया आपको। किन्तु मेरे बताने का लाभ होगा

उस समय जब इसपर आचरण करो। यह मत कहो कि घर छोड़ने के बाद ध्यान करेंगे, अगले वर्ष करेंगे, कल करेंगे। ऐसे नहीं चलेगा भाई! आज से प्रारभ करो।

आज कहे हरि कलहि भजूंगा,
कल ही कहे फिर काल।
आज ही कल ही करदिआँ,
अवसर जासो चाल ॥

नही मेरे भाई! मेरे बच्चे! मेरी माँ! मेरी बेटी! इस अवसर को जाने मत दो। फिर क्या पता यह मानव-शरीर मिले, मिले, न मिले, न मिले! यह कबतक रहेगा? यह कोई जानता नही। मैंने लोग देखे है, दफ्तर से उठे घर जाने के लिए, पर घर नही पहुँचे। दुनिया छोडकर चले गए। यह तो कच्चा घडा है, मेरी माँ! क्या जाने कब टूट जाए? यह तो कागज की नाव है, क्या जाने कब डूब जाए? किन्तु कच्चा घडा हो या पक्का, कागज की नाव हो या लकडी की, जो बना है, वह नष्ट होगा अवश्य। इसलिए जबतक यह है, तबतक उस लक्ष्य को ओर जाने का प्रयत्न करो, जिसके लिए यह सब-कुछ मिला है।

ओ३म् नम!

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती कृत

धार्मिककथा-ग्रन्थ

मानव और मानवता	४.५०
तत्वज्ञान	४.००
प्रभुदर्शन	२.५०
प्रभुभक्ति	१.५०
मानव जीवन गाथा	१.००
भक्त और भगवान्	१.००
वैदिक सत्यनारायण कथा	०.७५
भगवान शंकर और दयानन्द	०.७५
एक ही रास्ता	१.००
आनन्द गायत्री कथा	१.००
घोर घने जंगल में	२.५०
महामन्त्र	१.२५
सुखी गृहस्थ	१.००
उपनिषदों का सन्देश	१.५०
बोध कथाएँ	३.५०
प्रभु मिलन की राह	३.५०

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६